परमानन्द सागर

[पद संग्रह]

सचित्र

संपादक

डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल

एम. ए., पी-एच. डी.

रीडर, संस्कृत-हिन्दी विभाग

अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़

भूमिका लेखक

डॉ० हरवंशलाल शर्मा

एम. ए., पी-एच. डी.; डी. लिट्

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

संस्कृत-हिन्दी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय

प्रकाशक

भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़

मूल्य १२)

श्री परमानंददास जी के परमाराध्य देव

श्री गोवर्धननाथ जी

सम्पादन के विषय में

पुष्टि मार्ग के 'द्वितीय सागर' भक्त प्रवर परमानन्ददास जी के काव्य का प्रस्तुत संग्रह एवं सम्पादन प्रारम्भ में अलीगढ़ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए गवेषणात्मक प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से किया गया था परन्तु ज्यों-ज्यों इस दिशा मे प्रयास अग्रसर हुआ मेरे सुप्त साम्प्रदायिक संस्कार जगते चले गए और शोध-दृष्टि गौण सी होती गई। परिणाम स्वरूप परमानन्ददास जी के कीर्तन-संग्रह की ही इच्छा बलवत्तर होती गई। कुछ मासों में लगभग सभी छपे हुए उपलब्ध कीर्तन एकत्र कर लिए गए किन्तु उससे न उद्देश्य पूरा हुआ न मनस्तुष्टि। बार बार चित्त प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के लिए छटपटाता था। संवत् २०१२ की देव प्रबोधिनी एकादशी के दिन श्री गिरिराज की तरहटी में भटकते हुए मुझे सम्प्रदाय के मर्मज्ञ परम भगवदीय श्री भाई द्वारकादास जी परीख के दर्शन हुए। उन्होंने मेरा मन्तव्य सुनते ही मानो परमानन्ददास जी के किसी भक्त की वे प्रतीक्षा ही कर रहे हों—तुरन्त अपने पास की दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां दे देने का बचन दे दिया। तदनुसार एक दिन अपने शोध निर्देशक गुरुवर डॉ० हरबंसलाल जी, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत-हिन्दी विभाग अलीगढ़ विश्वविद्यालय के साथ आगरे जा पहुँचा, और मुझे दो प्रतियां मिल गई। एक तो संवत् १७५४ की थी और दूसरी वर्षा में भीग जाने से अंतिम पृष्ठ फट चुका था पर लिखावट के आधार पर लगभग इसी सन् संवत् के आसपास की प्रतीत होती थी। अतः कार्य प्रारंभ हुआ और इन दोनों ही प्रतियों के कीर्तन भी संगृहीत कर लिए गए। इसके उपरान्त दतिया राज पुस्तकालय मे भी स्वयं जाकर किन्ही परमानन्ददास जी की पुस्तकें भी देखीं। परन्तु भाव, भाषा, शैली सभी दृष्टियों से वे हमारे चरितनायक से कोई भिन्न परमानन्द ही सिद्ध हुए। अपने पूज्य पिता स्वर्गीय पंडित यादवनाथ जी शुक्ल के संग्रह में भी एक जीर्ण शीर्ण प्रति निकली जिसे दीमकें चट कर गई थीं परन्तु इसमें भी सन् संवत् नहीं था। प्रति साधारण लिखावट की अपूर्ण थी। परन्तु पदों का क्रम नित्य सेवा का ही था। तदनन्तर श्रीनाथद्वार एवं कांकरौली की यात्राएँ की गईं और वहां के महाराजश्री एवं श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री वागरौदी की कृपा से प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के दर्शन का सौभाग्य हुआ। कांकरौली के महाराजश्री गुजरात पधारे हुए थे अतः पूज्य कण्ठमणि शास्त्री की अनुपस्थिति में श्री छोगालाल जी ने इन प्रतियों के दर्शन कराए। वहां बैठ कर उस अल्प काल में जो भी परिचय इन हस्तलिखित प्रतियों का मैं ले सका सब लिपिबद्ध कर लिया। कुछ पद भी लिखे किन्तु समयाभाव और छोगालाल जी की कार्यव्यस्तता से कुछ अधिक पद उपलब्ध न हो सके, प्रायः सभी प्रतियाँ कीर्तन पद्धति पर ही थीं। सूर की भाँति स्कंधात्मक क्रम से कोई भी प्रति नहीं मिली।

परन्तु शोध-प्रबन्ध के लिये पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होगई थी अतः उक्त यात्रा से वापस आकर अपने शोध-प्रबंध को पूरा किया। इस प्रबंध पर अलीगढ़ विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। इस विश्वविद्यालय के संस्कृत-हिन्दी विभाग का यह सर्वप्रथम शोध प्रबन्ध था। इसके उपरान्त "परमानन्द सागर" के पद अधिक से अधिक संख्या में जिज्ञासु भक्तों को उपलब्ध हो सके इस दृष्टि से उक्त पद-संग्रह और परमानन्ददास जी की संक्षिप्त जीवनी जो एक प्रकार से उस शोध का सारांश था अपने प्रेरक गुरुवर डा० हरवंशलाल जी

की भूमिका सहित छपवा डालने का निश्चय किया। परन्तु इस दिशा में अपने सहायक एवं कृपालु परम भगवदीय बन्धुवर परीख जी से मार्ग निर्देशन लेना अत्यावश्यक प्रतीत हुआ।

अतः उन्हीं की दोनों प्रतियों के आधार पर पाठ-भेद देना भी निश्चय करके प्रस्तुत पद-संग्रह का कार्य प्रारम्भ किया और क्रम भी उन्हीं के आदेशानुसार वर्षोत्सव, नित्यसेवा क्रम एवं दीनता, महात्म्यादि का रखा गया। जहाँ पाठान्तर प्रतीत हुआ या इतना पाठ भेद मिला कि पदों में पुनरावृत्ति सी प्रतीत हुई उन्हें परिशिष्ट में रख दिया गया। इस प्रकार प्रस्तुत पद-संग्रह चार भागों में विभक्त हुआ ---

१---वर्षोत्सव के पद
२---नित्य सेवा के पद
३---दीनता, विनय महात्म्य आदि के पद तथा
४---परिशिष्ट।

इस प्रकार लगभग ६३० पदों का यह प्रस्तुत संग्रह अबसे पूर्व के सभी संग्रहों से विशाल और सम्प्रदाय-पद्धति के अनुसार है। इस संग्रह में कतिपय पदों में पुनरावृत्ति हुई है उसका कारण पाठभेद ही है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इस संग्रह का आधार परीख जी वाली दो हस्तलिखित प्रतियां तथा वर्षोत्सव, नित्य कीर्तन संग्रह के तीनों भाग है। अतः पाठ भेद उक्त दोनों हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर ही दिया गया है।

पाठों में सर्वत्र ब्रजभाषा की प्रवृत्ति का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए शब्दों की एकरूपता पर भी ध्यान रखा गया है। 'श' के स्थान पर 'स', 'य' के स्थान पर 'ज', 'व' के स्थान पर 'ब', 'ण' के स्थान पर 'न', 'क्ष' के स्थान पर 'च्छ' अथवा 'छ' एवं प और ख दोनों ही प्रयोग चले हैं। 'ड', 'ढ' के नीचे बिन्दी का प्रयोग नही किया गया। मात्राओं में जहां तक हो सका है पूरी सावधानी बर्ती गई है। स्वयं प्रूफ संशोधन करते हुए भी प्रस्तुत संग्रह में त्रुटियां अवश्य रह गई होंगी जो अगले संस्करण में अवश्य ही दूर की जा सकेंगी।

प्रस्तुत संग्रह कैसा बन पड़ा है यह तो विद्वानों के विचार की बात है, परन्तु इसमें जो भी अच्छा है वह मेरे गुरुदेव डा० हरवंशलाल एवं बन्धुवर भगवदीय श्री द्वारकादास जी परीख की अनवरत कृपाओं का परिणाम है। इन दोनों महानुभावों का आभार मैं हृदय से स्वीकार करता हूँ। इस पद संग्रह में जो दोष हैं वे मेरी अनुभवशून्यता और अनभिज्ञता के कारण है। फिर भी जो हुआ है वह सब कर्तुमकर्तुमन्यथाकुर्तसमर्थ लीला नायक श्री गिरिराजधरण की कृपा और प्रेरणा का फल है।

अन्त में एक बार पुनः अपने गुरुदेव डा० हरबंशलाल जी एवं बंधुवर परीख जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हुआ भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़ के अध्यक्ष बन्धुवर पं० बद्रीप्रसाद जी शर्मा को हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने 'सागर' के प्रकाशन में भरपूर रुचि ली है।

दिनांक १४-४-५८ गोवर्धननाथ शुक्ल

भूमिका

विक्रम की १६ वीं शताब्दी विश्व के इतिहास में एक विशिष्ट महत्त्व रखती है। प्रायः सम्पूर्ण संसार की भाषाओं के साहित्य में इस शताब्दी में एक विशेष क्रान्ति हुई। धार्मिक भावना को लेकर वह साहित्य सर्जना उस समन्वयात्मक रूप को प्रस्तुत करती हुई दृष्टिगोचर होती है जिसके पीछे शताब्दियों और सहस्राब्दियों तक की परंपराएँ निहित हैं। मानवता के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का यह अद्भुत उपाय था। अन्तः और बाह्य साधनाओं का जैसा सुन्दर सामंजस्य इस शताब्दी के साहित्य में दीख पड़ा वैसा पहले कभी प्रस्तुत नहीं हो सका और नहीं आजतक सम्भव हो सका है। भारतीय साहित्य का यह अद्भुत युग था। साहित्य, धर्म और नीति की त्रिवेणी का पावन तीर्थराज इसी शताब्दी में संभव हो सका। विभिन्न युगों के अभेद्य स्तरों के बीच से मन्द-मन्द किन्तु अव्याहत गति से बहती हुई, अनेक दिशाओं से उल्टी सीधी बहकर आने वाली विविध विचार धाराओं को आत्मसात् करती हुई, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की सिद्धांत-सार-सुधा से प्राणियों के अन्तः-करण को तृप्त करती हुई भारतीय भावना की इस त्रिवेणी ने साहित्य-सागर को इतना लबालब भर दिया कि आज भी उसकी तरल तरंगों में मज्जन और अवगाहन करने से चिर शान्ति प्राप्त होती है।

भारतीय साहित्य में इतनी उदारता, इतनी पावनता, इतना स्थायित्व और इतनी सर्वांगीणता का एक मात्र कारण केवल वैष्णवता है। भारतवर्ष को धर्मप्राण देश कहा गया है। यद्यपि धर्म के नाम पर अनेक पाखंडों का भी प्रचार हुआ। वास्तव में धर्म का एकमात्र प्रतिमान मानवीय वृत्तियों का परिष्कार और समाज का उन्नयन है।

जिस धर्म के द्वारा मानववृत्तियों का परिष्कार होता है जिसके हृदय में सत्य, शील और सौन्दर्य की प्रतिष्ठा होती है, सरसता, स्निग्धता, सहिष्णुता और मधुरता का संचार होता है वही धर्म उदार है। इसलिए वैष्णव धर्म अवश्य ही श्रेष्ठ धर्म कहा जा सकता है। जाति-पांति के बन्धन से परे सामाजिक भेदभावों को तोड़ कर मानव मानव को एक धरातल पर खड़ा करने वाला यह वैष्णव धर्म मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति का प्रतिफल है। हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है। अनेक विदेशियों ने इस धर्म को स्वीकार कर गौरव और गर्व का अनुभव किया। हूण, आन्ध्र, पुलिंद, पुलकस, आभीर, यवन, खस आदि जातियों के पुरुष भी इस धर्मध्वज के आश्रय में पवित्र माने गए हैं। श्रीमद्भागवत में स्पष्ट निर्देश है—

'किरात-हूणान्ध्र-पुलिंद-पुल्कसाः ।
आभीर-कंका-यवना खसादयः ।।
येऽन्येच पापाः यदुपाश्रयाश्रयाः ।
शुध्यंति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ।।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' इस धर्म का मूलमंत्र है; अहिंसा इसका आधार है; और मानवता में ईश्वरत्व का आरोप इसकी साधना है। अपनी विकृत अवस्था में वैष्णव धर्म चाहे जैसा रहा हो, पर उसने अपने मूलमंत्र के आधार को और साधना को नहीं छोड़ा। मानवमात्र के कल्याण की भावना से अनुप्राणित यह वैष्णव धर्म मंगलात्मक मनोहर कला का स्रष्टा रहा है।

वैष्णव धर्म को अनेक नामों से अभिहित किया गया है। उनमें भागवत नाम परम प्रसिद्ध और आख्येय है। वैदिक काल से लेकर आजतक का धर्म का इतिहास एक प्रकार से भागवत धर्म का इतिहास है। यह नामकरण कब हुआ यह विचारणीय विषय नहीं है। पर इस भागवत धर्म के तत्व वेदों में भी मिलते हैं। इसमें सन्देह का स्थान नहीं। महाभारत धार्मिक क्रान्ति की पहली आधार शिला हैं जिसपर समाधिस्थ होकर मनुष्य भागवत धर्म की विभिन्न परंपराओं का साक्षात्कार कर सकता है। वैष्णव धर्म और भारतीय संस्कृति का यह पहला विश्वकोप है। शांति पर्व के नारायणीयोपाख्यान में इस भागवत धर्म का बड़ा सुन्दर विवेचन हुआ है। वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक की धार्मिक क्रान्तियों का सुन्दर समन्वित रूप नारायणीयोपाख्यान में प्रस्तुत किया गया है। भागवतधर्म वैदिक तत्वज्ञान को सर्व-जन-सुलभ करने का सुन्दर उपाय प्रस्तुत करता है। वैदिक और अवैदिक ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर, आर्य और निषाद संस्कृतियों का सुन्दर सुखद संगम भागवत धर्म है। श्रीमद्भगवद्गीता में इस धर्म का सार संगृहीत हैं। भागवत धर्म की विजय वैजयन्ती शताब्दियों तक भारतभू पर फहराती रही। बौद्ध धर्म के आगमन से फिर विषमताएँ उत्पन्न हुईं, जो शताब्दियों तक समानांतर चलती रहीं। धर्म में फिर एक बड़ी क्रांति की आवश्यकता का अनुभव हुआ। बौद्ध धर्म निवृत्ति परक धर्म था और भागवत धर्म प्रवृत्तिपरक। इस निवृत्ति और प्रवृत्ति के अन्तर को समाप्त करने के लिए अनेक प्रयत्न हुए। बौद्ध धर्म की महायान शाखा उन्हीं प्रयत्नों में एक भगीरथ प्रयत्न कहा जा सकता है। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय में जन साधारण के कल्याण के कुछ समान मार्ग निकाले गए जो केवल नामभेद से शताब्दियों तक चलते रहे। वैष्णव, शैव, शाक्त जैन और बौद्ध सभी सम्प्रदायों ने इन प्रयत्नों में योगदान दिया। हमारा पुराण साहित्य इसी युग की कृति है। यह देख कर आश्चर्य होता है कि वैष्णव, शैव, ब्राह्म, सौर आदि सब पुराणों में एक ही भावना मिलती है। केवल नाम का भेद है। इतना ही नहीं जैन और बौद्ध पुराण भी उसी भावना से अनुप्राणित हैं। कविकुल-गुरू कालिदास ने रघुवंश में लिखा है—

> बहुधाप्यागमैर्भिन्ना पन्थानः सिद्धिहेतवः।
> त्वय्येव निपतन्त्योघाः जाह्नवीया इवार्णवे ॥

ईसा के आविर्भाव के लगभग भारतीय धर्म-क्षेत्र में एक और बड़ी क्रान्ति हुई। यह क्रान्ति संभवतः उस समय हुई जब शकों और हूणों के आक्रमण उत्तरी भारत पर होने लगे थे। इस क्रान्ति का इतिहास अभी तक अंधकार में है। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि भागवत धर्म के मूल स्तम्भ यादव या सात्वत लोग शूरसेन प्रदेश छोड़कर भारत के दक्षिण और पश्चिम में चले गए थे। उनके साथ साथ बहुत से जैन और बौद्ध धर्मानुयायी भी दक्षिण में पहुँचे और दक्षिण देश को उन्होंने अपने धर्म-प्रचार का क्षेत्र बनाया। इतिहासकारों में इस विषय को लेकर बड़ा विवाद है कि सात्वत लोग उत्तरी भारत को छोड़कर दक्षिण में कब गए। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐन्द्र महाभिषेक के प्रसंग में सात्वतों का निवास दक्षिण भारत बतलाया गया है।[1]

के० एस० आयंगर ने 'परम संहिता' की भूमिका में और 'सात्वत' नामक लेख में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है और बतलाया है कि जब मागध जरासंध ने सात्वतों पर आक्रमण किया तो वे शूरसेन प्रदेश छोड़कर भारत के पश्चिमी समुद्र तट और दक्षिण में जाकर बस

१—एतरेय ब्राह्मण ८—३—१४

गए। डॉ० कृष्णस्वामी आयंगर ने यही निर्देश किया है कि द्रविड़ देश के अनेक राजाओं ने जो अपनी वंश परम्परा सात्वतवंशीय कृष्णचन्द्र से चलाई है उसका मूलकारण यही है। यदि ऐतरेय ब्राह्मण का रचनाकाल हम दशम शताब्दी ईसापूर्व मानें तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि दशम शताब्दी ईसापूर्व से भी बहुत पहले सात्वत लोग दक्षिण में जा चुके थे। इस विषय का विस्तार से विवेचन हम अपनी पुस्तक 'भक्ति-आन्दोलन और उसका मध्य-कालीन संस्कृति और साहित्य पर प्रभाव' में विस्तार से करेंगे। सात्वतों के संपर्क से संभवतः भागवत धर्म पाञ्चरात्र मत भी कहलाया। हमारा अभिप्राय यहाँ भागवत धर्म का इतिहास प्रस्तुत करना नहीं है, केवल हम यह बतलाना चाहते हैं कि यह भागवत धर्म सम्पूर्ण भारत वर्ष में फैल गया था और कई शाखाओं में विभक्त होगया था। शकों और हूणों ने भी इस धर्म को स्वीकार किया था जिसके प्रमाण आज भी उपलब्ध होते हैं। बेसनगर का शिला लेख और घोसुंडी का शिला लेख इस तथ्य के प्रमाण हैं। भागवत धर्म के उपास्य महाभारत काल से ही वासुदेव रहे हैं जो स्वयं विष्णु और नारायण रूप हैं। विष्णु के वासुदेव रूप में भी भगवान् के विग्रह की कल्पना पूर्ण हुई जान पड़ती है। षाड्गुण्यविशिष्ट विग्रह को ही भगवद्विग्रह वासुदेव कहा गया है।

ज्ञान-शक्ति-बलैश्वर्य वीर्य-तेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैः गुणादिभिः॥

पाञ्चरात्र मतका सबसे पहले प्रतिपादन महाभारत के शान्तिपर्व में हुआ है। फिर इसकी व्याख्या अनेक पाञ्चरात्र ग्रंथों में अनेक प्रकार से की गई है। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करते हुए शंकराचार्य ने भी पाञ्चरात्र मतका उल्लेख किया है।[1] उन्होंने इस मत का कुछ अंश त्याज्य और कुछ उपादेय माना है। परन्तु आगे के वैष्णवाचार्यों ने पाञ्चरात्र मत की एक परम्परा सिद्ध की है और उसका सम्बन्ध वेद से जोड़ा है। कुछ भी हो, वैष्णवभक्ति के सम्बन्ध में पाञ्चरात्र साहित्य बड़ा महत्वपूर्ण है। इस मत की अनेक संहिताएँ आदि उपलब्ध होती हैं। कपिंजल संहिता में २१५ संहिताओं का उल्लेख है। बहुत सी संहिताओं की रचना उत्तर में हुई और बहुत सी की दक्षिण में। इन संहिताओं का तिथि-निर्णय बड़ा दुस्तर कार्य है। मुख्य रूप से इन संहिताओं में ज्ञान, योग, क्रिया और चर्यादिविषयों का विवेचन हुआ है। ब्रह्म, माया और जीव का भी बड़े विस्तार से विवेचन हुआ है। ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों ही भाव स्वीकार किए गए हैं। सगुण रूप में भगवान् षाड्गुण्य विग्रह वाले हैं। इन षड्गुणों में सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है और शेष शक्ति आदि ५ गुण ज्ञान से सम्बद्ध हैं। भगवान् की शक्ति लक्ष्मी है जो दो रूप धारण करती है—क्रियाशक्ति और भूतिशक्ति। इन ६ गुणों में से दो-दो गुणों की प्रधानता होने पर ३ व्यूहों की सृष्टि होती है। अर्थात् ज्ञान और बल की प्रधानता से संकर्षण, ऐश्वर्य और वीर्य की प्रधानता से प्रद्युम्न तथा शक्ति और तेज की प्रधानता से अनिरुद्ध। वासुदेव को मिलाकर इन्हें चतुर्व्यूह कहा जाता है। पाञ्चरात्र मत में अवतार भावना का वैशिष्ट्य है। विभव को अवतार कहा गया है जो संख्या में ३९ माने गये गए हैं। धातु निर्मित मूर्तियाँ अर्चावतार मानी जाती हैं और प्राणियों के हृदय में स्थित भगवान् अन्तर्यामी माने गए हैं। जीव भी भगवन्मय ही है। जिसके माध्यम से भगवान् इस विश्व में लीला करते हैं सृष्टि, स्थिति, विनाश, निग्रह तथा अनुग्रह भगवान् का सुदर्शन चक्र

१—शारीरक भाष्य २—२; ४२—४५ सूत्र

है। निग्रह-शक्ति के कारण जीव के वास्तविक आधार ऐश्वर्य तथा ज्ञान का तिरोभाव हो जाता है। यह निग्रह-शक्ति ही अविद्या, महामोह, महातमिस्र हृदय-ग्रन्थि आदि कहे जाते हैं। इन्हीं से बंधकर जीव मलयुक्त और सबन्ध हो जाता है। जीव के कष्टों से आर्द्र होकर भगवान् की कृपा का आविर्भाव होता है जो अनुग्रह शक्ति कहलाती है। जिससे जीव का कल्याण होता है और जिसके अवलम्बन से उसे परमधाम की प्राप्ति होती है। इस अनुग्रह की प्राप्ति को ही पाञ्चरात्रमत में साधना मार्ग कहा है। उसकी प्राप्ति का एकमात्र उपाय शरणागति और प्रपत्ति है। जिसका पारिभाषिक नाम 'न्यास' है और यह एक मानसिक भावना है। साधना की पूर्ति पर जीव को ब्रह्मभावापत्ति होती है। जिसको प्राप्त कर वह परमधाम में भगवान् के साथ विचरण करता है। पाञ्चरात्रमत में साधना पद्धति के भेद से अनेक आगम और संहिताओं का निर्माण हुआ परन्तु मूल भावना एक ही रही। पाञ्चरात्रमत में वैखानस आगमों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पाञ्चरात्रमत वैष्णव संप्रदाय का ही एक रूप है। दक्षिण में इस संप्रदाय का जब इतना शास्त्रीय विवेचन हो रहा था और इतनी संहिताओं का निर्माण हो रहा था, बौद्ध जैन, शैव और शाक्त संप्रदाय भी अपने-अपने सिद्धान्तों के प्रचार और निर्माण में संलग्न थे। शैवों की आचार्य परंपरा वैष्णवों की आचार्य परंपरा के समान पुष्ट नहीं थी; इसलिए उनका प्रचार जन-आंदोलन के रूप में था। वास्तव में शैवसंतों से ही भक्ति-आन्दोलन को जन-आन्दोलन का रूप मिला। इन शैवसंतों की संख्या ६४ मानी जाती है। जिनमें माणिक्कवाचक संबंध वागीश और सुन्दर विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इन सन्तों के गीत आज भी सुरक्षित हैं। इन संग्रह ग्रंथों में देवरम् और तिरुवाचकम् नामक संग्रह महत्त्वपूर्ण हैं। इन शैवसंतों के समकक्ष वैष्णव संत भी अपने हृदय की पुकार को लेकर जनता-जनार्दन के सम्मुख उपस्थित हुए। भक्ति का शास्त्रीय विवेचन इनका उद्देश्य नहीं था। इनकी दृष्टि में भगवान् के दरबार में जाति-पाँति का कोई भेद भाव नहीं था। संभवतः शास्त्रीय भक्तिनिरूपण की प्रतिक्रिया में इन आलवार भक्तों ने अपनी आवाज जनता में उठाई और अपने हृदय के सच्चे उद्गारों से मानवमात्र को प्रभावित किया। इनके उद्गार आज भी नालायिर प्रबन्धम् में सुरक्षित हैं। इनके गीत वेद ग्रंथों के समकक्ष माने जाते हैं।

'प्रबन्धम्' को तमिल वेद कहा जाता है। इन संत भक्तों की भक्ति के अजस्र प्रवाह ने सारा दक्षिण प्रांत सराबोर होगया। और परम्परागत संस्कृत के आचार्यों को यह फिक्र पड़ी कि कहीं इनके सम्प्रदाय इस प्रवाह के शिकार न बन जाँय। इस लिए इन्होंने 'तमिल वेद' का भली भाँति अध्ययन कर अपने शास्त्रों से अपनी संगति बैठाने का प्रयत्न किया। यही कारण है कि ये आचार्य 'उभय वेदान्ती' कहलाते हैं। यहीं से भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात समझना चाहिए। इससे पूर्व भक्ति का प्रचार आन्दोलन के रूप में नहीं था। इस आन्दोलन की पृष्ठ भूमि में एक और भी महत्वपूर्ण घटना थी। ९ वीं शताब्दी में स्वामी शंकराचार्य ने जाँति पाँति की संकीर्ण परिधि को हटाने और सामाजिक विषमता दूर करने और बौद्धमत के विकृत रूप के निष्कासन का भागीरथ प्रयत्न किया था। बौद्ध और जैन मत के मूल सिद्धान्तों की संगति अद्भुत तर्कशैली के द्वारा उन्होंने वैदिक धर्म से सिद्ध की और अपनी दिव्य प्रतिभा के प्रभाव से चतुर्दिक प्रचलित बौद्ध एवं जैन मत का खंडन कर अपने मत की स्थापना की थी। परम्परागत दोषों को दूर कर समाज को एक नवीन आलोक दिखाने का

सराहनीय कार्य किया था। दूसरी क्रान्ति के कारण जो प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग का एकीकरण हुआ था वह कालान्तर में समाज के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। इसलिए उन्होंने श्रुति स्मृति वेद विहित वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करके निवृत्ति मार्ग के वैदिक संन्यास धर्म को कलिकाल में पुनर्जन्म दिया। अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए उन्होंने परमार्थ दृष्टि से ब्रह्म को सगुण स्वीकार नहीं किया था। मायामिथ्यात्व के कारण उपासना गौण होगई। शंकर के विचारों का प्रवाह देश के सभी प्रान्तों और भाषाओं में बड़े वेग से प्रवाहित हुआ। समस्त वैष्णव सम्प्रदायों पर शंकर का आतंक जम गया। इसलिए परवर्ती वैष्णवाचार्यों के लिए एक समस्या बन गई कि समाज-धर्म की पुनः स्थापना किस प्रकार की जाय। परन्तु मानव की स्वाभाविक रागात्मिका भक्ति भावना के ऊपर धर्म का वह बौद्धिक विश्लेषण विजय प्राप्त न कर सका और समय पाकर उस भावना का स्रोत तर्क के प्रस्तरों को फोड़ कर निर्झरिणी के रूप में फूट निकला।

शंकर के मायावाद का प्रचार सम्पूर्ण भारत में हो चुका था, पर साथ ही साथ भक्ति के बीज के लिये भी उपयुक्त भूमि प्रस्तुत हो चुकी थी। नवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक का भारतवर्ष का धार्मिक इतिहास भक्ति-आन्दोलन का इतिहास है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे आचार्य-युग कह सकते हैं। इस युग के आचार्य वैष्णव आचार्य कहलाए। समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में परम आचार्य श्रीकृष्ण माने गए हैं। श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने चार शिष्यों को वैष्णव तत्त्व का उपदेश दिया था जिसका उल्लेख पद्मपुराण में इस प्रकार है—

> श्रीब्रह्मरुद्रसनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।
> चात्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात्॥

'प्रमेय रत्नावली' में इन चारों सम्प्रदायों के प्रवर्त्तक-आचार्यों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

> रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
> श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुःसनः॥

इस प्रकार रामानुजाचार्य श्री सम्प्रदाय के, मध्वाचार्य ब्रह्मसम्प्रदाय के, विष्णुस्वामी रुद्र सम्प्रदाय के और श्री निम्बार्काचार्य सनक सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। श्री रामानुजाचार्य पहले वैष्णव आचार्य थे जिन्होंने मायावाद के विरोध में भक्ति के सिद्धान्त की शास्त्रीय प्रतिष्ठा की। इनके प्रयत्नों से वैष्णव धर्म का सम्पूर्ण भारतवर्ष में - विशेषतया दक्षिण प्रदेश में प्रचार और प्रसार हुआ। इनके सम्प्रदाय का नाम विशिष्टाद्वैत हुआ। चित्, अचित् और ईश्वर तीन पदार्थों में चित् को ये भोक्ता जीव मानते हैं, अचित् को भोग्य जगत् और ईश्वर को अन्तर्यामी परमेश्वर। इनके मत में निर्गुण ब्रह्म की कल्पना ही असंभव है। निर्गुण ब्रह्म का अर्थ केवल इतना ही है कि वह प्राकृत तथा लौकिक गुणों से रहित है, ईश्वर चित्, अचित् का नियमन करता है इसलिए विशेष्य कहलाता है। जीव, जगत् नियम्य होने से विशेषण कहलाते हैं। विशेष्य की सत्ता पृथक् रूप से सिद्ध है विशेषण की नहीं, इस प्रकार विशेषणों से युक्त विशेष्य की एकता आचार्य जी स्वीकार करते हैं, इस तरह से यह सिद्धान्त अद्वैत होता हुआ भी विशिष्टाद्वैत है। आचार्य जी ने शंकर के मायावाद का युक्तिपूर्वक खण्डन किया और बतलाया कि जब जगत् कर्ता ब्रह्म नित्य है तो कारण रूप जगत् अनित्य किस प्रकार हो सकता है। जीव और ब्रह्म में भी उन्होंने

अंश-अंशीभाव माना है। तत्त्वमसि जैसे महा वाक्य की व्याख्या आचार्य जी ने बड़े विचित्र ढँग से की। तस्य त्वमसि (दासः)। इस प्रकार भगवान् और जीव का सम्बन्ध इन्होंने सेव्य-सेवक रूप में माना जिसे शेष शेषीभाव भी कहा गया है। नारायण इनके उपास्य हुए। अपने स्वामी नारायण को आत्म-समर्पण करना ही जीव के लिए सबसे बड़ी साधना है। उसमें इन्होंने दास्यभाव की भक्ति को महत्व दिया और 'प्रपत्ति को भक्ति का सार बताया' प्रपत्ति द्वारा भगवत्कृपा की प्राप्ति होती है और भगवत्कृपा से नारायण की।

दक्षिण भारत का दूसरा उल्लेखनीय सम्प्रदाय माध्व सम्प्रदाय है जिसके प्रवर्त्तक मध्वाचार्य थे। इस सम्प्रदाय के द्वारा भक्ति-भावना को विशेष बल मिला। वस्तुतः व्यवहार पक्ष में यह भक्तिवादी सम्प्रदाय है और अध्यात्मपक्ष में भेदवादी या द्वैतवादी, रामानुजाचार्य ने मायावाद का खण्डन करते हुए भी अपना सम्बन्ध अद्वैतवाद से नहीं तोड़ा था अद्वैत वेदान्त का खण्डन माध्व मत के आचार्यों ने भी खुल्लमखुल्ला रूप से किया। माध्वमत के सिद्धान्तों का सार इस प्रकार है—

> श्री मन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्त्वतो
> भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः।
> मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनम्
> ह्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः॥

इस सम्प्रदाय का प्रचार दक्षिण भारत—विशेषकर कर्नाटक और महाराष्ट्र प्रदेश—में हुआ। उत्तर भारत में बंगाल इस सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र बना। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय इसी का बँगला रूप है। कहा जाता है कि ब्रज मण्डल को इतना गौरव इसी सम्प्रदाय के कारण प्राप्त हुआ है।

सनक सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य निम्बार्क (११६२ ई०) माने जाते हैं। निम्बार्क वैष्णवों का प्रचार-स्थल वृन्दावन रहा। गोवर्धन के पास निम्बग्राम आज भी उनका तीर्थ स्थान है। इस सम्प्रदाय को कुछ विद्वान् सभी वैष्णव सम्प्रदायों में प्राचीनतम मानते हैं। वास्तव में अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में तो शंकर के मायावाद का खण्डन किया गया है किन्तु इस सम्प्रदाय में मायावाद का खण्डन नहीं हुआ। इसका सिद्धान्त द्वैताद्वैत सिद्धान्त कहलाता है। निम्बार्काचार्य के सिद्धान्त बड़े सूक्ष्म और सरल हैं। केवल दश श्लोकों में उनके सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है। इन्होंने भी प्रपत्ति के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया। ये सबसे पहले आचार्य थे जिन्होंने उत्तर भारत में राधा कृष्ण की भक्ति का प्रचार किया।

रुद्र सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक विष्णुस्वामी का इतिहास अभी तक अन्धकार में है। कहा जाता है कि भगवान् के साक्षात् दर्शन करने की उत्कट इच्छा से स्वामी जी ने घोर तपस्या की और उसके सफल न होने पर अन्न जल छोड़ दिया। सातवें दिन भगवान् श्यामसुन्दर ने वेणुवादन करते हुए शृङ्गारयुत किशोर मूर्ति में आपको दर्शन दिये और बालकृष्ण रूप में इन्हें उपदेश दिया। तभी से ये बालकृष्ण की उपासना करने लगे। विष्णु स्वामी का समय कोई कोई विद्वान् तो ईसा से छठी शताब्दी पूर्व मानते हैं। इस सम्प्रदाय के आचार्य बिल्व-मंगल ने महाप्रभु वल्लभाचार्य को स्वप्न में विष्णु स्वामी की शरण में आने का उपदेश दिया था। विष्णु स्वामी के ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप हैं और वे अपनी ह्लादिनी संवित् के द्वारा आश्लिष्ट हैं; माया उनके अधीन रहती है। ईश्वर के नृसिंह रूप को इस सम्प्रदाय में महत्व

दिया गया है, पर कहा जाता है कि विष्णु स्वामी नृसिंह तथा गोपाल दोनों के उपासक थे रुद्र सम्प्रदाय को नवीन स्फूर्ति और शक्ति महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क से प्राप्त हुई। महाप्रभु के उपास्य कुलदेवता गोपालकृष्ण थे। इन्होंने भक्ति सिद्धान्त की बड़े व्यवस्थित ढंग से व्याख्या की और वैदिक काल से चली आती हुई भक्ति परम्परा का शास्त्रीय ढंग से उन्नयन किया। उनकी सिद्धि और आध्यात्मिकता से न केवल तत्कालीन समाज ही प्रभावित हुआ, अपितु दिल्ली का मुसलमान बादशाह सिकन्दर लोदी ने भी उनके प्रभाव में आकर अपने दृष्टिकोण को भी बदल दिया। कृष्णदेव राय की विशाल सभा का कनकाभिषेक वल्लभ सम्प्रदाय भी महत्व पूर्ण घटना है। शंकर के मायावाद का प्राचीन खंडन अभी तक कोई आचार्य नहीं कर सका था। विष्णुस्वामी के रुद्र संप्रदाय को नवीन साँचे में ढालकर उसका नाम इन्होंने शुद्धाद्वैत रखा। आचार्य शङ्कर के, अद्वैत से भिन्नता प्रकट करने के लिए ही उन्होंने 'शुद्ध' विशेषण लगाया। शंकर ने माया युक्त ब्रह्म को जगत का कारण माना था। परन्तु इन्होंने शुद्ध ब्रह्म को जगत का कारण माना। ब्रह्म का परिणाम रूप ही जगत और जीव का सत्ता का कारण है। शंकर ने निर्गुण ब्रह्म को सगुण ब्रह्म की अपेक्षा महत्ता प्रदान की परन्तु महाप्रभु जी ने ब्रह्म के दोनों रूपों को सत्य माना वह एक ही समय में निर्गुण भी रहता है सगुण भी। यही उसका विरुद्ध धर्माश्रयत्व है। इसीलिए वह कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ है। वह अविकृत और अविकारी होते हुए भी भक्तों पर कृपा करने के लिए परिणामशील होता है। भगवान् कृष्ण स्वयं पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हैं। जब वे अपनी आत्मा मे आन्तर रमण करते है तब आत्मानंद कहलाते हैं। बाह्य रमण की इच्छा से जब वे अपनी शक्तियों का प्रकाशन करते है तब पुरुषोत्तम कहलाते हैं। और इसी रूप में वे आनन्दमय अगणितानन्द और परमानन्द कहलाते हैं। आचार्य वल्लभ का यह सिद्धान्त परम्परागत सभी भक्ति सम्प्रदायों के मेल में है इसमें कोई सन्देह नहीं। पाञ्चरात्र मत की यह सर्वश्रेष्ठ व्याख्या कही जा सकती है। भगवान् अपनी शक्तियों से वेष्टित होकर व्यापी वैकुण्ठ मे नित्य लीला करते हैं। यह व्यापी वैकुण्ठ विष्णुधाम से भी ऊपर है और गोलोक भी इसका अंश मात्र है। भगवान् की शक्तियां भी पुष्टि गिरा कान्त्या आदि उनके अधीन रहती है। लीला के निमित्त वे सपरिवार इस लोक में उतरते हैं। तब व्यापी वैकुण्ठ ही इस लोक मे बिराजता है और उनकी वे ही शक्तियाँ श्री स्वामिनी चन्द्रावली, राधा, यमुना आदि के रूप में अवतीर्ण होती हैं। श्रुतियाँ इस रस का आनन्द लेने के लिए गोपियों के रूप मे अवतीर्ण होती हैं। यह लीला नित्य रूप में आविर्भूत होती है।

आचार्य वल्लभ का दार्शनिक सिद्धान्त श्रीमद्भगवद्गीता के बिलकुल अनुकूल है। जिस प्रकार भगवद्गीता में ब्रह्म के तीन स्वरूप हैं आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक इसी प्रकार इनके मत में भी जगत क्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम ब्रह्म के तीन परिणाम ह। अक्षर ब्रह्म में आनन्दांश का कुछ तिरोधान रहता है। और पर ब्रह्म में आनन्द पूर्ण रहता है। अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति विशुद्ध ज्ञान के द्वारा होती है जबकि परब्रह्म की प्राप्ति का साधन एक मात्र भक्ति है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। गीता ८। २२

पुरुषोत्तम के अधिकारी केवल भक्त ही हैं। जीव रूप में भी भगवान स्वयं ही आते हैं। इसमें केवल भगवान् की इच्छा ही कारण है। आनन्दादि अंशों का तिरोधान हो जाता है। ऐश्वर्य के तिरोधान से दीनता, यश के तिरोधान से हीनता, श्री के तिरोधान से आपत्ति-

अज्ञानता, ज्ञान के तिरोधान से देहाध्यासना। जीव का आविर्भाव ब्रह्म से इस प्रकार होता है जैसे अग्नि से स्फुलिंग भगवान् के अविकृत चिदंश से जीव का आविर्भाव होता है और उनके अविकृत सदंश से जड़ का। जीव में केवल आनन्द का तिरोभाव है और जड़ में चित् और आनन्द दोनों का। आनंदांश के तिरोधान होने से ही जीव का सम्बन्ध अविद्या में हो जाता है और उसकी संज्ञा संसारी हो जाती है। पहले वह विशुद्ध रहता है। भगवान् की कृपा से संसारी जीव में जब आनन्द का आविर्भाव होता है तो वह मुक्त होकर स्वयं सच्चिदानन्द हो जाता है। भगवत् कृपा का साधन ही पुष्टि मार्ग है। इस प्रकार महाप्रभु जी अविकृत परिणामवाद को मानने वाले हैं। अर्थात् निर्गुण सच्चिदानन्द ही अविकृत भाव से जगद्रूप में परिणत हो जाते हैं। आचार्य चरण जगत की उत्पत्ति और विनाश नहीं मानते केवल आविर्भाव और तिरोभाव ही मानते हैं। जगत और संसार का आचार्य चरण ने बड़ा सूक्ष्म भेद किया है भगवान् के सदंश से प्रादुर्भूत पदार्थ जगत है। पर अविद्या के कारण जीव के द्वारा कल्पित व्यावहारिक पदार्थ संसार है। जगत जीव और ईश्वर की भांति नित्य है। साधना पक्ष में महाप्रभु जी ने शास्त्र सम्मत वैदिक मार्ग का प्रवर्तन किया और उन्होंने सभी परम्पराओं का समन्वय बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया। पुष्टिमार्ग प्रवाह मार्ग और मर्यादा मार्ग—तीनों मार्गों की सुन्दर विवेचना करते हुए आचार्य जी ने सभी भक्ति पद्धतियों का सुन्दर विवेचन किया। मर्यादा मार्ग को वे वैदिक मार्ग बताते हैं जो अक्षर ब्रह्म की वाणी से उत्पन्न हुआ है। परन्तु पुष्टि मार्ग साक्षात् पुरुषोत्तम के शरीर से ही निस्सृत हुआ है। इसीलिए मर्यादा भक्ति में फल की इच्छा रहती है। इस मार्ग का भक्त सायुज्य भक्ति को अपना ध्येय मानता है। परन्तु पुष्टि मार्गी केवल भक्ति चाहता है। वास्तव में पुष्टि मार्ग जैसा सुलभ और सरल मार्ग अभी तक दूसरा नहीं था। वर्ण, जाति; देश संप्रदाय आदि भेदों से परे जीव मात्र के लिए कलिकाल में आनन्द प्राप्ति का यही एक मात्र साधन है।

पुष्टि मार्गीय भक्ति का आचार्य जी ने बड़े विस्तार से शास्त्रीय विवेचन किया है। इस मार्ग में भक्त को किसी साधन की अपेक्षा नहीं रहती।

"निस्साधन भजनीये, भावतनौ मे मतिर्भूयात्।।" नवनीतप्रियाष्टक

भक्तों पर कृपा करने के लिए ही भगवान् अपनी लीला करते हैं। लीला उनकी विलास की इच्छा मात्र है। (सुबोधिनी—भाग–३ स्कंध)

अनुग्रह ही भगवान् की नित्य लीला का अन्यतम विकास है। जब जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध हो जाता है तभी उसकी मुक्ति हो जाती है। यही भगवान के आविर्भाव का प्रयोजन है। भगवान् के अनुग्रह से ही रागानुगा भक्ति की प्राप्ति होती है। उस अनुग्रह की सिद्धि सेवा एकान्त निष्ठा तथा शुद्ध अनुराग से होती है। वह सेवा तीन प्रकार की है तनुजा, वित्तजा एवं मानसी। अनुग्रह बिना उत्कट प्रेम के सम्भव नहीं। इस उत्कट प्रेम का परिचय विरह के द्वारा ही होता है, इसीलिये पुष्टि सम्प्रदाय में विरह भावना का बड़ा महत्व है और उसके लिये गृह-त्याग भी करना पड़ता है। भगवत् प्रेम की प्राप्ति के लिये भक्त को तीन अवस्थाओं में होकर गुजरना पड़ता है—स्नेह, आसक्ति और व्यसन। प्रेम की इन तीन श्रेणियों का विवेचन आचार्य चरण ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। आज के पीड़ित मानव के लिये पुष्टि मार्ग का आचरण रामबाण हो सकता है। ब्रह्म सम्बन्ध

के पीछे एक बड़ा व्यवहारी दर्शन है इसका विधान आचार्य चरक के सिद्धान्त रहस्य नामक स्तोत्र में बतलाया है। गुरु आत्मनिवेदन मंत्र से ब्रह्म सम्बन्ध कराता है। कहा जाता है कि यह आत्म निवेदन मंत्र स्वयं श्रीकृष्ण जी ने आचार्य जी को बताया था।

भगवत् अनुग्रह की चर्चा प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलती है। 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य' तथा 'तमक्रतु पश्यति वीतशोको' धातु प्रसादात् महिमानमात्मानम' आदि श्रुति वाक्य इस बात का उद्घोष करते है कि भगवत् कृपा का सिद्धान्त बहुत पुराना है।

श्री, ब्रह्म, रुद्र एवं सनक इन चार सम्प्रदायों का पुनरुत्थान दक्षिण में हुआ। श्री सम्प्रदाय की प्रचार भूमि विशेष रूप से दक्षिण रही, पर उत्तर में भी रूपांतर से इसका प्रचार हुआ और भक्ति के प्रचार मे इस सम्प्रदाय ने अपना विशिष्ट योगदान दिया।

ब्रह्म तथा सनक सम्प्रदायों का भी उत्तर भारत में अपना विशिष्ट स्थान है। परन्तु रुद्र सम्प्रदाय का पुष्टि सम्प्रदाय नाम से प्रचार और प्रसार उत्तरी भारत में बहुत अधिक हुआ। इन सभी सम्प्रदायों ने भक्ति आन्दोलन को जन आन्दोलन बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इस आन्दोलन की व्यापकता और त्वरित गति से प्रभावित होकर ही सम्भवतः पाश्चात्य विद्वानों ने इसे 'बिजली की चमक' बताया है। सभी भारतीय भाषाओ के साहित्य को समृद्ध और प्राणवान् बनाने का श्रेय इस सम्प्रदाय को है। १० वीं शताब्दी से लेकर १८ वीं शताब्दी तक भारतीय साहित्य की मूल प्रेरणा इन्हीं सम्प्रदायों से अनुप्राणित होती रही है। भक्ति-आन्दोलन के जन-आन्दोलन के स्वरूप का विवेचन करने से पूर्व हम यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि दक्षिण की भाषाओं के साहित्य को किस प्रकार इस वैष्णव-धर्म ने समृद्ध किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वैष्णव धर्म के प्रभाव से सभी भाषाओं का साहित्य सौन्दर्य और माधुर्य से ओत प्रोत होगया। जीवन की दिशाएँ बदल गई और साहित्य में वह सरसता, मधुरता, लालित्य, शिवत्व और सौन्दर्य आगया जिनके कारण वैष्णव साहित्य सदा के लिए अमर हो गया। आश्चर्य है कि आज भी वही साहित्य सुन्दरतम है। सूर और तुलसी की तुलना का कोई दूसरा कवि अभी तक भारत में नहीं हो सका है। तमिल, तेलेगू, कन्नड़, मलयालम बंगला, आसामी, उड़िया, मराठी, गुजराती, हिन्दी आदि का वैष्णव साहित्य आज भी इन भाषाओं के साहित्य का हृदय-स्थानीय है।

तमिल साहित्य में यद्यपि शैव-साहित्य की प्रधानता है परन्तु भावना वही वैष्णव धर्म की है। वैष्णव भक्त आलवारों की रचनाएँ भी कम महत्व पूर्ण नहीं। ये रचनाएँ आज भी तमिल वेद के नाम से पुकारी जाती हैं। सुप्रसिद्ध आलवार भक्त विष्णु स्वामी का 'दिव्य प्रबन्धम्' आज भी तमिल साहित्य की विशिष्ट निधि है। कहना न होगा कि तेलेगु साहित्य का भी वैष्णव भक्ति-साहित्य आज अनुपम है। महाकवि पोताना का भागवत पुराण तेलेगु का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसी प्रकार और कितने ही अन्य तेलेगु साहित्य में रत्नरूप से विराजमान है। कृ[illegible]देव राय का विष्णु चित्तीय काव्य और महाकवि वेमना तथा तिमन्ना के काव्य तेलेगु साहित्य [illegible] अलंकार हैं। कन्नड़ भाषा में भी वैष्णव साहित्य की कमी नहीं है। रामानुजाचार्य के प्रभाव [illegible] कन्नड़ भाषा में ऐसे साहित्य का निर्माण हुआ जिसके कारण वह युग कन्नड़ भाषा का 'स्व[illegible]युग' कहा जाता है। कुमारव्यास, कुमार वाल्मीकि तथा चाटु विट्ठलनाथ के प्रसिद्ध [illegible] के अतिरिक्त उन वैष्णव संतों का जो दास नाम से साहित्य में विख्यात है, साहित्य [illegible] बहुत ही उच्च कोटि का है। पुरंदरदास, कनकदास, विट्ठलदास, वेंकटदास,

विजयदास तथा कृष्णदास के पद आज भी चिर नवीन हैं। लक्ष्मीश का जैमिनि भारत एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मलयालम भाषा में भी वैष्णव काव्यों का प्राचुर्य है। इस दृष्टि से संभवतः मलयाली साहित्य सब से अधिक सम्पन्न है। त्रावणकोर के महाराजा का रामचरित एक महत्त्वपूर्ण काव्य है। इसी प्रकार चेरुस्सेरी नम्बूद्री का कृष्ण गाथा काव्य और तुंजन कवि का भागवत बड़े महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। पोन्नान कवि अपने समय के गोस्वामी तुलसीदास कहे जा सकते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भक्ति-आन्दोलन बिजली की चमक की भाँति सारे भारतवर्ष में फैल गया। दक्षिण के वैष्णव आचार्यों का प्रभाव उत्तर में भी बहुत व्यापक रहा, पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उत्तर भारत मध्य भारत अथवा पूर्वी भारत में भक्ति-आन्दोलन का श्रीगणेश दक्षिण के वैष्णव आचार्यों द्वारा ही हुआ हो। उत्तर भारत में पौराणिक धर्म का प्रचार पहले से ही था। शैव भक्ति का प्राधान्य था। कृष्णावतार तथा रामावतार की भी व्यापकता थी। दशावतार-चरित सम्बन्धी तो कई ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। पृथ्वीराज रासो का दसम वास्तव में दशावतार चरित ही है, राम और कृष्ण सम्बन्धी साहित्य प्रायः लोक परक था। दक्षिण के आचार्यों के सम्पर्क से उसमें नई शक्ति आ गई और वह ईश्वरोन्मुख हो गया। लीला-गान की परम्परा के उदाहरण उत्तर भारत के साहित्य में मिलते हैं। यह लीला-गान की परम्परा भागवत परम्परा से निश्चित रूप से भिन्न थी। अपभ्रंश-साहित्य में हमें कृष्णलीला सम्बन्धी अनेक गेयपद प्राप्त होते हैं। सिद्धों और नाथों ने जिस गेय परम्परा को अपनाया, वह अवश्य वैष्णव धर्म में रही होगी और यह परम्परा सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रचलित थी, जयदेव का गीतगोविन्द भागवत वाली परम्परा से निश्चित रूप से भिन्न परम्परा का है। विद्यापति और चण्डीदास के पद जयदेव की परम्परा के हैं। नाथ सिद्ध पश्चिमी भारत में अड्डा जमाए थे तो बौद्धसिद्धों की प्रचार भूमि पूर्वी भारत था। काश्मीर में शैव मत का बोलबाला था। संभवतः बौद्धसिद्धों के प्रभाव से बंगाल में सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय प्रचलित हुआ। बौद्धों का सहजयान सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय से बहुत बातों में मिलता जुलता है। वज्रयानी सिद्धों ने महासुख की उपलब्धि के लिये अनेक उपायों का वर्णन किया है। नाथसिद्धों और बौद्धसिद्धों की शब्दावली भी बहुत कुछ मिलती जुलती है। सहजयान वज्रयान का ही दूसरा नाम है। सहजावस्था की प्राप्ति में ही ये सिद्धि की पूर्णता मानते हैं। सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय में सहज शब्द की व्याख्या को बिलकुल बदल दिया था। ये लोग रागानुगा प्रेमा भक्ति के अनुयायी बने और प्रेम को परमात्मा का सहज गुण या सहज रूप बतलाया। इसी प्रेम के द्वारा मनुष्य सहज भाव प्राप्त कर सकता है। रूप जब स्वरूप को प्राप्त कर लेता है तभी मनुष्य सहज भाव को प्राप्त होता है। मनुष्य के अन्तर्गत भगवान् का आध्यात्मिक तत्त्व ही स्वरूप है और जो निम्नतर भौतिक तत्त्व है वह रूप है। रूप पर स्वरूप के आरोप से पार्थिव प्रेम को अपार्थिव रूप में परिणत करना होता है, किन्तु बिना रूप की सहायता के स्वरूप की उपलब्धि नहीं हो सकती। इसी लिये अपार्थिव प्रेम की अनुभूति के लिये ये परकीया प्रेम को महत्त्व देते हैं। सहज रूप मनुष्य को प्रेमा भक्ति से ही प्राप्त हो सकता है। तभी उसमें शुद्ध सत्त्व की प्रतिष्ठा होती है और वह समभाव को प्राप्त होता है। सहजिया सम्प्रदाय की साधना का गूढ़ तत्त्व यह है कि पुरुष स्वयं को स्त्री समझकर भगवान् की उपासना करे। ऐसा करने से वह यौन सम्बन्ध का परित्याग कर सकता है। इस सम्प्रदाय में भगवान् आनन्द, माधुर्य और सौन्दर्य के उत्स

हैं। राधाकृष्ण प्रकृति और पुरुष हैं। इन में आश्रयाश्रयी भाव है। सहजिया सम्प्रदाय एक तान्त्रिक मार्ग कहा जा सकता है परन्तु शुद्ध तान्त्रिक मत से साधना पक्ष में इसकी पर्याप्त भिन्नता है।

मध्वाचार्य के सम्प्रदाय का बंगाल पर बड़ा प्रभाव पड़ा था जिसके फलस्वरूप बंगाल में गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय की परम्परा चली। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में सख्य, दास्य तथा वात्सल्य भावों को भी उपासना में उपादेय माना है किन्तु सहजिया वैष्णव केवल माधुर्य भाव की उपासना को ही श्रेष्ठ समझते हैं। गौडीय वैष्णवों में तो परकीया तत्त्व को सिद्धान्त रूप से ही स्वीकार किया था पर सहजिया वैष्णवों ने इस तत्त्व को व्यावहारिक रूप भी दिया। वास्तव में सहजिया वैष्णवों के सिद्धान्त बौद्ध सहजयान के सिद्धान्तों से बहुत मिलते जुलते हैं। चण्डीदास की उपास्य बाशुली देवी वज्रयानियों की बज्रधात्वीश्वरी का ही दूसरा रूप है। सहजिया सम्प्रदाय के अतिरिक्त बंगाल में आउल, बाउल, साईं, दरवेश आदि अन्य कई सम्प्रदायों का भी प्रचार था। बाउल तो सहजिया वैष्णवों से भी एक कदम और आगे थे। सहजिया लोगों का प्रेम राधा और कृष्ण दो व्यक्तियों की अपेक्षा रखता है जबकि बाउलों का प्रेम 'मनेर्मानुस' के प्रति होता है। उनका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक अलौकिक प्रेमपात्र है। उसे उसी के प्रति प्रेम करना चाहिये।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है बंगाल की गौडीय शाखा माध्व सम्प्रदाय की ही एक शाखा कही जा सकती है पर इसका व्यावहारिक पक्ष माध्व सम्प्रदाय से भिन्न है। चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव को भक्तिक्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिये। इस भक्ति-आन्दोलन के युग में उत्तर भारत के वैष्णवाचार्यों में चैतन्य महाप्रभु का नाम अग्रगण्य है। यह एक विचित्र घटना है कि चैतन्य महाप्रभु की कर्मभूमि बंगाल ही रही पर उनके सम्प्रदाय का ब्रजभूमि से विशेष सम्बन्ध रहा। वास्तव में चैतन्यमत का शास्त्रीय विवेचन ब्रजभूमि में ही हुआ। माध्व मत के अनुयायियों में माधवेन्द्रपुरी, गौडीय सम्प्रदाय और माध्व सम्प्रदाय के बीच में सेतु का कार्य करने वाले हैं चैतन्य महाप्रभु। इन्हीं के यह शिष्य ईश्वरपुरी के शिष्य थे, यद्यपि दीक्षा उन्होंने केशव भारती से ली थी। भक्ति के प्रसार और प्रचार में चैतन्य महाप्रभु ने बड़ा योगदान दिया। इन्होंने भारतवर्ष के सभी विख्यात तीर्थ स्थानों की यात्रा की। दक्षिण के तीर्थों के दर्शन से इनकी प्रवृत्ति वृन्दावन के उद्धार की ओर झुकी। वैष्णव धर्म के प्रचार में इन्हें नित्यानन्द जैसे सहयोगी मिले और दोनों ने मिलकर समस्त उत्तरी भारत को विशेषकर बंगाल को भक्ति स्रोत से आप्लावित कर दिया। ब्रज, विशेषकर वृन्दावन, के उद्धार का श्रेय बहुत कुछ चैतन्य महाप्रभु को है। यह विषय यद्यपि अभी तक विवाद का बना हुआ है फिर भी वृन्दावन के उद्धार में चैतन्य महाप्रभु का जो योगदान है वह कम महत्त्व का नहीं है। माधवेन्द्रपुरी उनसे पहले वृन्दावन में गोपाल की मूर्ति स्थापित कर चुके थे, चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन के उद्धार के लिये अपने दो प्रधान शिष्यों को भेजा। ये दो भक्त थे लोकनाथ गोस्वामी और भूगर्भाचार्य। चैतन्य के सहयोगियों में अद्वैताचार्य का नाम भी उल्लेखनीय है, चैतन्यमत को शास्त्रीय रूप देने का श्रेय चैतन्य के शिष्य षट् गोस्वामियों को है जिनके नाम हैं: रूप, सनातन, रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट और जीव गोस्वामी।

माध्व मत की शाखा होने पर भी चैतन्यमत का दार्शनिक दृष्टिकोण स्वतन्त्र है। माध्व सम्प्रदाय का मूलाधार द्वैतवाद है जबकि चैतन्य का अचिन्त्यभेदाभेद। अर्थात् भगवान्

श्रीकृष्ण परम तत्त्व है और उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्ति और शक्तिमान् में न भेद होता है और न अभेद। उनका सम्बन्ध तर्क के द्वारा अचिन्त्य है, चैतन्य मत में प्रेम को ही महान् पुरुषार्थ माना गया है और यह प्रेमा भक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अतिरिक्त पाँचवाँ पुरुषार्थ है। गौडीय वैष्णवों के सम्बन्ध में एक बात यह भी विचारणीय है कि इन्होंने साहित्य जगत् में भक्ति को रस की कोटि तक पहुँचाया। भक्तिरसामृतसिन्धु भक्तिरस का सुन्दर ग्रन्थ है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य पाँच भावों से भगवान् कृष्ण की भावमयी गोलोक लीला सम्बन्ध रखती है। रति की निम्न कोटि शान्त में है और चरमोत्कर्ष माधुर्य में। यह माधुर्य भाव-रति तीन प्रकार की बताई गई है: साधारणी रति, समञ्जसा रति और समर्था रति। इनमें समर्था रति सर्वोपरि है, जिसका एक मात्र लक्ष्य भगवान् का ही आनन्द है। उसके लिये भक्त मर्यादा का भी उल्लंघन कर सकता है। गोपीभाव इस रति का दृष्टान्त है। यह गोपीभाव ही अपने उत्कर्ष में राधाभाव पर पहुँच जाता है। गौडीय वैष्णवों के इस रतिभाव में और पुष्टि सम्प्रदाय के ब्रह्म सम्बन्ध में इतना साम्य है। यह बड़े आश्चर्य की बात है।

चैतन्य महाप्रभु का प्रभाव बंगाल के अतिरिक्त उत्कल में भी पड़ा। यों तो उत्कल भक्ति भावना का पहले से ही केन्द्र रहा है, पर जगन्नाथ जी के मन्दिर के निर्माण के पश्चात् तो यह प्रदेश वैष्णव भक्ति का महत्त्वपूर्ण पुण्यस्थल बन गया। भगवान् जगन्नाथ के आविर्भाव की कथा नारद पुराण, ब्रह्म पुराण, स्कन्द पुराण तथा कपिल संहिता आदि ग्रन्थों में मिलती है, दारु ब्रह्म का उल्लेख शाङ्खायन ब्राह्मण में भी मिलता है, कुछ इतिहासकारों का कथन है कि इस प्रदेश में शबरों का राज्य था। इसीलिये यहाँ लकड़ी की मूर्ति बनाई गई। कुछ भी हो, जगन्नाथ जी की पूजा इस प्रदेश में प्राचीनकाल से ही होती आई है। अनेकबार उत्कल के मन्दिरों पर विदेशियों के आक्रमण हुए हैं और उनके ध्वंसचिह्न मात्र अवशिष्ट रह गये हैं। ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा के प्रसङ्ग में इस तथ्य की ओर संकेत किया है। इस प्रदेश के मन्दिरों और मूर्तिकला के सम्बन्ध में यह बात लक्ष्य करने की है कि यहाँ वैष्णव धर्म के माध्यम से कई संस्कृतियों का संगम हुआ है। चैतन्य महाप्रभु ने राजा प्रतापरुद्र (१५०३ ई०) के समय में नीलाचल क्षेत्र को अपना प्रचार क्षेत्र बनाया और तभी से इस क्षेत्र का महत्त्व बढ़ गया। पुरी के सम्बन्ध में इतिहासकारों का यह भी मत है कि यहाँ की जगन्नाथ मूर्ति पर बौद्ध प्रभाव है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्कल प्रान्त बौद्धों का अड्डा रहा है। कटक जिले के रत्नगिरि नामक स्थान में आज भी बौद्ध महाविद्यालय पुष्पगिरि के भग्नावशेष मिलते हैं और स्थान-स्थान पर अवलोकितेश्वर, वज्रपाणि, आर्य तारा आदि बौद्ध देवता पाये जाते हैं। साँची से प्राप्त धर्मयन्त्रों से इस मूर्ति की बड़ी समानता है। कुछ लोगों का कहना है कि जगन्नाथ जी की रथयात्रा भी बौद्ध प्रभाव का फल है। उड़िया की कुछ पुस्तकों में जगन्नाथ जी बुद्ध के ही रूप माने गए हैं। जगन्नाथ जी को हम पूरा बौद्ध विग्रह तो नहीं मानते पर इसमें हमें कोई सन्देह नहीं है कि यहाँ के विधि-विधान, वास्तुकला, मूर्तिकला आदि इस बात को प्रमाणित करते हैं कि जगन्नाथपुरी में शबर, बौद्ध और ब्राह्मण संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय हुआ है। वैष्णव धर्म उत्कल प्रान्त में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित था। इसके प्रमाण कुछ शिलालेखों से मिलते हैं। हाथीगुफा का शिलालेख विशेषरूप से उल्लेखनीय है। चैतन्य के प्रभाव से उत्कल-साहित्य में पाँच महान् वैष्णव कवि हुए जो पञ्चसखा कहे जाते हैं—बलरामदास, अनन्तदास

जगन्नाथदास और अच्युतानन्ददास। इन सखाओं ने उड़िया भाषा में अनेक ग्रन्थ रचे और ये सखा चैतन्य महाप्रभु के लीलापरिकर माने जाते हैं। उन्होंने प्रेमा भक्ति का प्रचार इस प्रदेश में किया। इनके उपदेश सन्तों की ही भाँति थे और इनका दर्शन कबीर आदि सन्तों के दर्शन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इन्होंने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों का निरूपण किया है किन्तु परमतत्त्व निराकार शून्य पुरुष को माना है। इनके सिद्धान्तों में वैष्णव तान्त्रिक और बौद्ध तत्त्वों की त्रिवेणी दर्शनीय है। बंगाल से आगे असम प्रदेश में भी महाप्रभु चैतन्य के वैष्णवधर्म का प्रभाव पड़ा। असम प्रदेश प्राचीन काल से शाक्तों का गढ़ रहा है। कामाख्यापीठ कामरूप में ही है। वैष्णवधर्म की यह बड़ी भारी विजय थी कि शाक्त-प्रभाव देश में आज भी इतनी बड़ी संख्या में वैष्णव पाये जाते हैं। वैष्णवधर्म का प्रचार यहाँ शंकरदेव और माधवदेव ने किया। शंकरदेव महापुरुष कहलाते थे इसलिये उनसे प्रचारित धर्म को आज भी महाधर्म या महापुरुष धर्म कहते हैं। सिद्धान्त रूप से तो ये अद्वैतवादी थे और आचरण रूप में पूर्ण भक्त। इनका भक्तिरत्नाकर और भक्तिरत्नावली ग्रन्थ बड़े अद्भुत हैं। असमिया भाषा में असंख्य कीर्तन पदों की रचना शंकरदेव ने की। कुछ ग्रन्थ ब्रजबुलि में लिखे गए। हिन्दी के भक्ति-साहित्य का अध्ययन भक्तिभाव की दृष्टि से ब्रजबुलि-साहित्य के अध्ययन के बिना अधूरा ही है।

वैष्णव धर्म के ऐतिहासिक विवेचन में महाराष्ट्र के वैष्णव पंथों का उल्लेख भी आवश्यक है। महाराष्ट्र प्रान्त का बड़ा पुराना वैष्णव पंथ महानुभाव या मानभाव या महात्मा पंथ है। गुजरात में इसे अच्युत पंथ कहते हैं और पंजाब में जयकृष्ण पंथ। इस पंथ के अनुयायी अपनी सभी बातों को गोपनीय रखने में विश्वास रखते हैं। लोकमान्य तिलक ने इस पंथ को प्रकाश में लाने का कुछ प्रयत्न किया था। प्रसिद्ध इतिहासकार राजवाड़े, प्रसिद्ध लेखक भावे और यशवन्त पाण्डे ने इस पंथ के विषय में सराहनीय कार्य किये हैं। प्रत्येक बात को गुप्त रखने की भावना के कारण इस पंथ के अनुयायियों को यहाँ कुछ अश्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। एक कहावत भी प्रसिद्ध है 'करणी कसावाची बोलणी मानुभावाची'। इस पंथ के उपास्य देवता श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय हैं। कुछ ऐसे ऐतिहासिक कारण बने जिनसे ये हिन्दू धर्म-विरोधी समझे जाने लगे थे, परन्तु अब परिस्थिति कुछ बदल रही है। इस पंथ का उदय तेरहवीं शताब्दी में हुआ और इसके आद्य आचार्य गोविन्द प्रभु माने जाते हैं, परन्तु पंथ का प्रवर्तन श्री चक्रधर द्वारा हुआ और प्रचार उनके शिष्य श्री नागदेवाचार्य द्वारा। इस पंथ में स्त्री और पुरुष दोनों को ही संन्यास की दीक्षा दी जाती है। इस पंथ के कतिपय लीलापरक ग्रन्थ मराठी भाषा में मिलते हैं। कुछ मंगलगीत भी हैं। हिन्दुओं की जातिव्यवस्था के विरोध में इस पंथ का उदय हुआ था। इनकी सिद्धान्त दृष्टि द्वैतवाद की ओर है और भक्ति भावना योग से समन्वित। श्रीमद्भगवद्-गीता इनका मान्य ग्रन्थ है और इस पंथ के आचार्यों ने श्रीमद्भगवद्गीता की कई टीकाएँ लिखी हैं। इस पंथ का प्रचार पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान तक हुआ और मराठी भाषा का प्रचार सुदूर प्रदेशों में हुआ।

महाराष्ट्र का वास्तविक वैष्णव सम्प्रदाय 'वारकरी पन्थ' कहलाता है। इस पंथ के उपास्य विट्ठलदेव जी हैं जो कृष्णचन्द्र के बालरूप हैं। पण्ढरपुर इनका तीर्थ स्थान है जहाँ एक ईंट पर खड़े हुए विट्ठलजी की मूर्ति है और साथ ही रुक्मिणी जी भी विद्यमान हैं। विट्ठल शब्द की व्याख्या विद्वानों ने कई प्रकार से की है। संस्कृत के विद्वान् इस का विग्रह

इस प्रकार करते हैं—विदा ज्ञानेन, ठान् शून्यान्, लाति गृह्णाति इति विट्ठलः। कोई कोई विट्ठल को विटस्थल का अपभ्रंश मानते हैं अर्थात् ईंट पर खड़ा होने वाला और किसी किसी ने विष्णु का अपभ्रंश बिठोवा माना है। सन्त तुकाराम जी के अनुसार वि: गरुड़, और ठोवा वाहन। इस प्रकार बिठोवा की व्युत्पत्ति की है। इस पन्थ को वारकरी पंथ और भागवत पन्थ भी कहते हैं। तुलसी की माला इस पंथ का विशिष्ट चिह्न है। बिठोवा का ही दूसरा नाम पाण्डुरङ्ग है। इस पन्थ के मान्य ग्रन्थ भागवत और भगवद्गीता हैं। महाराष्ट्र प्रान्त की भक्तिभावना बड़ी पुरानी है पर पण्ढरपुर में विट्ठल जी का आविर्भाव पुण्डलीक के समय में हुआ। सन्त ज्ञानदेव ने इस सम्प्रदाय को व्यवस्थित रूप दिया और उन्होंने गीता की ज्ञानेश्वरी टीका लिखी। पाण्डुरङ्ग की उपासना तो और भी पुरानी ठहरती है। शंकराचार्य ने अपने पाण्डुरङ्गाष्टक में पुण्डरीक के लिए पाण्डुरङ्ग के आविर्भाव का संकेत किया है। कुछ भी हो, इस मत का प्रचार ज्ञानदेव जी के समय से अधिक हुआ। इस मत में अद्वैतवाद के साथ कृष्ण भक्ति का बड़ा अच्छा सामञ्जस्य हुआ है और साथ ही साथ योग भावना का भी पूर्ण सम्मिश्रण इस मत में दीख पड़ता है। ज्ञानदेव को लोग आज भी सिद्ध योगी मानते हैं। ज्ञानदेव के साथ-साथ नामदेव का नाम भी उल्लेखनीय है। नामदेव ने सगुण और निर्गुण भक्ति का सुन्दर सामञ्जस्य किया है। नामदेव का कबीर की वाणियों से बहुत साम्य है। इनके कारण महाराष्ट्र प्रान्त में भागवत सम्प्रदाय बहुत व्यापक हुआ और अनेक सन्त इसके प्रचार में प्रवृत्त हुए। इन सन्तों में सब जाति के लोग थे। बिसोवा जोगी थे और गोरा कुम्हार, सावंता माली, चोखा महार, सेना नाई, नरहरि सुनार जैसे सन्त इसी सम्प्रदाय की देन हैं। साथ ही साथ कई प्रसिद्ध भक्तिन भी हो गई हैं, जिनमें जनाबाई, कान्हूपात्रा, सखूबाई के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस पंथ की सन्त परम्परा में एकनाथ (१५३३ ई०) बड़े प्रसिद्ध हैं। इनके विषय में कितनी ही अलौकिक घटनाएँ आज भी महाराष्ट्र में प्रचलित हैं। इनका नाथ-भागवत एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनका 'रुक्मिणी स्वयंवर' और 'भाव रामायण' भी भक्ति के श्रेष्ठ ग्रन्थों में गिने जा सकते हैं। सन्त तुकाराम भी इस सम्प्रदाय के महनीय व्यक्ति थे। ये अभंग मराठी साहित्य के रत्न माने जाते हैं तथा भक्तों के शिरोमणि तुकाराम शिवाजी के समकालीन थे। इस मत में अन्य भी बहुत से सन्त हुए हैं जिन्होंने अपनी अमर वाणी से मराठी साहित्य को समृद्ध किया। वारकरी मत में चार सम्प्रदाय माने जाते हैं—चैतन्य स्वरूप, आनन्द और प्रकाश। इन चारों सम्प्रदायों में कोई तात्विक भेद नहीं हैं। वारकरी पंथ पूर्ण रूप से वैदिक है और वर्णाश्रम धर्म में आस्था रखता है। सिद्धान्त रूप में अद्वैत का पक्षपाती होता हुआ भी व्यवहार पक्ष में यह सगुण भक्ति का पोषक है। तुलसी की माला और एकादशी व्रत का माहात्म्य इस मत में बहुत अधिक है। तुकाराम जी ने अपने मत का सार शिवाजी के पास इस प्रकार लिख कर भेजा था:—

आम्हीं तेणे सुखी म्हाड़ा विट्ठल विट्ठलमुखीं
कण्ठीमिरवा तुलसीव्रतकरा एकादशी।

इस पंथ में भक्ति और ज्ञान दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। युगल उपासना में राधा के स्थान पर रुक्मिणी को रखा गया है जिससे यह मत लोक संग्रही हो गया। महाराष्ट्र में वारकरी सम्प्रदाय के अतिरिक्त रामदासी सम्प्रदाय का भी प्रचार है जिसके प्रवर्तक

शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास जी थे। इस सम्प्रदाय में समाज की ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति को महत्व दिया गया है। स्वामी जी के प्रसिद्ध ग्रन्थ दासबोध में इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है। स्वामी जी के उपास्य राम थे। और इन्होंने रामभक्ति में ब्रह्म ज्ञान और कर्म काण्ड दोनों का सामञ्जस्य किया।

महाराष्ट्र प्रान्त की भांति गुजरात में भी स्वतन्त्र रूप से वैष्णव धर्म का विकास हुआ। ऐतिहासिक तथ्यों से यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि गुजरात में भागवत धर्म का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। गुजरात के दो वैष्णव पीठ प्रसिद्ध हैं—द्वारका और डाकोर जी। द्वारका में तो शंकराचार्य जी ने आठवीं शताब्दी में ही अपना पीठ स्थापित किया था। तेरहवीं शताब्दी से तो गुजरात में वैष्णव धर्म का प्रचार बहुत ही अधिक बढ़ गया था। मध्य युग में राधा कृष्ण की भक्ति के प्रचार का श्रेय नरसी मेहता और मीराबाई को है। जब से पुष्टिमार्ग का प्रचार गुजरात में हुआ तब से तो मानों गुजरात भक्ति का पीठ ही बन गया और समस्त गुजरात में श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति फैल गई। गोस्वामी विट्ठल-नाथ जी ने पुष्टिमार्ग के प्रचार के लिये छै बार गुजरात की यात्रा की थी।

यहाँ प्रसंगवश वृन्दावन के कुछ वैष्णव सम्प्रदायों की चर्चा भी आवश्यक है।

वैष्णवाचार्यों के प्रभाव से ब्रजभूमि में परिनिष्ठित सम्प्रदायों के अतिरिक्त कुछ अन्य सम्प्रदाय भी प्रचलित हुए। यह पहले कहा जा चुका है कि वृन्दावन में निम्बार्क सम्प्रदाय सब से पुराना है। निम्बार्क सम्प्रदाय में सब से पहले राधा जी को इतना महत्व मिला था। उनके सम्पर्क से वृन्दावन में कुछ भक्तों ने कुछ परिवर्तन के साथ राधा की भक्ति भावना का प्रचार किया। कुछ विद्वानों का मत है कि ऐसे सम्प्रदायों का प्रचलन वृन्दावन में चैतन्य के प्रभाव से हुआ। राधा के सम्बन्ध में निम्बार्क और चैतन्य सम्प्रदायों में मौलिक भेद यह है कि निम्बार्क सम्प्रदाय में तो राधा के स्वकीयात्व को ही महत्व दिया गया है जबकि गौडीय सम्प्रदाय में इस भाव की पूर्ण स्पष्टता नहीं है। श्री जीव गोस्वामी ने परकीयात्व को केवल रसविशेष के पोषण के लिये ग्रहण किया था पर उज्ज्वल नीलमणि के टीकाकार श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस भाव की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किया। हमें तो ऐसा लगता है कि वृन्दावन के इन छोटे-छोटे सम्प्रदायों पर निम्बार्क, वल्लभ और चैतन्य सभी सम्प्रदायों का प्रभाव है। वृन्दावन के सखी सम्प्रदाय को तो निम्बार्क मत की ही एक शाखा मान सकते हैं। इस शाखा के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे। इसमें गोपीभाव का वैशिष्ट्य है। सखी-सम्प्रदाय में सिद्धान्त पक्ष पर बल नहीं दिया गया है। इसका केवल साधना पक्ष ही महत्व पूर्ण है। इस सम्प्रदाय की उपासना सखी भाव की है। स्वामी हरिदास जी राधाकृष्ण के युगल रूप के उपासक थे और उनकी ललित लीलाओं का दर्शन सखीभाव से किया करते थे। संगीत कला में निपुण होने के कारण वे अपने संगीत के द्वारा ही राधाकृष्ण की उपासना करते थे। हरिदास जी की पदावली में उनके सिद्धान्त और व्यवहार दोनों का विवेचन है। उनके पदों का एक संग्रह केलिमाला नाम से प्रख्यात है। इस सम्प्रदाय के भक्तों ने, जो टट्टी संस्थान के भक्त कहलाते हैं, माधुर्य और प्रेम से भरे अनेक पदों की रचना की है। हरिदास जी से लेकर आज तक टट्टीसंस्थान के भक्तों की परम्परा चली आरही है।

राधा को केन्द्र मानकर वृन्दावन का दूसरा सम्प्रदाय राधावल्लभीय सम्प्रदाय है। इसके प्रवर्तक श्री हितहरिवंश जी थे जो मुरली के अवतार माने जाते हैं। हितहरिवंश जी

भी राधाकृष्ण की युगलमूर्ति के उपासक थे और कृष्ण की अपेक्षा श्री राधारानी को ही अपनी उपासना में इन्होंने अधिक महत्त्व दिया है। इनकी उपासना मधुर भाव की उपासना कही जा सकती है। राधा की अनन्य उपासना, राधा की चाकरी ही उनकी भक्ति भावना का मुख्य तत्त्व है, इस तत्त्व को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इन्होंने भी अध्यात्मपक्ष का विवरण कम दिया है। इनकी उपासना में विरहभावना का महत्त्व नहीं है। वह केवल संयोगपक्ष को ही लेकर चलती है। स्वामी जी के राधानिधि और हित चौरासी ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त आश्चास्तव, चतुःश्लोकी, श्री यमुनाष्टक तथा राधातन्त्र ग्रन्थ भी इन्हीं के बताए जाते हैं। राधावल्लभीय सम्प्रदाय के पोषकों में हितहरिवंशजी के पश्चात् श्री हरिराम जी व्यास का नाम उल्लेखनीय है। ये वास्तव में हितहरिवंशजी के ही समकालीन थे। और आगे चलकर राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्य कहलाए। व्यास जी के दो ग्रन्थ प्राप्त होते हैं जिनमें एक संस्कृत का ग्रंथ नवरत्न अप्रकाशित है और दूसरा ग्रंथ व्यास वाणी प्रकाशित हो चुका है। भक्ति भावना की दृष्टि से इनके पद परमोच्च कोटि के हैं जो भक्ति भावना से ओत-प्रोत हृदय के उद्‌गार कहे जा सकते हैं। उन्होंने राधाकृष्ण की लीला का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया है। व्यास जी के अनन्तर राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्यों में ध्रुवदास जी का नाम उल्लेखनीय है। जिन्होंने चालीस से अधिक ग्रंथ लिखे। भक्त नामावली नामक उनका ग्रन्थ बड़ा महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में उन्होंने बहुत से भक्तों का परिचय दिया है। इन्होंने हितहरिवंश के सिद्धान्तों का पूर्ण विवेचन किया है और अपने मत की साधना प्रणाली को बड़ा गूढ़ तथा रहस्यमय बताया है। इस मत की उपासना का तत्त्व सब सम्प्रदायों से विलक्षण है। नित्य मिलन को ही इन्होंने विशेष महत्त्व दिया है। इस मिलन में भी विरह सदृश उत्कण्ठा रहती है। स्वकीया, परकीया, विरह-मिलन तथा स्व-परभेद से रहित नित्य विहार रस ही इस सम्प्रदाय का इष्ट तत्त्व है। इस सम्प्रदाय को वास्तव में रस सम्प्रदाय कहा जा सकता है। राधा और कृष्ण एक ही तत्त्व के प्रतीक हैं। श्री राधाजी सर्वत्र प्रकृति रूप में व्याप्त है। वही सखियों के रूप में है और वही गोपियों के रूप में। प्रत्येक जीव प्रेम रूपा गोपी है। अपने स्वरूप को भूलकर ही जीव नाना प्रकार के कष्ट भोगता है इसलिए उसे अपने स्वरूप का अनुसंधान करना चाहिये। उनके कृष्ण निर्गुण सगुण से परे हैं और ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। आदि पुरुष और नारायण के भी कारण हैं सब अवतारों के मूल हैं और स्वयं रस रूप हैं। भगवत्तत्व केवल एक ही है। लीला और क्रियाओं के अनुसार उसके भेद हो गये हैं। इस तत्त्व का नाम ही श्री राधावल्लभलाल है जो वृन्दावन में नित्य विहार करते हैं। उनके नित्य विहार के परिकर के चार अङ्ग हैं—श्री राधा, श्रीकृष्ण, श्री वृन्दावन और सखियाँ, परन्तु मूलभूत तत्त्व एक ही है। श्री वृन्दावन दिव्य धाम है जहाँ यह नित्य विहार होता है। यह नित्य विहार प्रेम केलिमात्र है। युगलकिशोर एक प्रेम के ही दो रूप हैं। प्रेम तत्व निर्वचनीय है और एक होकर भी अनेक रूपों में विलास करता है।

वृन्दावन के इन सम्प्रदायों ने भी वैष्णव भक्ति भावना के प्रचार और प्रसार में बड़ा योगदान दिया और हिन्दी के भक्ति साहित्य सरोवर को प्रेमामृत से लबालब भर दिया। कृष्ण भक्ति का प्रचार भक्ति-आन्दोलन के युग में वैष्णव धर्म का प्रधान अङ्ग रहा है। उत्तर भारत में यह भक्ति-आन्दोलन जितना सफल हुआ संभवतः दक्षिण में उतना न हो सका। इसके कई कारण थे। उत्तरी भारत में राजनीतिक परिस्थितियों के कारण भक्ति भावना के प्रचार के उपयुक्त वातावरण बन चुका था। वैष्णव धर्म के मूलाधार राम और कृष्ण

अवतारों की जन्म-भूमि उत्तर में ही थी। सिद्धों और नाथों ने उत्तर भारत की भूमि को अपने शुष्क सम्प्रदायों से इतना रौंद डाला था कि प्रत्येक भावुक भक्त किसी सरस और शीतल पवन के झोंके की प्रतीक्षा में था। इसके अतिरिक्त दक्षिण में शैव धर्म का प्रचार होने के कारण वैष्णव धर्म के प्रचार के अवसर कम थे। वहाँ वैष्णवों को शैवों से लोहा लेना पड़ता था। शैवों की भक्ति-भावना वैष्णवों से कम सरस नहीं थी। शैव धर्म का प्रचार उत्तर में भी था पर उसका प्रचार करने वाला उत्तर में कोई ऐसा आचार्य नहीं हुआ जो उसकी सामयिक सार्वभौम सत्ता स्थापित करने में समर्थ होता। पौराणिक मत भी रूढ़ियों से ग्रस्त था। धर्म लोकधर्म न रहकर व्यक्तिधर्म होता जा रहा था। अध्यात्म के नाम पर दम्भ और पाखण्ड का प्रचार था। सूफी सन्त जनता में अपने प्रेम का प्रचार कर रहे थे। उत्तर भारत की इन परिस्थितियों के संकेत हमें तत्कालीन रचनाओं में पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। उत्तर भारत के वैष्णव धर्म के आन्दोलन का विवेचन करते समय हमें यह बात नहीं भूल जानी चाहिये कि इस धर्म का बीजारोपण सर्वप्रथम काशी में ही हुआ था और वैष्णव धर्म के उपास्य कृष्ण न होकर राम थे। कबीर के नाम से एक साखी प्रचलित है—

भक्ति द्राविड ऊपजी लाये रामानन्द।
कबीर ने परगट करी सात दीप नौ खण्ड॥

यह साखी प्रामाणिक हो या न हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी रामानन्द जी का वैष्णव भक्ति के प्रचार में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उत्तरी भारत में विष्णु भक्ति के प्रचार के दो केन्द्र थे—काशी और मथुरा। काशी रामभक्ति के प्रचार का केन्द्र था और मथुरा कृष्ण भक्ति के प्रचार का। स्वामी रामानन्द जी की जन्मतिथि का प्रश्न अभी तक विवादास्पद है। भण्डारकर और ग्रियर्सन ने उनका जन्म सन् १२९९ माना है और ये दोनों ही महानुभाव उन्हें रामानुजाचार्य से चतुर्थ आचार्य मानते हैं। डा० ताराचन्द ने रामानन्द को रामानुज की परम्परा में बाईसवाँ आचार्य मान कर उनका जन्म चौदहवीं शताब्दी के अन्त में माना है। उनकी मृत्यु तिथि के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार मतभेद है। भंडारकर उनका देहावसान सन् १४११ में मानते हैं। कुछ भी हो, स्वामी रामानन्द जी रामभक्ति के सर्वप्रथम आचार्य माने जाते हैं और कहा जाता है कि वे दक्षिण से ही रामभक्ति को उत्तर में लाए थे। वास्तव में, रामभक्ति के सन्दर्भ में रामानन्द की अपेक्षा उनके गुरु राघवानन्द जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रचार का कार्य चाहे रामानन्द जी ने किया हो, पर सिद्धान्त-निरूपण की आधार-शिला का न्यास स्वामी राघवानन्द जी के करकमलों द्वारा ही हुआ था। वे दक्षिण तथा उत्तर भारत के भक्ति-आन्दोलनों के संयोजक व्यक्ति कहे जा सकते हैं। नाभादास जी ने अपने भक्तमाल में राघवानन्द जी और रामानन्द जी दोनों का ही उल्लेख किया है। अनन्तस्वामी-रचित 'हरिभक्ति-सिन्धुवेला' में राघवानन्द जी का स्मरण इस प्रकार किया गया है—

वन्दे श्रीराघवाचार्यं रामानुज[illegible]
याम्यादुत्तरमागत्य [illegible]॥

राघवानन्द जी की साधना योग और भक्ति के समन्वित रूप में थी। उत्तर भारत में उस समय नाथ योगियों का जोर था और योग-समन्वित भक्ति ही सफल हो सकती थी।

स्वामी जी ने अपनी भक्ति-साधना में हठयोग तथा वैष्णव भक्ति का पूर्ण सामंजस्य प्रस्तुत किया। आगे चल कर उनकी भक्ति-पद्धति को उनके शिष्य रामानन्द जी ने जन-आन्दोलन का रूप दिया। रामानन्द जी के शिष्य दो कोटि के थे—एक तो सुधारवादी और दूसरे प्राचीन भक्ति-परम्परा के भक्त। रामानन्द जी के जीवन के सम्बन्ध में अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। उनके ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी मतभेद है। 'वैष्णव मताब्ज-भास्कर' ही उनका एकमात्र प्रामाणिक ग्रन्थ माना जा सकता है। सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के कारण स्वामी रामानन्द ने राममभक्ति को नवीन साँचे में ढाल कर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। श्री शंकराचार्य का ज्ञान और निवृत्तिपरक अद्वैतवाद साधारण जनता को सांत्वना देने में असमर्थ सिद्ध हो चुका था। आचार्य कुमारिल के कर्म मार्ग तथा प्रवृत्ति-पन्थ से भी लोग ऊब चुके थे। नाथ-पन्थियों का योग-मार्ग वैयक्तिक साधना के कारण संकुचित होता जा रहा था। भगवान् के परोक्ष अथवा अन्तर्यामी रूप आर्त-समाज के दुःख-निवारण में असमर्थ थे। धार्मिक क्षेत्र मे अध्यात्म और वेद-वाद के नाम पर जनता को ठगने वाले पाखण्डियों की कमी नहीं थी। इस प्रकार ज्ञान, कर्म और भक्ति—तीनों के ही स्वरूप धुँधले हो चुके थे। ऐसी परिस्थिति में शील, शक्ति और सौन्दर्य समन्वित पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य झाँकी दिखाने का सुन्दर प्रयास स्वामी रामानन्द जी ने किया। स्वामी जी समन्वयवादी थे। भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने जाति-पाँति को कोई महत्व नहीं दिया। इनके सुधारवादी शिष्य छोटी जातियों के ही व्यक्ति थे, जिनकी संख्या लगभग छः थी। उस समय जब भारतीय समाज में जाति-प्रथा का इतना महत्त्व था, रामानन्द जी का यह अद्भुत साहस बड़ा ही सराहनीय था।

स्वामी जी की दृष्टि बड़ी ही उदार और व्यापक थी। वे सब से पहले आचार्य थे जिन्होंने भक्ति का द्वार अन्त्यजों तक के लिए समान भाव से मुक्त कर दिया था। इन्होंने लक्ष्मी-नारायण के स्थान पर सीता-राम को अपना इष्टदेव स्वीकार किया, क्योंकि लक्ष्मी-नारायण क्षीर-सागर में शयन करने के कारण साधारण मानव की पहुँच से बहुत दूर पड़ते थे।

इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी तक यह भक्ति-आन्दोलन पूर्ण रूप से जन-आन्दोलन बन गया। इस आन्दोलन के नेताओं ने संस्कृत के स्थान पर प्रान्तीय भाषाओं को अपने प्रचार का माध्यम बनाया, जिसके फलस्वरूप प्रान्तीय भाषाओं का साहित्य बड़ा समृद्ध और शक्तिशाली बन गया जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। राम और कृष्ण के पावन चरितों को लेकर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। रामचरित को लेकर लिखने वाले भक्त कवियों ने अवधी भाषा को ही विशेष रूप से अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, जबकि कृष्णधारा के कवियों ने ब्रज भाषा को अपना कर अपने मधुर काव्य की रचना की। ब्रज भाषा ने वैष्णव सम्प्रदायों को एकता के सूत्र में बाँधने का महनीय कार्य किया। यह भक्ति-आन्दोलन भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिन्दी की साहित्य-सर्जना में बड़े महत्त्व का है। हमने यहाँ रामभक्ति-आन्दोलन की बात केवल प्रसंगवश ही कही है। हमारा अभिप्राय कृष्ण-भक्ति आन्दोलन की ही पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना है। कृष्ण भक्ति-आन्दोलन का विवरण प्रस्तुत करते हुए श्रीमद्भागवत का उल्लेख बड़ा आवश्यक है। कृष्ण भक्ति के सभी सम्प्रदायों को श्रीमद्भागवत से प्रेरणा मिली है और सारा कृष्ण-भक्ति-साहित्य किसी न किसी रूप में श्रीमद्भागवत से प्रभावित है। इसलिए श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है।

भागवत पुराण के सम्बन्ध में भागवतकार लिखते हैं—

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतं
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः (भागवत १।१।२)

चैतन्य और वल्लभ दोनों ही सम्प्रदायों में भागवत की विशेष मान्यता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने तो अपने तत्वदीप निबन्ध में भागवत को 'चतुर्थ प्रस्थान' माना है—

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ।। त. नि. श्लोक ७

श्रीमद्भागवत का विस्तार से विश्लेषण हमने अपने ग्रन्थ 'भागवत दर्शन' में किया है। इस अद्वितीय ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय के सम्यक् निरीक्षण से ज्ञात होता है कि यह एक निश्चित और सुयोजित भक्ति-सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। प्रत्येक स्कंध में उसी सिद्धान्त का क्रमिक विकास होता गया है। वह सिद्धान्त है प्रेम-लक्षणा भक्ति। यद्यपि भागवत में भक्ति का अत्यन्त विस्तृत और पूर्ण विवेचन है और वैधी भक्ति, नवधा भक्ति, निर्गुण भक्ति आदि का भी सांगोपांग वर्णन है, तथापि साधक का परम ध्येय भगवान् की प्रेम-लक्षणा भक्ति से सिद्ध होता है; यह बात भागवत में अनेक स्थलों पर दुहराई गई है। श्रीमद्भागवत की प्रमुख विशेषता है इसकी समन्वय-प्रवणता। इसमें सांख्य, मीमांसा, योग, न्याय, वैशेषिक आदि सभी दर्शनों का स्वस्थ समन्वय कर भक्ति में उनका पर्यवसान किया गया है और उसे मुक्ति से भी गरीयसी ठहराया है। जठरानल जैसे भक्षित अन्न को भस्म कर देता है उसी प्रकार यह भक्ति भी शीघ्र ही कर्म-संस्कार के भण्डार रूप लिंग शरीर को भस्म कर देती है। विभिन्न दार्शनिक मतों के समन्वय के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में एक ही दर्शन के विभिन्न मतों का भी समन्वय हुआ है। दर्शनों के अतिरिक्त भागवतकार ने विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायों का भी सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। पांचरात्र मत तो एक प्रकार से श्रीमद्भागवत का प्रधान मत ही है। नारद पांचरात्र, शाण्डिल्य-संहिता, अहिर्बुध्न्य-संहिता आदि सभी उपासनापरक ग्रन्थों के तत्व श्रीमद्भागवत में विद्यमान हैं। शिव की महिमा भी भागवत में अनेक स्थलों पर गाई गई है और उन्हें भी परम भागवत और वैष्णव कहा गया है। इतना सब कुछ होते हुए भी भागवत का चरम प्रतिपाद्य तत्व निर्गुण ब्रह्म ही है। श्रीमद्भागवत को हम एक प्रकार से शंकर के अद्वैत सिद्धान्त का पूरक ग्रन्थ कह सकते हैं। श्रीमद्भागवत के पारायण से ज्ञात होता है कि यह एक ही कवि की रचना है। साथ ही इसकी समास-प्रधान संक्षिप्त शैली और आलंकारिकता से पता चलता है कि यह ऐसे समय की रचना है जब काव्य, भाषा और शैली में सरलता और स्पष्टता के स्थान पर आलंकारिक प्रयोगों, प्रतीक विधानों और व्यंजना के गूढ़ साधनों को अधिक महत्व दिया जाने लगा था। बाण के समय से यह प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी और राजशेखर तक आते आते यह अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। श्रीमद्भागवत की भाषा सभी पुराणों से प्रौढ़, दुरूह, संक्षिप्त और आलंकारिक है। शायद इसी लिए पंडितों में 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' वाली उक्ति का प्रचार हुआ। उपमा, रूपक और अतिशयोक्ति आदि का सुन्दर प्रयोग इसे

एक सफल काव्य का रूप सहज ही प्रदान कर देते हैं। एक बात और भी लक्ष्य करने की यह है कि श्रीमद्भागवत में केवल पद्यबद्ध रचना ही नहीं है, अनेक स्कन्धों में प्रौढ़ और प्रवाहपूर्ण गद्य भागवत की भाषा को एक नया रूप प्रदान करता है। श्रीमद्भागवत में जहाँ भगवान् की स्तुतियाँ हैं, वहाँ उसकी भाषा विचित्र रूप से परिवर्तित हो जाती है और उसमें एक सुन्दर प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। ये स्तुतियाँ इतिवृत्तात्मक मरुभूमि में एक मनोहारी शाद्वल भूखण्ड का काम करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमद्भागवत् भक्ति के प्रवाह में लिखे गए स्तोत्र-साहित्य की परंपरा का ग्रन्थ है।

भागवत के अन्तः साक्ष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि इसका रचना-स्थल दक्षिण भारत है। इसके वर्णन दक्षिण भारत के नैसर्गिक रूप से अधिक मेल खाते हैं। उत्तर भारत का वर्णन प्रत्यक्ष दर्शन की अपेक्षा श्रुत और परम्परा-प्राप्त ज्ञान होता है। व्रज-मण्डल के वर्णन के संबन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। भील, किरात आदि जातियों का बाहुल्य तथा गिरिकन्दराओं की [illegible] का चित्रण इस बात को और भी पुष्ट करते हैं। नदी, पर्वतों, [illegible] आदि वृक्षों का आधिक्य दक्षिण प्रायद्वीप और विन्ध्याचल के [illegible] कुरबक, अशोक, नाग, पुन्नाग, चम्पक, मालती, मल्लिका, जाति, [illegible] पुष्पों के उल्लेख से स्पष्ट है कि भागवतकार दक्षिण के पुष्पों से अधिक परिचित है और उसे दक्षिण के पदार्थों का ज्ञान और दर्शन प्रत्यक्ष सुलभ है।

भागवत महापुराण की प्राचीनता में चाहे जो विवाद हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि समस्त भारतवर्ष के भक्ति-आन्दोलन के मूल में इस महापुराण की प्रेरणा निहित है 'वास्तव में यह एक अलौकिक ग्रन्थ है और इसमें वर्णाश्रम धर्म, मानवधर्म कर्मयोग, अष्टाङ्ग-योग, ज्ञानयोग और भक्तियोग आदि भगवत्प्राप्ति के सभी साधनों का विशद वर्णन है, किन्तु इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य भक्ति का उत्कर्ष प्रतिपादित कर मनुष्य को उस ओर प्रवृत्त करना है, इस महापुराण में आदि से अन्त तक भक्ति का ही वैशिष्ट्य है, भक्ति की परिभाषा से इसका आरम्भ होता है और पर्यवसान भी भक्ति सम्बन्धी प्रार्थना से। कई स्थलों पर भागवतकार ने भक्ति को ज्ञान और मुक्ति से भी बढ़कर बताया है। श्रीमद्भागवत में भक्ति के सभी तत्त्वों का विशद विवेचन हुआ है और यही कारण है कि सभी वैष्णव सम्प्रदायों में इस ग्रन्थ की मान्यता है। श्रीधरस्वामी, जो अद्वैत मतानुयायी थे, भागवत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी भावार्थ दीपिका नाम की टीका प्रसिद्ध ही है। उनसे पहले वेदान्त के प्रसिद्ध विद्वान् चित्सुखाचार्य जी भी भागवत की टीका कर चुके थे, विशिष्टाद्वैतमतानुयायी विद्वानों ने भी श्रीमद्भागवत की टीकाएँ की हैं, सुदर्शन सूरी की शुकपक्षीया और वीरराघव की भागवतचन्द्रिका शिष्टाद्वैत मत की ही टीकाएँ हैं। द्वैतमत के आचार्य श्रीमध्व ने स्वयं 'भागवत तात्पर्यनिर्णय' ग्रन्थ लिखा था जो पूर्णरूप से भागवतपरक ही है, इसी सम्प्रदाय के श्री विजयध्वज ने भागवत की 'पदरत्नावली' नाम की द्वैतपरक व्याख्या की। निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रधान ग्रन्थ भी श्रीमद्भागवत ही है। इस सम्प्रदाय वालों की टीकाएँ अत्यन्त संक्षिप्त हैं। इस मत के आचार्य श्री शुकदेवजी की श्रीमद्भागवत पर 'सिद्धान्त प्रदीप' नाम की व्याख्या है। भागवत को आधार मानकर इस सम्प्रदाय में अनेक रस-पूर्ण निबन्ध तथा टीका टिप्पणी लिखी गई हैं, चैतन्य महाप्रभु तो श्रीधरी टीका को ही प्रामाणिक मानते थे किन्तु उनके अनुयायी गोस्वामियों ने भागवत पर अनेक टीका-टिप्पणियाँ लिखी हैं। सनातन गोस्वामी की 'बृहद्-वैष्णव-तोषिणी', केवल दशम स्कन्ध पर ही है, अति प्रसिद्ध और मान्य टीका है। जीव गोस्वामी की क्रमसंदर्भ

नामक टीका समस्त भागवत पर है। पुराण के गूढ अर्थो की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने षट्संदर्भ अलग से लिखे। चैतन्य सम्प्रदाय के मान्य आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती की सारार्थदर्शिनी भागवत की अच्छी टीका है। भागवत को आधार मानकर बहुत से विद्वानों ने अनेक व्याख्याएँ और ग्रन्थ लिखे जो साक्षात् टीका न होकर भागवती लीला का विश्लेषण करते हैं। श्रीहरि का 'हरि भक्ति रसायन' ऐसा ही ग्रन्थ है। ये सब टीकाएँ और व्याख्यान ग्रन्थ इस बात को सिद्ध करते हैं कि भागवत सभी वैष्णव आचार्यों का आधार ग्रन्थ रहा है। साम्प्रदायिक टीकाओं मे पुष्टि मार्ग के आचार्य श्रीवल्लभ की 'सुबोधिनी टीका' बहुत प्रसिद्ध है, जैसा कि पहले कहा जा चुका है।

वल्लभाचार्य भागवत को महर्षि व्यासदेव की समाधि भाषा मानते हैं. हमारी दृष्टि में कृष्ण भक्ति आन्दोलन को इतना व्यापक बनाने का श्रेय महाप्रभु वल्लभाचार्य जी को ही है, उन्होंने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की उनका आधार भी भागवत को ही स्वीकार किया है। पुष्टिभक्ति का नामकरण भी उन्होंने भागवत के ही आधार पर किया। 'सिद्धान्त रहस्य' नामक ग्रन्थ की विवृति में हरिराय जी ने लिखा है कि पुष्टि मर्यादा और प्रवाह भेद से भक्ति तीन प्रकार की होती है। प्रवाह भक्ति का प्रतिपादन तो वेद और पुराणों में हुआ है तथा मर्यादा एवं पुष्टि भक्ति के प्रतिपादन के उद्देश्य से श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव हुआ। पुष्टिमार्ग में भक्ति को ही सर्वोपरि माना है। श्रीवल्लभाचार्य जी ने तत्वदीप निबन्ध के भागवतार्थ प्रकरण में सब स्कन्धों और अध्यायों को प्रकरणों मे विभाजित किया है और उनके भाँति भाँति से अर्थ किये हैं। छठे स्कन्ध को उन्होंने पुष्टि स्कन्ध बताया है और पुष्टि भक्ति का सूत्र इसी स्कन्ध से ग्रहण किया है। इस स्कन्ध में पुष्टि मार्गीय भक्ति के तत्वों का निरूपण करने वाला उपाख्यान इन्द्र और वृत्रासुर का है।

यह हम पहले कह चुके हैं कि पुष्टिमार्ग के अनुसार इस ब्रह्माण्ड के आविर्भाव का प्रयोजन केवल मात्र लीला है। वल्लभाचार्य जी ने भागवत के तृतीय स्कन्ध की सुबोधिनी में इस बात को स्पष्ट किया है कि भगवान् की नित्य लीला का अन्यतम विलास उनका अनुग्रह ही है। आचार्य जी भगवान् के बालरूप के उपासक थे। श्रीकृष्ण का यशोदोत्सङ्ग-लालित रूप ही इस सम्प्रदाय का उपास्य है, श्री वल्लभाचार्य जी अवश्य ही युग-पुरुष कहे जा सकते हैं, उनकी पुष्टि भक्ति में जहाँ एक ओर सभी भक्ति-सम्प्रदायों का सामञ्जस्य है वहाँ दूसरी ओर उसमें वे मननीय शास्त्रीय तत्त्व भी निहित हैं जिनके कारण वह भक्ति के प्रकारों में सर्वोपरि कही जा सकती है. पुष्टि भक्ति का स्वरूप प्रेमलक्षणा निर्गुण है इसीलिये वल्लभाचार्य जी विशिष्ट सेवा मार्ग का निरूपण किया था। वल्लभाचार्य जी ने सारे भारतवर्ष में भ्रमण कर पुष्टि भक्ति का प्रचार किया, पर पुष्टि मार्गीय सेवाभाव को विस्तार देने का कार्य उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने किया। महाप्रभु जी के समय में तो श्रीनाथ जी का शृङ्गार केवल पाग और मुकुट द्वारा होता था किन्तु विट्ठलनाथ जी ने आठ शृङ्गारों, झाँकियों, उत्सवों आदि का भी सन्निवेश सम्प्रदाय में किया और भगवान की आठों झाँकियों में नियमित कीर्तन के लिए आठ संगीताचार्य कीर्तनकार नियुक्त किये। पुष्टिमार्ग के अनुसार भक्त को भगवान् के स्वरूप का ही ध्यान करते रहना चाहिए और उन्हीं के गुण-कीर्तन में अपना मन लगाना चाहिए। यही निरोध का सब से बड़ा मन्त्र है। इससे बढ़कर न कोई मन्त्र है; न स्तुति है; न तीर्थ है; और न कोई विद्या है। पुष्टि मार्ग का सेवा-विधान एक अपनी मौलिकता है। पुष्टि मार्ग मे जहाँ पूजा का विधान है वहाँ वेदोक्त अथवा तन्त्रोक्त पूजा का अभिप्राय नहीं है

बल्कि पुष्टिमार्गीय सेवाविधि का अभिप्राय है जो दो प्रकार की होती है—क्रियात्मक और भावनात्मक। इस भक्ति में भगवान् के प्रति विशुद्ध प्रेम की ही प्रधानता है और वह प्रेम 'माहात्म्यज्ञान पूर्वक' होना चाहिए:—

माहात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः ।।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा ।। त० नि० श्लोक ४६

अर्थात् भगवान् के प्रति माहात्म्यज्ञान रखते हुए जो सुदृढ़ और सब से अधिक स्नेह हो वही भक्ति है और उसी से मुक्ति प्राप्त होती है। इस भक्ति में सेवा का ही विशेष महत्त्व है जैसा कि आचार्य वल्लभ ने सिद्धान्त मुक्तावली में लिखा है—

कृष्ण-सेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता। सि० मु० श्लोक १

सेवा का रूप उन्होंने इस प्रकार बताया है, 'चेतस्तत्प्रवणं सेवा'। पुष्टिमार्ग के अनुसार सेवा के दो प्रकार हैं—नाम सेवा और स्वरूप सेवा। स्वरूप सेवा तीन प्रकार की है: तनुजा, वित्तजा और मानसी। मानसी सेवा भी मर्यादा मार्गी और पुष्टि मार्गी भेद से दो प्रकार की है। मर्यादामार्गी में भक्त शास्त्रानुकूल मर्यादा मार्ग पर चलता हुआ भगवान् कृष्ण की सेवा और आराधना करता हुआ अपनी अहंता और ममता को दूर करता है। इसमें पहले आत्मज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है, पुष्टि मार्गी मानसी सेवा करने वाला पहले से ही भगवान् के अनुग्रह की इच्छा करता है और शुद्ध प्रेम के द्वारा भगवान् की भक्ति करता हुआ भगवदनुग्रह से सहज ही अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है। कहना न होगा कि पुष्टि मार्ग के ये सब विधि-विधान आचार्य वल्लभ ने श्रीमद्भागवत पुराण से ही ग्रहण किये। सुबोधिनी टीका में उन्होंने भागवत की पुष्टिमार्गीय भक्ति का भी विवेचन किया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत मध्य कालीन भक्ति आन्दोलन की प्रेरणा का मूल स्रोत रहा है। इसलिये सभी कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में भागवत का महत्त्व स्वीकार किया गया है। पुष्टि सम्प्रदाय में भागवत की विविध प्रकार से व्याख्या करके वैष्णव भक्ति के सभी तत्त्वों की संगति भागवत से लगाई गई है। विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों में बाह्यरूप से चाहे जितना वैषम्य हो उनके मूलतत्त्वों में कोई बड़ा भारी भेद नहीं है। सभी वैष्णवसम्प्रदाय भगवत्तत्त्व को सगुण और साकार मानते हैं पर उसके मूल में निर्गुण और निराकार ब्रह्म भी विद्यमान रहता है। भगवान् भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये अपनी लीला का विस्तार करता है और अपने भगवद्धाम में विग्रह धारण करता है जो छै गुणों से युक्त है। भगवान् स्वभाव से ही स्वामी, विभु और शेषी है जबकि जीव स्वभाव से ही दास, अणु और शेष है। प्राय: सभी वैष्णव सम्प्रदायों में इन सिद्धान्तों की मान्यता है। भक्ति के मूलतत्त्व भी सब सम्प्रदायों में एक से हैं। ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों ही धर्माङ्गों को महत्त्व प्रदान किया गया है। पर ज्ञान और कर्म अङ्ग रूप से आते हैं और भक्ति अङ्गीरूप से। कर्म चित्त-शुद्धि का साधन है और ज्ञान आत्मबोध का हेतु। परम तत्त्व की प्राप्ति भक्ति के द्वारा ही होती है और वह भक्ति भगवान् के अनुग्रह से ही प्राप्त होती है। भक्ति साधन रूपा भी है। प्राय: सभी कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदायों में साध्यभक्ति को ही महत्त्व दिया गया है। शरणागति भी सभी सम्प्रदायों में मान्य है और भगवान् के अनुग्रह को सबसे सर्वोपरि माना है। मुक्ति के प्रकार वैष्णव-सम्प्रदायों में अलग और साध्य रूपा अलग माने अवश्य गये हैं परन्तु मूलभावना सर्वत्र एक ही है सभी सम्प्रदायों ने शंकर के मायावाद का खण्डन किया है। ईश्वर जीव और जगत् के सम्बन्ध में वैष्णव सम्प्रदायों की

मान्यताएँ कुछ अलग अलग हैं। चैतन्य महाप्रभु भगवान् में अचिन्त्य शक्ति मानकर अचिन्त्य-भेदाभेद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। आचार्य वल्लभ माया सम्बन्ध से रहित शुद्ध ब्रह्म में विश्वास रखते हैं। मध्वाचार्य जीव और ईश्वर में द्वैतभाव मानते हैं और रामानुजाचार्य चित् तथा अचित् को भगवान् के ही विशेषण मानकर उभयविशिष्ट ब्रह्म की कल्पना करते हैं। निम्बार्काचार्य अवस्था भेद से चित् और अचित् को ईश्वर से भिन्न और अभिन्न मान कर भेदाभेद सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। भगवान् की लीला के सम्बन्ध में भी मतभेद है। यह मतभेद वास्तव में भगवान् के गुणों की कल्पना पर आधृत है। लक्ष्मीनारायण अथवा सीताराम मे ऐश्वर्य गुण की प्रधानता के कारण उनके भक्त दास्यभक्ति में विशिष्ट आस्था रखते हैं। आगे चलकर सीताराम की उपासना में भी माधुर्यभाव और सखीभाव की कल्पना करली गई। यद्यपि कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय के भक्तों में माधुर्यभाव पर विशेष बल है, पर उनकी उपासना-पद्धति में भी सूक्ष्मभेद विद्यमान हैं। निम्बार्क मत में सख्यभाव की प्रधानता है तो वल्लभाचार्य जी के मत में बालभाव की। शृङ्गार और माधुर्यभावना दोनों ही मतों में है। चैतन्य सम्प्रदाय में माधुर्यभाव को ही प्रधानता दी गई है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय में तो आह्लादिनी शक्ति राधा को कृष्ण से भी अधिक महत्त्व दिया गया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के पश्चात् यह भक्ति-आन्दोलन जन-आन्दोलन के रूप में सारे भारतवर्ष में फैल गया था। भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य की अभिवृद्धि इस आन्दोलन के द्वारा हुई परन्तु ब्रजभाषा में तो इस आन्दोलन ने मानो चार चाँद ही लगा दिये। कहीं ब्रजभाषा के नाम पर तो कहीं 'ब्रजबुलि' के नाम पर विशाल भक्ति साहित्य की सर्जना हुई। खेद है कि आज हिन्दी के विद्वानों का उस ब्रजभाषासाहित्य की ओर विशेष ध्यान नहीं गया है। वल्लभ सम्प्रदाय में जहाँ एक ओर वैष्णव साधना के सभी तत्वों का समावेश था वहाँ दूसरी ओर इसके द्वारा ब्रजभाषा साहित्य की भी विशेष उन्नति हुई। कहा जाता है कि वल्लभाचार्य जी ने स्वयं भी ब्रजभाषा में रचनाएँ कीं। उनकी चौरासी अपराध नाम की एक ब्रजभाषा की रचना प्रकाशित भी हो चुकी है। उन्होंने स्वयं चाहे ब्रजभाषा में कुछ न लिखा हो पर उनके शिष्यों ने ब्रजभाषा के सँवारने और समृद्ध करने में जो योगदान दिया है वह वास्तव में अपूर्व है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि आचार्यचरण अपने सम्प्रदाय का प्रचार ब्रजभाषा के ही माध्यम से किया करते थे और इसे वे 'पुरुषोत्तम भाषा' कहते थे। उनकी शिष्य परम्परा में ऐसे अनेक अज्ञात कवि हैं जिनकी रचनाएँ आज भी अन्धकार के गर्भ में छिपी हुई हैं। हरिराय जी की लीला भावना वाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता में ऐसे अनेक कवियों का उल्लेख किया गया है। पुष्टि सम्प्रदाय और उसके माध्यम से ब्रजभाषा साहित्य के प्रचार और प्रसार का श्रेय वल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी को है। उन्होंने इस सम्प्रदाय की ठीक प्रकार से व्यवस्था की और पुष्टिमार्गीय सेवा भावना को विस्तार से क्रियात्मक रूप दिया।

भगवान् के आठ शृङ्गारों की व्यवस्था की और अनेक प्रकार के उत्सवों का प्रचार किया। शृङ्गार, भोग, राग सभी की ऋतुओं के अनुसार व्यवस्था की गई। भोग के विस्तार के लिये छप्पन भोग तथा अनेक प्रकार की भोज्य सामग्री प्रस्तुत करने की व्यवस्था की। राग का विस्तार करके ऋतुओं के अनुसार विस्तृत कीर्तन-पद्धति का प्रचलन किया और उस कीर्तन पद्धति के सम्यक् निर्वाह के लिये अष्टछाप की स्थापना की। अष्टछाप के आठों कीर्तनिया आठों झाँकियों के कीर्तन में विशिष्ट ऋतु और काल के अनुसार अनेक राग रागनियों में भगवत्कीर्तन किया

करते थ । इन आठ कीर्तनकारो मे प्रत्येक के साथ कुछ झालरिया और ताल वाले भी कवि और गायक रहते थे जो स्वयं भी उच्चकोटि के कीर्तनकार थे। इन अष्टछापी कीर्तनकारो में चार अर्थात् कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास और कृष्णदास उनके पिता के शिष्य थे और चार—गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और कृष्णदास—उनके अपने शिष्य थे। ये सभी भगवान् की अन्तरङ्ग लीलाओं से परिचित थे। इसीलिये उन्हें भगवान् के अन्तरङ्ग आठ सखाओं की संज्ञा दी गई थी। इन आठ कीर्तनकारों के अतिरिक्त विट्ठलनाथ जी ने ब्रजभाषा के अनेक कवियों को भी आश्रय दिया था। इन सभी कवियों का सम्पूर्ण ब्रजभाषा साहित्य कितना विशाल और महनीय होगा यह कल्पना ही हिन्दी के विद्यार्थी को चकित करने वाली है। पुष्टि सम्प्रदाय मे इन कीर्तनकारो का महत्त्व उनके काव्य के कारण इतना नहीं है जितना भक्त होने के कारण। हरिराय जी ने अष्टसखान की वार्ता पर अपनी भाव प्रकाश टिप्पणी में उनके साम्प्रदायिक महत्व पर विस्तार से विचार किया है। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी के लिये तो इन कीर्तनकारों का साहित्यिक दृष्टि से बड़ा वैशिष्ट्य है। इनके द्वारा ब्रजभाषा का रूप इतना निखर गया कि सम्पूर्ण रीतिकाल में उसकी धारा बड़े प्रबल वेग से बहती रही।

यह बड़े खेद की बात है कि आज भी ब्रजभाषा के इस विशाल साहित्य के उद्धार के लिये हिन्दी जगत् मे कोई बड़ा प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। इस उपेक्षा का एक कारण यह भी हो सकता है कि ब्रजभाषा के इन साहित्यकारों का महत्त्व अभी तक विद्वान् साम्प्रदायिक दृष्टि से ही आंक रहे हैं। इसीलिये सम्प्रदाय के विद्वान् ही इस ओर कुछ अधिक प्रयत्नशील दीख पड़ते हैं। कुछ अनुसन्धाताओं को छोड़कर किसी सुनिश्चित योजना के आधार पर कोई विद्वत्समाज इस पुण्य कार्य मे तत्पर नही दीख पड़ता। भक्त-प्रवर द्वारकादास जी परीख के सत्प्रयत्नों से बहुत कुछ अज्ञात साहित्य प्रकाश में आया है पर वह केवल सिन्धु मे बिन्दु के सदृश ही है। सूर साहित्य पर गवेषणा करते हुए मुझे इस विशाल साहित्य की यत्र-तत्र कुछ झाँकियाँ मिली और मेरी यह दृढ धारणा बन गई कि अभी तक जो शोधकार्य इस दिशा मे हुआ है वह विद्वानों का केवल चञ्चुप्रवेशमात्र है। इस सम्पूर्ण साहित्य को प्रकाश में लाने की आज बड़ी आवश्यकता है। धार्मिक, साहित्यिक और कलात्मक सभी दृष्टियों से इस साहित्य का विश्वसाहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। हजारों शोध विद्यार्थियों के लिये इस विशाल साहित्य में मसाला भरा पड़ा है इसी भावना से प्रेरित होकर हमने अपने विश्वविद्यालय में शोध के विषयों में कृष्ण भक्ति साहित्य को विशिष्ट स्थान दिया है और उसके विभिन्न पक्षों पर हमारे विद्यार्थी शोधकार्य कर रहे हैं। मेरे सहयोगी और प्रियशिष्य डा० गोवर्धननाथ शुक्ल के लिए शोध के विषय की समस्या बहुत दिनो से बनी हुई थी। शुक्ल जी के पूर्वज पुष्टि सम्प्रदाय के उच्चकोटि के विद्वान् और भक्त रहे हैं और उनके घर में आज भी पुष्टि सम्प्रदाय की सेवा तथा सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान हैं। उनकी समस्या पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और मैंने उन्हें परमानन्ददास जी पर काम करने की सलाह दी प्रस्तुत सपादन कार्य उसी का परिणाम है। सूर साहित्य प्रकाश में आ चुका था। पुष्टि सम्प्रदाय के दूसरे सागर एवं भक्त गायक परमानन्ददास जी का साहित्य अप्रकाशित ही था। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास का एक पद प्रसिद्ध है—

परमानन्द और सूर मिलि गाई सब ब्रजरीति।
भूलि जाति बिधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति।

इस पद से परमानन्द जी का महत्त्व स्पष्ट है। परमानन्ददास जी अपने जीवन में ही 'सागर' कहलाने लगे थे जैसा कि अष्टसखान की वार्ता में लिखा है ''[illegible]' श्री आचार्य जी के कृपापात्र हैं परन्तु सूरदास और परमानन्ददास ये दोऊ 'सागर' भए। इन दोउन के कीर्तन की संख्या नाहीं, सो दोऊ सागर कहवाये'' इस प्रकार का भी उल्लेख [illegible] आया है—''पुष्टि मार्ग में दोई 'सागर' भये एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास जी जिन तिनको हृदय अगाध रस भगवल्लीला रूप जहाँ रत्न भरे हैं।''

परमानन्ददास जी का पुष्टि सम्प्रदाय में अपना अलग महत्त्व है। सूरदास जी ने कृष्ण की विविध लीलाओं का गायन किया है जबकि परमानन्द जी बाललीला गायन में निष्णात कहे जाते हैं। इनका बाललीला गायन अत्यन्त स्वाभाविक और मार्मिक है। कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में 'गोपीभाव' एक विशिष्ट भाव है और यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि इस भाव निरूपण में परमानन्द जी बेजोड़ हैं। गोपीभाव का अभिप्राय गोपी की वेश-भूषा धारण करना नहीं है बल्कि उसके मूल में पूर्ण समर्पण और विरह में पूर्ण व्याकुलता की भावना है जैसा कि नारदभक्तिसूत्र में लिखा है—'तदर्पिताखिलाचारिता तद्विरहे परमव्याकुलता च'। श्रीमद्भागवत की गोपियाँ इन्हीं दोनों भावनाओं की प्रतीक हैं। यहाँ स्वार्थ की गन्ध नहीं है। काम का प्रवेश वर्जित है और विषयासक्ति का अभाव है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण भगवान् स्वयं गोपियों की स्तुति करते हैं:—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजाम्।
स्व साधु कृत्य विबुधायुषापिवः॥
या माभजन् दुर्जरगेह शृंखलाः,
संवृश्च्यतद् वः प्रतियातु साधुना॥ भाग १० स्कं० अ० ३२ श्लो० २२

परमानन्ददास जी के साहित्य में सर्वत्र इसी भाव की प्रधानता मिलती है। इन गोपियों के विषय में कहा गया है:—

ये हरिरस ओपी गोप तियन ते न्यारी।
कमलनयन गोविन्दचन्द की प्रानन पियारी।
निर्मत्सर जे सन्त तिनहि चूड़ामनि गोपी।
निर्मल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी।
जे ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावैं।
क्यों नहिं परमानन्द प्रेम भगति सुख पावैं।

परमानन्ददास जी ने इस गोपीभाव के विश्लेषण के लिए शृङ्गार-भक्ति के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों पर बड़े मार्मिक पद रचे हैं। उनके विरह के पद तो इतने उत्कृष्ट हैं कि उनकी अपनी विरह वेदना पदों से स्पष्ट झलकती है। ऐसे उच्च कोटि के भक्त और महाकवि के काव्य के विषय में हिन्दी जगत अन्धकार में रहे, यह बड़े दुख की बात थी। परमानन्ददास जी के पदों का संग्रह अवश्य उनके जीवनकाल में होगया होगा। 'परमानन्द सागर' की कई प्रतियाँ आज भी विद्या विभाग कांकरोली में सुरक्षित हैं; पर हिन्दी के विद्वानों को उनके पदों की जानकारी नहीं के बराबर है। परमानन्ददास जी के काव्य का काव्य-कला की

दृष्टि से भी बहुत कम विचार हुआ है। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि श्री गोवर्धननाथ शुक्ल ने अपने शोध-प्रबन्ध के द्वारा इस ओर स्तुत्य प्रयास किया है। 'परमानन्ददास जी और उनका साहित्य' शीर्षक शोध-प्रबन्ध में परमानन्द जी की जीवनी, उपलब्ध-साहित्य, भक्ति और काव्य-पक्ष आदि विभिन्न अंगों पर विस्तार से विचार किया गया है। स्वयं पुष्टि-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण शुक्ल जी का दृष्टिकोण बड़ा उदार रहा है। साथ ही उन्होंने शोध के मानदण्डों का कहीं भी परिहार नहीं किया। एक निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से परमानन्द और उनके साहित्य पर विचार किया गया है। परमानन्द जी के विद्यार्थी की सुविधा के लिए, शोध-प्रबन्ध की मुख्य-मुख्य बातें साररूप में यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। इस शोध-प्रबन्ध से भी बृहत्तर कार्य 'परमानन्द-सागर' के सम्पादन का था। जो उस लीला-पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से ही सम्पन्न हो सका है। अभी 'सागर' के कुछ और भी पद अवशिष्ट हैं; जिन्हें दूसरे संस्करण में सम्मिलित करने का प्रयास किया जायगा। पद-संग्रह यथा-सम्भव साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से ही किया गया है; फिर भी बहुत सी त्रुटियों का प्रवेश जाने-अनजाने अवश्य हो गया होगा; जिसके लिए सम्प्रदाय के उदार विद्वान् क्षमा करेंगे और अपने बहुमूल्य सुझावों से सम्पादक को कृतज्ञ करेंगे।

—हरवंशलाल शर्मा

॥ श्रीहरिः ॥

'परमानन्द सागर' एक झांकी

[श्री द्वारकादास परीख]

१—सागर क्यों

यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि ब्रजभाषा-गेय-साहित्यगिरि पर अष्टछाप के कवियों की रचनाएं शिखर स्थानीय हैं। उनमें काव्य चमत्कृतियों की अद्भुत कलाओं के साथ अन्तरात्मा की दिव्य एवं देदीप्यमान अनुभूतियों का जैसा रसास्वादन मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। यह रसास्वादन उन सन्त एवं भक्त कवियों के हृदयों की स्वतन्त्र भक्ति का प्रसाद स्वरूप है। यह स्वतन्त्र भक्ति वैदिक मन्त्र, विधि-विधानों और उपासना-पद्धति से विलक्षण केवल हृदय की साहजिक परम प्रेम स्वरूपा है जिसकी झांकी 'सागर' में होती है।

हृदय का साहजिक प्रेम काल, कर्म और स्वभाव से अबाधित रूपवाला होता है, वह केवल कोमल भाव-तरंगों को लिये हुए स्वतन्त्र भक्तिभावनाओं के अखंडित प्रवाह रूप से हृदय में बहता रहता है। भाव-तरंगों की उच्छलित लहरें कभी-कभी भक्त के मुख द्वारा निष्कासित होती हैं जो काव्य रूप में इस जगत में प्रतिफलित होती हैं, अष्टछाप के कवियों की वाणी का यही स्वरूप है। इसमें 'सूर' और 'परमानन्द' की वाणी 'सागर' रूप कहलाई।

'८४ वैष्णवन' की वार्ता से यह भी विदित होता है कि 'सूर' और 'परमानन्द' की वाणी ही नहीं किन्तु वे भी स्वयं 'सागर' रूप कहलाये[१]। 'सूर' ने तो अपने 'सागर' रूप का कथन निम्नलिखित पद में इस प्रकार स्पष्ट रूप से किया ही है:—

> हे हरि ! मोहूते अति पापी।
>
> 'सागर सूर' विकार जल भरयो वधिक अजामिल बापी।

'सूर' को 'सागर' की उपाधि सर्वप्रथम महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने प्रदान की थी। उसी के अनुसरण रूप में आपके द्वितीय पुत्र प्रभुचरण श्री विट्ठलनाथ जी गुसांई ने यह उपाधि 'परमानन्ददास' को दी थी[२]। इस प्रकार पिता पुत्र द्वारा 'सागर' शब्द एक महती उपाधि रूप में भक्ति मार्ग और साहित्य क्षेत्र में प्रचलित हुआ है।

अब प्रश्न यह होता है कि इस महती उपाधि से 'सूर' और 'परमानन्द' को सम्मानित वा अलंकृत क्यों किया गया ! और दोनों की रचनाओं को भी 'सागर' रूप देने का तात्पर्य क्या है ? इस प्रश्न को लेकर आज तक किसी विद्वान् ने स्वतन्त्र रूप से कोई विचार ही नहीं किया है। मेरा अपना यह मन्तव्य है कि जब तक 'सागर' शब्द का रहस्य ज्ञात न होगा तब तक सूर वा परमानन्द इन उभय सागरों की भीतरी लहरों को हम छू न सकेंगे और न उन

१—वार्ता प्रसंग—३। भावना वाली ८४ वै० वार्ता पृष्ठ ७३८।

२—वार्ता प्रसंग—७। लीला भावना वाली ८४ वै० वार्ता पृष्ठ ८०४।

सागरों के अन्दर रहे हुए निगूढ़ तत्त्व रूप रत्नों को ही पा सकेंगे। इसलिए 'सागर' शब्द के रहस्य को जानना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

कई लोगों की धारणा है कि सहस्रावधि पदों की रचना के कारण ही ये दोनो 'सागर' कहलाये। किन्तु यह धारणा ठीक नहीं है। क्योंकि इन कवियों के समकालीन और उत्तरकालीन ऐसे और भी कई कवि हुए हैं जिन्होंने सहस्रावधि पदों की रचनाएँ की हैं। किन्तु महाप्रभु या किसी अन्य महापुरुष द्वारा उन कवियों को यह उपाधि प्राप्त नहीं हुई है। अतः 'सागर' का सम्बन्ध केवल 'संख्या' सूचक नहीं है।

हाँ! ८४ वैष्णव की वार्ता में एक मुकुन्ददास कवि भी मिलते हैं। उनकी रचना को वार्ताकार ने 'सागर' की उपाधि दी है। वह है 'मुकुन्द सागर'। 'मुकुन्द सागर' में श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्धों का ब्रजभाषा में ज्यों का त्यों उलथा हुआ है [1]। इससे यह प्रतीत होता है कि 'सागर' शब्द श्रीमद्भागवत से सम्बन्धित है। यहां यह द्रष्टव्य है कि वार्ताकार ने मुकुन्ददास की रचना को 'सागर' कहा है किन्तु 'सूर' 'परमानन्द' की भांति 'मुकुन्ददास' को स्वयं 'सागर' की उपाधि से विभूषित कहीं नहीं किया गया है। अस्तु।

'सागर' शब्द भागवत से सम्बन्धित है उसका तात्पर्य यह है कि 'सागर' भागवत वाची शब्द है। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी ने अपने भागवत-सार समुच्चय रूप 'श्री पुरुषोत्तम सहस्र नाम' में श्री भागवत को 'सागर' कहा है। जैसा कि—

"कृपाविशित चित्तेन श्री भागवतसागरात्।
समुद्धृतानि नामानि चिंतामणि निभानि हि" ॥

इससे यह निश्चित हो जाता है कि 'सूर' और 'परमानन्द' को 'सागर' की उपाधि से अलंकृत करके महाप्रभु और प्रभुचरण ने भक्त द्वय को भागवत स्वरूप ही कहा है। उनकी रचनाओं को भी 'सागर' कहने का तात्पर्य यही है कि वे भागवती-भक्ति के ही अनुसरण रूप हैं।

२—भक्त का भागवतीय रूप

श्री भागवत में द्वादश स्कंध हैं, उनमें क्रमशः अधिकार, ज्ञान (साधन) सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय-इस प्रकार की द्वादशीय भगलीलाओं का वर्णन हुआ है। अधिकार और ज्ञान ये दो लीला अन्य लीलाओं के साधन रूप होने से गौण हैं। शेष सर्गादि से लेकर मुक्ति पर्यंत की नव लीलाएँ द्वादश स्कंधीय 'आश्रय' रूप लक्ष्य" की लक्षणस्वरूपा है 'लक्ष्य' रूप 'आश्रय' भगवान् का ही स्वरूप माना गया है। इसीलिये नन्ददास जी ने भी कहा है:—

'नवलक्षण करि लक्ष्य जे दसयें आश्रय रूप।
नन्द' बंदि लै ताहिकों श्रीकृष्णाख्य अनूप ॥'

अर्थात् तृतीय स्कंध से एकादश स्कंध पर्यन्त की लक्षणा रूपा नव लीलाओं से युक्त द्वादश स्कंधीय 'आश्रय' स्वरूप श्रीकृष्ण की श्रीभागवत में स्थिति रही हुई है इसलिये श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण का ही स्वरूप है।

१—देखो मुकुन्ददास की वार्ता सं० १६

श्री वल्लभाचार्य जी श्री भागवत के द्वादश स्कंधों को अपने इष्ट परब्रह्म श्री गोवर्धननाथ जी के द्वादश अवयव रूप मानते हैं।[1] आप के मत से प्रथम-द्वितीय स्कंध भगवान् के दोनो चरण हैं। तृतीय-चतुर्थ स्कंध दोनों बाहू हैं। पंचम-षष्ठ स्कंध दोनों सक्थि हैं। सप्तमस्कंध दक्षिण श्रीहस्त है। अष्टम नवम स्कंध दोनों स्तन हैं। दशम स्कंध हृदय है। एकादश स्कंध श्री मस्तक है और द्वादश स्कंध वाम श्रीहस्त हैं। इस प्रकार द्वादश स्कंधीय भागवत भगवान् पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण के द्वादश अवयव स्वरूप साक्षात् श्री विग्रह है। इस प्रकार के 'द्वादशांगोवै पुरुषः—"भागवत स्वरूप श्रीकृष्ण" की जिस भक्त के हृदय में अक्षुण्ण स्थिति रहती है वह ही भागवत स्वरूप होता है। महाप्रभु ने सूर और परमानन्द दोनों के हृदय में दशम स्कंध की अनुक्रमणिका और पुरुषोत्तम-सहस्रनाम की प्रतिष्ठा कर दोनों को 'भागवत' स्वरूप बना दिये थे। यह बात वार्ता से स्पष्ट सिद्ध होती है[2]।

द्वादशलीला युक्त भगवान् श्रीकृष्ण की 'सूर' और 'परमानन्द' के हृदयों में तात्विक रूपों से स्थिति थी। इसीलिये सूर जन्म से लौकिक दृष्टि से विहीन होते हुए भी इस निरानन्द लोक (जगत) और उस आनन्दमय गोलोक के सर्वांग रूप से द्रष्टा बन सके, यही नहीं भगवान् और उनके प्रकृतिजन्य विविध सौंदर्य क्रीडा, और पदार्थों को भी तलस्पर्शी वर्णन कर सके। स्वयं भगवान् की अविगत रसमयी लीलाओं को भी जान सके और प्रकट भी कर सके। इसी प्रकार परमानन्द के हृदय में भी वही आनन्द स्वरूप और आनन्दमयी लीलाओं की स्थिति थी उसका ज्ञान उनके 'सागर' से स्पष्ट हो जाता है।

३—'सागर' में भागवती लीला

'सूर सागर' की भाँति 'परमानन्द सागर' विस्तृत नहीं है। 'सूर' ने 'सारावली' आदि अपनी रचनाओं में 'सर्ग विसर्गादि सभी लीलाओं आश्रयांत परिपूर्ण वर्णन किया है इसीलिए सूर सारावली को 'सागर' की सूची रूप मान कर 'सागर' की भागवतीय लीलाओं की पूर्ति का अंश माना है—वास्तव में तो 'सागर' भागवतीय भक्ति—तत्व से ही सम्बन्धित है। अन्य लीलाएँ तो उस तत्व का विस्तार, पोषण और स्पष्टीकरण रूप है। इसलिए सूर सागर के नाम से दो तरह की प्रतियां उपलब्ध होती हैं। एक केवल दशमस्कंध पूर्वार्द्ध की लीलाओं की संग्रह वाली। द्वितीय द्वादश स्कंध के अनुवाद वाली। इनमें प्रथम प्रति ही भगवान् की भक्ति तत्व वाली है अतः मूल रूप 'सागर' का स्वरूप वही है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने भागवत में तीन भाषायें मानी हैं। लौकिक भाषा, पर मत भाषा और समाधिभाषा। लौकिक भाषा वह है जिसमें इतिहास है। पर मत भाषा वह है जिसमें अन्य ऋषि मुनिओं के मतों को कहा गया है। समाधिभाषा वह है जो व्यास-शुक वचन स्वरूप है। व्यास जी ने समाधि में भगवल्लीलाओं का दर्शन अनुभव करके शुक को कहा है। वे ही भक्ति मार्ग में प्रमाण स्वरूप हैं और व्यास जी की आत्मा को भी उसी से शान्ति हुई है। इससे समाधि-भाषा की उपादेयता और प्रधानता सिद्ध है। भागवत में कहे गए ज्ञान वैराग्य आदि अन्य तत्वों का पर्यवसान भक्ति में ही हुआ है। भागवत में भक्ति के भी अनेक भेद कहे गए हैं

१—इतीदं द्वादशस्कन्ध 'पुराण' हरिरेव मः। पुरुषे द्वादशत्वं हि सक्थी बाहू-शिरोऽन्तरम् ॥१४॥ हस्तौ पादौ स्तनौ चैव पूर्वपादौ करौ ततः। सक्थौ हस्तस्ततश्चैको द्वादशश्चापरः स्मृतः ॥१५॥ उत्क्षिप्तहस्तः पुरुषो भक्तमाकारयन्स्युत। स्तनौ मध्यं शिरश्चैव द्वादशांग तनुंहरि ॥१६॥ निबन्ध।

२—देखो ८४ वै० वा० [भावनावाली] सं० ८१-८२ पृष्ठ ७३८; तथा ८०४।

हैं। उनमें मर्यादा और पुष्टिभक्तों के चरित्र रूप भक्ति की प्रधानता है। षष्ठ, नवम और दशम स्कंधों में सदोष पुष्टि जीवों का मर्यादा पुष्टि और निर्दोष जीवों के पुष्टि चरित्रों का वर्णन मिलता है। इनमें भी निर्दोप-पुष्टि भक्तों के चरित्र में विशुद्ध प्रेमलक्षणा का आविष्कार हुआ है। वह विशुद्ध प्रेमलक्षणा भक्ति का वर्णन दशम-पूर्वार्द्ध में ही मिलता है। यह भक्ति ही भागवत का प्रधान तत्व है। इससे ही मुक्ति और आश्रय की सिद्धि होकर जीव कृत कृत्य हो जाता है।

प्रेमलक्षणा भक्ति को महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी ने स्वतंत्र, स्वाधीना, वा पुष्टिभक्ति कहा है। उसमें भगवान् स्वयं प्रेम विवश होकर जीवों का समुद्धार करते हैं। इस भक्ति के अधिकारी निःसाधन जीव होते हैं, जिनको वेदादि ज्ञान का आश्रय नहीं होता है। ऐसे भक्तों में श्री गोपीजन प्रधान हैं। इसलिये प्रेम भक्तिमार्ग के सभी आचार्यों ने उनको गुरु माना है। गोपीजनों के उद्धार के अर्थ भगवान् श्रीकृष्ण ने व्रज में अवतरित होकर जो लीलाएँ की हैं वे सब प्रेम-भक्ति की विविध अवस्था रूप हैं। उन लीलाओं का 'सागर' में वर्णन है। ये लीलाएँ प्रधानतः चार अवस्था वाली हैं :—बाल, कुमार, पौगंड और किशोर। भगवान् श्रीकृष्ण ने ११ वर्ष ५२ दिवस सपर्यंत् ऐतिहासिक रूप से व्रज में स्थिति की है। भाव रूप से उनकी स्थिति व्रज में नित्य है। ११ वर्ष और ५२ दिनों में उन्होंने उक्त चार अवस्थाओं को अंगीकार करते हुए जन्म से लेकर रास क्रीड़ा पर्यन्त लीलाएँ की है, जिनका भागवत और 'सागर' दोनों में वर्णन हुआ है।

दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के भक्ति तत्व में भगवान् श्रीकृष्ण की चार अवस्थाओं की चतुर्विध लीलाएँ हैं वह प्रेम-भक्ति की स्नेह, आसक्ति, व्यसन और तन्मय इस प्रकार की चार अवस्थाओं को प्रकट करती हैं। जैसाकि—

१—बाल लीला :—इसका वर्णन 'सागर' मे जन्म के पश्चात् छट्ठी पूजन, पलना, अन्नप्राशन, कनछेदन, नामकरण, करवट, भूमिस्थिति, देहली उल्लंघन, ऊखल लीला, मृतिका भक्षण और माखन चोरी आदि पदों में है। इस प्रकार की अढाई वर्ष तक की बाल लीला से भगवान् श्रीकृष्ण ने व्रजजनों की दूध, दही आदि लौकिक पदार्थों में से राग निवृत्त कर अपने मुग्ध रूप के प्रति स्नेह को उत्पन्न किया है। आचार्य चरण स्नेह का लक्षण बताते हुए 'भक्तिवर्द्धिनी' में आज्ञा करते हैं कि 'स्नेहाद्रागविनाशः' अर्थात् भगवान् में स्नेह हुआ तभी मानना चाहिए जब भक्त का लौकिक पदार्थों में रहा हुआ राग नाश हो।

'सागर' में से स्नेह के उदाहरण रूप एक पद यहां दिया जाता है—

> हरिलीला गावत गोपी जन आनन्द में निसिदिन जाई।
> बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नैन व्रजजन सुखदाई।।
> दोहन मण्डन, खण्डन लेपन, मंडन-गृह, सुतपति सेवा।
> चारियाम अवकास नहिं पल, सुमरत कृष्ण देव-देवा।।
> भवन भवन प्रति दीप बिराजत, कर कंकन नूपुर बाजे।
> 'परमानन्द' थोख कौतूहल निरखि पांति सुरपति लाजे।।[१]

इस पद में बाल-लीला-चरित्र के स्मरण से गोपीजनों के सभी आवश्यक गृह-कार्यों में से भी राग निवृत हुआ प्रतिभासित होता है।

१—परमानन्द सागर पद संख्या—८१

२—कुमार लीला :—इसका वर्णन 'सागर' में गोदोहन, गोचारण, आदि के पदो में है। अढाई से पाच वर्ष तक कुमार अवस्था मानी गई है। भगवान् ने पांचवें वर्ष से ही गोचारण गोदोहन आदि लीलाएँ शुरू की थी। उस कुमार अवस्था में आपका सौंदर्य 'कुत्सितो मारो यस्मिन् स कुमारः' अर्थात् जहाँ काम भी तुच्छ लगे ऐसा था। बाल क्रीड़ाओं से उत्पन्न किया गया प्रेम इस प्रकार के रूप द्वारा आसक्ति में परिणत हुआ। आसक्ति का स्वभाव है प्रिय का गुणानुवाद गाना।[1] भगवान् श्रीकृष्ण जब गोचारण को पधारते थे तब सब गोपीजन गृह के कार्यो को छोड़ कर आपस में भगवान् के स्वरूप और लीलाओं का गुणानुवाद करती थी। इससे गोपीजनों की गृह में अरुचि सिद्ध होती है। आचार्य चरण आसक्ति का यही लक्षण 'भक्तिवर्द्धिनी' में बतलाते हैं। ''आसक्त्यास्याद् गृहारुचिः।''[2] 'सागर' में से आसक्ति के उदाहरण रूप एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

> अब तो कहा करोंरी माई।
> जबतें दृष्टि परी नंदनंदन पल भर रह्यौ न जाई॥
> भीतर मात-पिता मोहि त्रासत जे कुल गारि लगाई।
> बाहर सबैं मुख मोरि कहत हैं, कान्ह सनेहनि आई॥
> निसबासर मोहि कल न परत है गृह-अंगना न सुहाई।
> 'परमानन्ददास' को ठाकुर हंसि चित्त लियौ है चुराई॥[3]

इस पद में एक गोपिका अपनी सखी के आगे भगवान् के स्वरूप के प्रति आसक्ति का वर्णन करती हुई कहती है कि रात-दिन मुझे न तो कल पड़ रही है न गृह का आंगन ही सुहाता है। इससे 'गृहारुचि' स्पष्ट जानी जा सकती है।

३—पौगंड लीला :—छै से नव वर्ष तक की पौगंड अवस्था होती है। इस अवस्था मे व्रतचर्या आदि लीलाएँ भगवान ने की हैं। इन लीलाओं में गोपी जनों की आसक्ति व्यसनावस्था को प्राप्त हुई हैं। वे भगवान् को अपने पति रूप में प्राप्त करने के साधन रात दिन करती रहती हैं। इसके लिये व्रज की कुमारिकाओं ने जहां 'व्रतचर्या' आदि साधन किये वहां गोप-वधुओं ने दान, मान, पनघट आदि साधनों से भगवत्स्वरूपों के 'अँखरस' 'कनरस' 'बतरस' और 'सबरसों' का अनुभव करने की सतत चेष्टाएँ की हैं। भगवान् श्रीकृष्ण 'रसो वै सः' रस स्वरूप है। वह ''आनन्दमात्र कर पाद मुखोदरादि''[4] स्वरूप वाले आनन्द स्वरूप हैं। 'रसंह्येवाऽयंलब्ध्वा आनंदी भवति' श्रुति के अनुसार इसको प्राप्त कर जीव आनंदमय होता है। अतः आनंदपिपासुओं के लिये रसमय श्रीकृष्ण की प्राप्ति ही ध्येय रूप होती हैं। उस ध्येय की सिद्धि से ही जीव कृतकृत्य हो जाता है। इसीलिये आचार्य चरण 'भक्तिवर्द्धिनी' में आज्ञा करते है :—'यदास्याद् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात् तदैवहि'[5] अर्थात् जिस समय श्रीकृष्ण में व्यसन हो जाता है उसी समय जीव कृतार्थ हो जाता है।

१—गोपी गीत-सुबोधिनी
२—भक्ति वर्द्धिनी श्लोक ४
३—परमानन्द सागर पद सं०—७१३
४—तत्वदीप श्लोक ४८
५—भक्ति वर्द्धिनी—श्लोक ५

'सागर' में से कुमारिकाओं एवं गोप-वधुओं के व्यसन के दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

व्रतचर्या :— हरिजस गावत चली ब्रजसुन्दरी नदी जमुना के तीर।
लोचन लोल बांह जोटी कर स्रवनन झलकत वीर ।।
बेनी सिथिल चारु कांधे परे कटि-पर अंबर लाल।
हाथन लिये फुलन की डलियां उरमुक्ता मनि माल ।।
जल प्रवेस करि मज्जन लागी प्रथम हेम के मास।
जैसे प्रीतम होय नंदसुत व्रत ठान्यौ यह आस ।।
तब ते चीर हरे नंदनंदन चढ़ि कदंब की डार।
'परमानंद प्रभु' वर देवे कों उद्यम कियो हैं मुरार ।।[1]

रस प्राप्ति के लिये वन गमन—

यातें माई भवन छांड़ि वन जैये।
आंखि रस, कन-रस, बतरस, सबरस नंद नंदन पे पैये ।।
कर पल्लव कर कंध बाहु धरि संग मिलि गुन गैये।
रास विलास विनोद अनुपम माधों के मन भैये ।।
यह सुख सखीरी कहत न आवै देखे ही दुःख बिसरैये।
'परमानंद स्वामी' को संगम भाग बड़े ते पैये ।।[2]

४—किशोर लीला :—कृतार्थ हो जाने पर जीव प्रेम भक्ति के फल को प्राप्त होता है। अर्थात् कृष्ण की प्राप्ति होने के पश्चात् जीव अपनी एकादश इन्द्रियों से हरि-रस वा कृष्ण रस का उपभोग करता है। एकादश इन्द्रियों से इस प्रकार कृष्ण रस का उपभोग होता है—

परम रस पायो ब्रज की नारि।
जो रस ब्रह्मादिक कों दुर्लभ सो रस दियो मुरारि ।।
दरसन सुख नैनन कों दीनो रसना कों गुन गान।
बचन सुनन श्रवनन कों दीनो बदन अधर रस पान ।।
आलिंगन दीनो सब अंगन भुजन दियो भुजबंध।
दीनी चरम विविध गति रसकी नासा को सुख गंध ।।
दियो काम सुखभोग परम फल त्वचा रोम आनंद।
ढिग बैठियो नितंबन लै उछंग नंदनंद ।।
मन कों दियो सदा रस भावन सुख समूह की खान।
'रसिक' चरन रज ब्रज-जुवतिन ही अति दुर्लभ जिय जान ।।

यह पद महाप्रभु श्री हरिराय चरण का है। इसमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी की उन कारिकाओं का फलितार्थ हैं जो 'वेणुगति' के अध्याय में आपने 'अक्षण्वतां फलमिद' श्लोक पर लिखा है जैसा कि—"अक्षण्वतामिन्द्रियवतां चक्षुष्मतां वा, इदमिति स्वहृदये मनोरथ प्रकारेण प्रतिभातं"।[3]

१—परमानन्द सागर—पद ८००

२—परमानन्द सागर पद—२१०

३—सुबोधिनी द० स्क० अ का० ३

भगवता सह संलापो दर्शनं मिलितस्य च ।
आश्लेषः सेवन चापि स्पर्शश्चापि तथा विधिः ॥
अधरामृत पानं च भोगो रोमोद्गमस्तथा ।
तत्कूजितानां श्रवणमाघ्राणं चापि सर्वतः ॥
तदन्तिकगतिर्नित्यमेवं तद्भावनं सदा ।
इदमेवेन्द्रियवतां फलं मोक्षोपि नान्यथा ॥

इस प्रकार के रसानुभव से परे कोई फल नहीं है, मोक्ष भी नहो है। यह श्रुति रूपा गोपीजन कहती हैं। यह परम फल है। इस परमफल के दो रूप हैं। एक बाह्य रमण। दूसरा आंतर रमण। बाह्य रमण श्रीकृष्ण के स्वरूप से रमण संयोगफल रूप है। वह रास क्रीड़ा रूप मे श्री गोपीजनों को प्राप्त हुआ। यही किशोर अवस्था की लीला हे। जिसमें रास, खण्डिता आदि के पदों का समावेश होता है। स्थानाभाव से उन पदों को यहाँ नहीं दिया जा रहा हैं। दूसरा आँतररमण परमफल[1] युगलगीत भ्रमरगीत में धर्मी रूप से मिलता है। यह धर्मी विप्रयोग स्वरूप हैं। इसमें धर्मी संयोग की निरन्तर स्थिति रहने के कारण उसमें वियोगजन्य दुख नहीं रहता है। वह तन्मयता की परमानंद अवस्था रूप है। यही 'स्वाधीना भक्ति'[2] हैं। स्वाधीना अर्थात् हृदय में प्रतिष्ठित हुए आनन्दकंद श्रीकृष्ण को ऐसे भक्त अपनी इच्छा से लीला स्वरुप बाहर भी प्रादुर्भूत करते हैं और भक्त अपनी इच्छा के अनुसार उस रूप का आंतर बाह्य उभय प्रकारों से भोग करता रहता है। श्रीगोपजनों ने उद्धवजी को भक्तियोग का यह चमत्कार दिखलाया तभी वे ज्ञानी से मिटकर भक्त हुए और श्री गोपीजनों की प्रशसा करने लगे।[3]

सागर में यहाँ तक की किशोर लीला के पद मिलते हैं। आचार्य चरण ने इस माधुर्य भाव को नितान्त गोप्य रखने को कहा है। क्यों कि यह सर्वोत्तम रस प्रगट होने पर रसाभास रूप हो जाता है। इसीलिये पुष्टिमार्ग में इस रस को बाल लीला से आवृत रखा है। यही प्रणाली परमानंददास ने भी अपने पदों में अपनायी है। उनकी वार्ता प्रसंग ५ में इस बात को स्पष्ट किया गया है:—"तब रामदास जी ने पूछी, जो परमानंददास ब्रज में सगरो प्रेम ब्रजभक्तन को है, सो श्रीनंदराय जी गोपीजन, ग्वाल, सखान को। जातें सबतें श्रेष्ठ प्रेम किन को है। सो काहे ते, जो तिहारी बाल लीला में लगन बहुत है।"—भावप्रकाश वार्ता ५

परमानंददास के प्रायः सभी पदों में आंतर अथवा बाह्य-भाव प्रकार से बाल लीला, की छाया जरूर दिखाई देती है। उसका यही मर्म है। अस्तु

भ्रमर गीत में— ऐसे में नंदलाल रूप नैनन के आगे।
आइ गये छबि छाय बने पियरे उर बागे॥
उधो सों मुख मोरि के तिनही सों कहे बात।
प्रेम अमृत मुख ते स्रवत अंबुज नैन चुचात॥
तरक रसरीति की॥[4]

१—आंतरंतु परंफलम्-सुबोधिनी
२—कृष्णाधीनातु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते-निबंध
३—व्रजेस्थित व्रजे अस्मिन्—भागवत—सुबोधिनी
४—भ्रमर गीत—पद संख्या २६, ४२, ४३ नंददास—ग्रंथावली।

तथा— इहि विधि ह्वै आवेस परम प्रेमहिं अनुरागीं ।
और रूप पिय चरित तहाँ सब देखन लागीं ।।
रोम रोम रहे व्यापि कैं जिनके मोहन आय ।
तिनके भूत भविष्य कौं जानत कौन दुराय ।।
रंगीली प्रेम की ।।

देखत इनको प्रेम नेम ऊधौ को भाज्यौ ।
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यौ ।।
मन में कहे रज पाँय को लै माथे निज धारि ।
परम कृतारथ ह्वै रह्यौ त्रिभुवन आनंद वारि ।।
वंदना जोग ए ।।

४—सागर के दो विभाग

'सागर' में दो विभाग हैं । एक वर्षोत्सव का, दूसरा नित्य लीला क्रम का । वर्षोत्सव के क्रम में भगवान् के जन्म से लेकर भ्रमरगीत पर्यन्त की लीलाओं के पदों का संग्रह मिलता है । वह भागवत की लीला-क्रम के अनुसरण रूप है । 'सागर' की कई लीलाएँ भागवत मे प्रकट रूप से नहीं है जैसे कि दान लीला खंडिता आदि । उसके संकेत भागवत में अवश्य मिलते हैं । यह एक अलग और विस्तृत विषय होने से यहाँ उस पर नहीं लिखा जा रहा है । कुछ लीलाएँ ऐसी भी हैं जिनका उल्लेख संकेत रूप से भी श्रीभागवत में नही है । वे अन्य पुराणादिकों की हैं । जैसे कि पर्व, त्यौहार (पतंग उड़ायवे आदि की लीला)

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने प्रमाण चतुष्टय-वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र और भागवत की समाधि-भाषा से अविरुद्ध सभी प्रमाण और लीलाओं को स्वीकार किया है, इसलिये उनका गान 'सागर' में भी पाया जाता है । ये विशेषतः पुष्टि मार्ग की सेवा-प्रणाली से सम्बन्ध रखने वाली है ।

५—सेवा का रूप

पुष्टि मार्ग की सेवा प्रणाली में कृष्ण की दिनचर्या और व्रज के वार—त्यौहार और पर्व आदि का समावेश किया गया है । मंगला से लेकर शयन पर्यन्त की सेवा कृष्ण की दिनचर्या की भावना से ऋतु-अनुसार की जाती है और उत्सव, त्यौहार पर्व आदि की सेवा अन्य शास्त्रीय एवं व्रजीय लोक भावनाओं के अनुसार होती है । इस प्रकार सेवा में भागवत के दशमस्कंध की लीलाओं के साथ अन्य शास्त्र पुराणों और लोक-भावनाओं का भी समावेश किया गया है । तदनुसार 'सागर' मे भी पद मिलते हैं ।

भागवत की भक्ति प्रेमलक्षणा है । 'भक्ति' शब्द का निर्माण 'भज्' धातु और 'क्तिन्' प्रत्यय से हुआ है । 'भज्धातु सेवायाम्' इस सूत्र के अनुसार और 'क्तिन्' प्रत्यय भाववाची होने से भक्ति' का अर्थ होता है—भावपूर्वक की गई परिचर्या । 'भाव' देव विषयक स्थायी रति को कहते हैं । अतः श्रीकृष्ण की स्थायी रति पूर्वक भावना युक्त जो परिचर्या की जाय वही 'सेवा' कही जाती है । इसीलिये गोपी जनों की प्रेम-भावना के अनुसार श्रीकृष्ण की सेवा का पुष्टिमार्ग में निर्माण हुआ है । उन सेवा की समस्त प्रक्रियाएँ प्रेम प्रधान हैं । उसमें बाल लीला कुमार लीला पौगंड लीला और किशोर लीलाओं की भावना और उत्सव आदि का भी समावेश हुआ है संक्षिप्त मे कहा जाय तो पुष्टीमार्गीय सेवा ही सागर स्वरूप है और वह

'सागर' भागवत स्वरूप है । अर्थात् भागवत की भक्ति का तत्त्व रूप और कर्म रूप का संयुक्त व्यवहार रूप पुष्टिमार्गीय सेवा है और उसी के अनुसार 'सागर' में वर्षोत्सव और नित्य लीला क्रम पाया जाता है ।

पुष्टीमार्गीय सेवा में 'माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़: सर्वतोऽधिक स्नेह रूप भक्ति रही है । अतः उस भगवान् के भक्ताधीनत्व रूपों की चार जयन्तियां वामन, नृसिंह, राम और कृष्ण की जयन्तियाँ—मान्य हुई हैं । इसलिये 'सागर' में उन चारों के पद और माहात्म्य आदि के पद भी मिलते हैं । पुष्टिमार्गीय सेवा भागवत के भक्ति सिद्धान्तों का प्रतीक है । उस पर जितना लिखा जाय कम ही रहेगा । इसीलिये विस्तार भय से यहाँ 'सागर' पर अधिक विवेचन नहीं किया गया है ।

वार्ता में 'सागर' का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा कि—

१—"और सूरदास को जब श्री आचार्य जी देखते तब कहते जो—'आवो सूर सागर ! सो ताको आसय यह है, जो समुद्र में सगरो पदार्थ होत है । तैसे ही सूरदास ने सहस्रावधि पद किये हैं जामें ज्ञान वैराग्य के न्यारे न्यारे भक्ति भेद अनेक भगवद् अवतार सो तिन सबन की लीला को वर्णन कियो है—" सूरदास की वार्ता प्रसंग ३ ।

२—"सो ता समय श्री गुसाई जी आपु उन वैष्णवन के आगे यह बचन श्रीमुख सों कहे, जो ये पुष्टिमारग में दोइ 'सागर' भये । एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास । सो तिनको हृदय अगाध रस भगवल्लीला रूप जहां रत्न भरे हैं ।"

परमानन्ददास की वार्ता प्रसंग ७

प्रस्तुत प्रकाशित 'सागर' में पदों के क्रम में विशेषत: 'नित्यसेवा' के पदों के क्रम में छापने में थोड़ी गड़बड़ हुई है । इसलिये क्रम पर यहां विवेचन नहीं किया जा रहा है । तात्पर्य यह है कि भागवतीय लीला का क्रम 'माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़: सर्व तोऽधिक स्नेह की भक्ति की व्याख्या के पूर्ण अनुकूल 'सागर' में मिलता है उसी प्रकार 'नित्य सेवा' का क्रम भी इसमें ऋतु, समय और दिनचर्या के साथ चारों वर्णों के पर्व त्यौहार के सम्पूर्ण अनुकूल है । उस पर फिर कभी विस्तृत प्रकाश डाला जायगा ।

श्री भाई शुक्ल जी ने अत्यन्त परिश्रम पूर्वक 'सागर' के पदों का संग्रह और संकलन कर हिन्दी साहित्य जगत् की बहुमूल्य सेवा की है । अभी 'सागर' के कुछ पद इस संग्रह में छूट गये हैं आशा है द्वितीय आवृत्ति में वे भी आ जायेंगे

अष्टछाप के द्वितीय सागर
भक्त प्रवर

परमानंद स्वामी

प्राकट्य
(मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, सं० १५५०)

नित्य लीला
(भाद्रपद कृष्णा नव

(मूल प्रति श्री परीख ज

कविवर परमानन्ददास और उनका साहित्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास में पूर्व मध्य-युग अथवा भक्ति-काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। इस युग में सगुण भक्ति को लेकर जिस उच्च कोटि के साहित्य की सृष्टि हुई वह अनुपम थी। माधुर्य और सौंदर्य में उन्नत प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गहन से गहन भावानुभूतियों के समाधिमय क्षणों में जिन चिरंतन मानवीय रहस्यों का उद्घाटन और उनकी रागमय अभिव्यक्ति जैसी इस युग में हुई वैसी न तो उससे पूर्व हो पाई थी और न आगे चलकर फिर संभव हो सकी। शृङ्गार-भावना और उसकी अभिव्यक्ति को सगुण शक्ति के पवित्र प्राचीर में सुरक्षित रखने का श्रेय जितना कृष्ण-भक्त कवियों को है उतना अन्यभक्त कवियों को नहीं। इस युग के कृष्ण-भक्त कवियों ने जिस सरस साहित्य का सर्जन किया वह विश्व-साहित्य में समादरणीय है। उनमें भी 'अष्टछाप' के कवियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

ये 'अष्ट काव्य वारे' आठों सखा "अष्टछाप" के नाम से साहित्य-जगत् में प्रसिद्धि मे आए। परन्तु इनकी कीर्तन-सेवा के कारण पुष्टि-संप्रदाय इनसे बहुत पहले से परिचित चला आता था। अष्टछाप में भी आचार्य वल्लभ के प्रथम चार शिष्य 'अष्टछाप' की स्थापना (संवत् १६०२) के ४०-४५ वर्ष पूर्व से ही अर्थात् लगभग संवत् १५५५ से ही श्री गोवर्धननाथ जी के समक्ष कीर्तन-सेवा के रूप में अपना सरस मधुर काव्य उनके चरणों में निवेदित करते चले आ रहे थे और लगभग संवत् १६४२ तक इन महानुभावों की कीर्तन-सेवा का क्रम चलता रहा। इस प्रकार लगभग संवत् १५५५ से संवत् १६४२ तक का लगभग ८७ वर्षों का युग एक ऐसे विशाल भाव-रत्नार्णव का सर्जन कर गया जिसे हिन्दी साहित्य के भक्ति-युग की 'दैवी घटना' अथवा 'चमत्कार' ही समझना चाहिये। क्योंकि न तो उससे पूर्व ही, और न उसके पश्चात् ऐसी किसी सुशृंखलित परम्परा के दर्शन हो सके जिसमें भक्ति की तन्मयता, भावों की विभोरता, साकार भावना की दृढ़ता और संगीत की सरसता के साथ साथ अभि-व्यक्ति की गंभीरता और भगवत्सेवा की निश्छल परायणता मिलती हो। इस काल में जीवन का दर्शन तो मिलता है परन्तु भगवान् के चरणों में पूर्ण विनियोग के साथ। प्राकृत-जन-गुण-गान की दुर्गन्ध से दूर, भगवल्लीला की सरस माधुरी से पूर्ण ब्रज भाषा के इन भक्त कवियों के पदों मे जन-मन को तन्मय कर देने की कितनी प्रबल सामर्थ्य थी इसका सहज अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि संप्रदाय के तत्कालीन बड़े-बड़े आचार्य चरण जो कि संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे, इन पर मुग्ध होकर आनन्द विभोर हो जाते थे और देहानुसंधान तक खो बैठते थे।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने "पृथ्वी पर्यटन" करते हुए जब पुष्टि सम्प्रदाय का प्रचार किया और जीवों को कल्याण-मार्ग का उपदेश देते हुए भगवत्सेवा-मार्ग का विधान किया तब श्री गिरिराज से प्रकट हुए श्रीनाथ जी के स्वयंभू स्वरूप की संगीत सेवा अपने प्रमुख चार शिष्यों—सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास और कृष्णदास—को सौंपी[1] और संवत् १५८७ मे उनके नित्य लीला प्रवेश के उपरान्त जब उनके द्वितीय पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी सम्प्रदाय की आचार्य-गद्दी पर अभिषिक्त हुए तो श्रीनाथ जी की सेवा में और भी अधिक सुव्यवस्था

१ श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता पृष्ठ १६
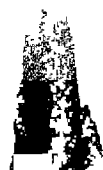
हुई। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी में भगवान के अर्चा विग्रह की सेवा के प्रति बड़ी लगन और रुचि थी। संप्रदाय मे उनके विषय में प्रसिद्ध है—

सेवा की यह अद्भुत रीत।
श्री विट्ठलेश सौं राखै प्रीति[1] ॥

अतः उन्होंने भगवान की नित्य सेवा के तीन अङ्ग किये—

१. राग
२. भोग
३. शृङ्गार

इनमें राग अथवा संगीत की सेवा के लिए अपने पूज्य पिता के चार शिष्यों और चार अपने शिष्यों को सम्मिलित कर 'अष्टछाप' की स्थापना की[2]। अष्टछाप के यही आठ कवि महानुभाव सम्प्रदाय में 'अष्टसखा' अथवा 'अष्ट कीर्तन वारे' अथवा 'अष्ट काव्य वारे' आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। स्वयं गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप शब्द का कहीं भी व्यवहार नहीं किया है। सम्प्रदाय में इन्हें लगभग १६९६ तक 'अष्ट काव्य वारे' पुकारा जाता रहा[3]। संवत् १६९७ की प्राचीन वार्ता प्रति में सर्वप्रथम 'अष्टछाप' शब्द का प्रयोग मिलता है। अतः अनुमान किया जाता है कि सर्वप्रथम इस शब्द को लिखित रूप प्रभु चरण गोस्वामी गोकुलनाथ जी ने दिया और इस प्रकार यह शब्द सम्प्रदाय द्वारा ही प्रचलित किया गया।

'अष्टछाप' से तात्पर्य था आठ महानुभावों को सम्प्रदाय की विशिष्ट कीर्तन सेवा पद्धति से मुद्राङ्कित अथवा चिह्नित करना और आगे चलकर इसका परिणाम यह हुआ कि पुष्टि सम्प्रदाय की अपनी एक विशिष्ट कीर्तन शैली बन गई, जिसके अतिरिक्त प्रभु को कीर्तन सेवा स्वीकार नहीं समझी जाती और न इन विशिष्ट कीर्तन कारों के अतिरिक्त अन्य गायकों के पद ही निवेदन किए जाते हैं। स्वयं गोस्वामी विट्ठलनाथ जी उच्चकोटि के काव्य-मर्मज्ञ एवं संगीतज्ञ थे। अतः अष्टछाप की स्थापना में उनका उद्देश्य साहित्य और संगीत के सुन्दर समन्वय के साथ कीर्तन भक्ति की सुरसरि से समूचे भरत खण्ड को आप्लावित करना था।

अष्टछाप के ये कवि गण जिन्हें भगवान् के प्रति सख्यासक्ति के कारण 'अष्टसखा' कहा जाता रहा है, मुख्य रूप से भक्त (उपासक), कवि, संगीतज्ञ एवं कीर्तनकार थे। ये लोग भगवल्लीला गान को अपना लक्ष्य मानकर भगवत्प्रेम की शाश्वत भावना में निश्चिन्त एक ऐसे दिव्य-लोक में विचरण किया करते थे जो केवल अनुभव गम्य है। इनके पदों के आध्यात्मिक प्रभाव ने धर्म, साहित्य और कला की त्रिवेणी से आर्यावर्त को पदे-पदे प्रयाग बना दिया[4]।

खेद का विषय है कि जिन भक्त कवियों का साहित्य संगीत इतना गौरवमय हो उन सब का सुशृंखलित जीवन-वृत्त और प्रामाणिक काव्य-संग्रह उपलब्ध नहीं। अष्टछाप के मूर्धन्य भक्त एवं कीर्तनकार महाकवि सूरदास जी को छोड़कर लगभग सभी कवियों की प्रामाणिक जीवनी और उनके काव्य की आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से समीक्षा नहीं हो सकी। अतः 'सूर की टक्कर' के कहे जाने वाले संप्रदाय के 'दूसरे सागर' परमानन्ददास जी की प्रामाणिक जीवनी और उनके काव्य की विस्तृत समीक्षा की आवश्यकता का अनुभव करके

१ विट्ठलेश चरितामृत पृ० ५
२ विट्ठलेश चरितामृत पृ० ७
३ गोकुलनाथ जी के वचनामृत सं० १६९६
४ विट्ठलेश चरितामृत पृ० ४

प्रस्तुत प्रयास किया गया है। आधुनिक समीक्षा पद्धति में प्रामाणिक जीवनी देने की दो पद्धतियाँ है:—

१. अन्तस्साक्ष्य।
२. बाह्यसाक्ष्य।

अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत कवि का काव्य और उसमें की गई आत्म-चर्चा आती है। बाह्यसाक्ष्य के अन्तर्गत अन्य समकालीन महानुभावों की उस कवि के विषय में की गई चर्चा, उल्लेख एवं अन्य कवियों द्वारा लिखे गये ग्रंथ आदि आते हैं। इसी में इतिहास, समकालीन राजकीय प्रमाणों को भी रखा जाता है। अतः उक्त दोनों पद्धतियों की कसौटी पर सभी अष्टछापी महानुभावों का जीवनवृत्त और काव्य कसा जाना चाहिए। क्योंकि इन आठों ही महानुभावों का त्रिविध महत्त्व है:—

१. साम्प्रदायिक महत्त्व।
२. साहित्यिक महत्त्व।
३. कलात्मक महत्त्व।

साम्प्रदायिक महत्त्व की दृष्टि से अष्टछाप के आठों कवि भगवान् श्री गोवर्धननाथ जी के नित्य सखा एवं उनकी नित्य लीला के सहचर हैं और रात्रि में वे ही श्री स्वामिनी जी की सखियाँ हैं। इन सब की इस भावनात्मक महत्ता की चर्चा संप्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वार्ता साहित्य' पर लिखे गए हरिराय जी के टिप्पण 'भाव प्रकाश' में मिलते हैं। 'वार्ता साहित्य' संप्रदाय के विशाल प्रासाद के आधार शिला-खण्ड हैं जिनके आद्य प्रणेता स्वयं आचार्य वल्लभ[1] वक्ता श्री दामोदर दास हरसानी, विकासकर्ता गोस्वामी विट्ठलनाथ जी, प्रचारक गोवर्धन दास;[2] लेखबद्ध करने वाले श्रीकृष्ण भट्ट[3] एवं चौरासी तथा दो सौ बावन की संख्याओं में वर्गीकृत करके उनको वर्तमान विशद रूप में प्रस्तुत करने वाले प्रभु चरण गोस्वामी श्री गोकुल नाथ जी[4] और इन समग्र वार्ताओं पर भावात्मक टिप्पण देने वाले संप्रदाय के एक मात्र मर्मज्ञ प्रभु चरण हरिराय जी हैं। अतः वार्ताओं का महत्त्व सुस्पष्ट है। उनमें अष्टसखाओं की चर्चा बड़े आदर और सम्मान के साथ की गई है। उन्हें श्री गोवर्धननाथजी के नित्य सहचर होने का गौरव प्राप्त है। श्री गिरिराज उनकी नित्य लीला भूमि है। श्री गिरिराज स्वयं श्रीकृष्ण का ही पर्वत रूप है। भागवत[5] एवं गर्ग संहितादि[6] पुराणों में उसकी विशद चर्चा मिलती है। वह पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम का 'आतपत्र'[7] है और समस्त तीर्थमय है। श्री गिरिराज के नित्य निकुञ्ज के आठ द्वारों पर आठ सखा स्थित रहकर भगवान् की नित्य सेवा में तत्पर रहते है। इन सखाओं की चर्चा भागवत में इस प्रकार आई है:—

श्रीदामा नाम गोपालो राम केशवयोः सखा।
सुबलस्तोक कृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णोदमब्रुवन्॥ भाग १०॥ १५

---

१ वार्ता साहित्य मीमांसा ले० श्री परीख जी—पृष्ठ २
२ २५२ वैष्णवन की वार्ता (लीला भावना) पृष्ठ १०५
३ ,, ,, ,, प्रस्तावना पृष्ठ ५१
४ विट्ठलेशचरितामृत
५ भागवत १०। २५। ३५
६ गर्गसंहिता गिरिराज खंड अ० १ श्लो० १२
७ ग० सं० गिरिराज ख० अ० ७ श्लो० १

यहाँ 'स्तोक कृष्णाद्या:' में अन्य सखाओं का भी समावेश है। एक और स्थान पर श्रीकृष्ण इन सखाओं का नाम ले लेकर स्वयं पुकारते हैं।

हे स्तोक कृष्ण ! हे अंशो श्रीदामन् सुबलार्जुन।
विशालर्षभ ! तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ।। आदि। भाग० १०। २२। ३१, ६२

इन दस ग्यारह सखाओं की चर्चा गर्गसंहिता में धेनुकासुर-वध प्रसंग में पृथक्-पृथक रूप में की गई है।

इन मूल सखाओं की भावना को सर्वप्रथम श्री द्वारकेश जी महाराज ने, जो संप्रदाय में बहुत बड़े आचार्य हुए हैं, अष्टछापी महात्माओं पर आरोपित किया तभी से उनका यह छप्पय संप्रदाय में बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है—

सूरदास सो तो कृष्ण, तोक परमानन्द जानो।
कृष्णदास सो ऋषभ, छीत स्वामी सुबल बखानो ।।[1] आदि

द्वारकेश जी के द्वारा इन अष्टसखाओं की महिमा के विस्तार से न केवल उनके व्यक्तित्व को ही गौरव मिलता है, अपितु सम्प्रदाय का भक्त इन महानुभावों के पदों में गीता के स्वाध्याय जैसी शान्ति एवं समाधान प्राप्त करता है। ये सखा आगे चलकर भगवान् के विभिन्न अङ्ग[2], उनके विविध शृङ्गार, के रूप में भी माने गए और इस प्रकार सम्प्रदाय में उनके प्रति विविध भावनाऐं प्रचलित हुईं।

सखाओं को साहित्यिक दृष्टि से भी बहुत बड़ा महत्त्व एवं गौरव प्राप्त है। 'नरगिरा' ब्रज भाषा को भगवत् गुणगान के माध्यम से 'सुरगिरा' के समादरणीय सिंहासन पर समासीन कराने वाले इन महानुभावों ने वर्ण्य की चिंता की; वर्णन की नहीं; वस्तु को देखा, शैली को नहीं। अत; शारदा 'वाग्वश्या भार्या' की भाँति बद्ध कर होकर किंवा 'दारुयोपित्' की भाँति सूत्र बद्ध होकर इनके अँगुलि निर्देश पर नृत्य करती थी और सम्प्रदाय के दो सखा सूर और परमानन्द तो साक्षात् 'लीला सागर' ही थे। जिनकी प्रशंसा स्वयं गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने श्रीमुख से की है और तथ्य यह है कि वात्सल्य एवं शृङ्गार के मुक्तक गेय पदों के क्षेत्र में इनके टक्कर का कोई अन्य कवि नहीं[3] हो सका।

लगभग सभी अष्टछापी महानुभावों के भाव-जगत् की कोमलता, रमणीयता और तन्मयता एक दिव्य लोक की सृष्टि करने वाली होती थी। जिसका आनन्द उनके साहित्य का अनुशीलन करने वाला श्रद्धालु स्वाध्यायी ही जान सकता है।

साहित्यिक महत्त्व के अतिरिक्त अष्टछाप के भक्त कवियों का कलात्मक महत्व भी है। वे सभी उच्चकोटि के कीर्तनकार कलाविद् संगीतज्ञ एवं रसिक शिरोमणि थे। आज का हिन्दी समाज जब अष्टछाप के काव्य वैभव से सुपरिचित भी नहीं हुआ था, उससे पूर्व हमारा संगीतज्ञ समाज उनके पद माधुर्यार्णव में चिरकाल से अवगाहन करता चला आ रहा था। भारतीय संगीत की ध्रुपद एवं धमार शैली जिसे देशी संगीत कहा जाता है के विकास और वृद्धि का श्रेय इन्हीं अष्टसखाओं को है। इन भक्त कवियों ने कीर्तन-संगीत की एक ऐसी विशिष्ट पद्धति को जन्म दिया जो पुष्टि मार्ग की अपनी मर्यादा बन गई।

---

१ ग० सं० वृन्दावन खण्ड—अ० १२ श्लो० १३, १४, १५
२ श्री गोवर्धन नाथ जी की प्राकट्य वार्ता—पृ० ३१
३ अष्टछाप भूमिका लेखक डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

अष्टसखाओं के उपर्युक्त त्रिविध महत्व के प्रतिपादन के उपरान्त यहाँ पर अपने प्रबन्ध के प्रकृत विषय अष्टछापके 'दूसरे सागर' परमानन्द दास जी की चर्चा की जाती है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने इन्हें 'लीला सागर' की उपाधि दी थी अतः इन्हें सूर के समकक्ष माना गया है। खेद की बात है कि सूर और उनके साहित्य के अध्ययन के लिए जितने प्रयास हुए उनसे आधे भी परमानन्द दास जी और उनके साहित्य के लिए नहीं हुए। अतः उनकी विस्तृत प्रामाणिक जीवनी और उनके अधिकाधिक काव्य संग्रह की आवश्यकता बनी हुई है।

कवि का जीवनवृत्त

संतों एवं भक्त कवियों ने 'स्वात्म' को भी 'प्राकृत जन' की परिधि में ही रखा था। अतः आत्म-चर्चा करके उन्होंने कभी भी 'गिरा' को 'सिर धुनने' का अवसर नहीं दिया। फिर 'उष्ण भक्ति'—साधना के पावन यज्ञ-कुण्ड में गाढ़ी त्रिविध एषणाओं की आहुति देकर 'दासोऽहम्' के प्रथम सोपान से 'सोऽहम्' के अन्तिम सोपान की ओर प्रयत्नशील भावुक भक्त कवियों को आत्म-विज्ञापन का अवकाश कहाँ था। अध्यात्म प्रधान भारतीय संस्कृति मे यशोलिप्सा जैसी भौतिक वस्तु का स्थान भी नहीं है। अतः 'विधि भवन' को छोड़कर आने वाली हंसवासिनी वीणा पाणि के श्रम के परिहार के लिए भारतीय भक्तों ने भक्ति-मंदाकिनी को सदैव प्रस्तुत रखा है। कविवर परमानन्ददास जी भी उक्त सिद्धान्त के अपवाद नहीं हैं। कवि ने अपने चरम दैन्य में केवल भक्ति याचना के अतिरिक्त लेशमात्र भी आत्म-चर्चा नही की है। अतः उसके काव्य पर बहुत आँख गड़ाने के बाद ही उनके स्वभाव एवं उनकी आत्म-स्थिति के विषय में कुछ पता चलता है। यों भी कवि का जीवन घटना घटाटोपों से संकुल नही था। अतः आत्म-चर्चा के लिए किसी प्रेरणा विशेष कारण भूता नहीं थी। अतः उसके जीवन-वृत्त के लिए जिज्ञासु को उन्हीं दो प्रकार की सामग्री पर निर्भर रहना पड़ता है।

(१) अन्तस्साक्ष्य—में कवि के पद एवं उसका काव्य आता है। ये पद ही उसकी सत्ता एवं व्यक्तित्व के प्रमाण हैं।

(२) बाह्यस्साक्ष्य—साम्प्रदायिक-साहित्य जिसके अन्तर्गत 'वार्ता साहित्य' एवं सम्प्रदायो के आचार्यो द्वारा की गई चर्चा एवं सम सामयिक उल्लेखादि आते हैं।

कवि के पद अथवा काव्य जो उसकी सत्ता अथवा व्यक्तित्व के प्रमाण स्वरूप है, 'परमानन्द सागर' अथवा 'परमानन्ददास जी कौ पद' कहे जाते हैं। ध्यान में रखने की बात है कि कवि मुख्य रूप से कीर्तनकार था, अतः एक कीर्तनिये की भाँति उसका परिग्रह केवल एक तानपूरा ही था, लेखनी मसिपात्रादि नहीं। अतः श्रुति परम्परा से भगवन्मन्दिरों में गाए जाने वाले पद जो 'परमानन्द सागर' के नाम से उसके भक्त एवं अन्य स प्रदायी भक्तों ने लिपि बद्ध कर लिये वही उसकी साक्षी देने वाले हैं। उसके पदों के संग्रह को 'परमानन्द सागर' नाम देने वाले भी सम्प्रदाय के भक्त ही हैं। वह स्वयं नहीं। क्योंकि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उसे 'लीला सागर' पुकारा था। अतः उसकी रचना 'परमानन्द सागर' के नाम से अभिहित की गई, और यही उसकी प्रामाणिक रचना सिद्ध होती है। उसके आधार पर परमानन्ददास जी के जीवन के कतिपय तथ्य इस प्रकार उपलब्ध होते हैं:—

१—प्रारम्भ में वे एक जिज्ञासु भक्त थे।[1]

---

१ माई को मिलिबै नन्द किसोरै।
एक बार को नैन दिखावै मेरे मन के चोरै ॥१॥

२—वे महाप्रभु वल्लभ की शरण में आये और आचार्य तथा ठाकुर जी में अभेद बुद्धि रखते थे।[1]

३—माता पिता से उन्हें मोह नहीं था।[2]

४—उनकी आर्थिक स्थिति प्रारम्भ में अच्छी नहीं थी। बाद में उन्हें आर्थिक सौकर्य हो गया था।[3]

५—व्रज के प्रति उन्हें अपार प्रेम था।[4]

६—उनका व्यक्तित्व शील सम्पन्न, सुन्दर, बलिष्ठ एवं आकर्षक था।[5]

जागत जाम गिनत नहिं खूटत क्यों पाऊँगी भोरै।
सुनिरी सखी अब कैसे जीजैं सुनि तमचुर खग रोरै॥२॥
जो पै सत्य प्रीति अन्तरगति जिनि काहुऽबनिहोरै।
'परमानन्द' प्रभु आन मिलेंगे सखी सीस जिनि फोरै॥३॥ प० सं० ५४३

१ श्री बल्लभ रतन जतन करि पायो।
बह्यौ जात मोहि राखि लियो है पिय संग हाथ गहायो॥
दुःसंग संग सब दूरि किये हैं, चरनन सीस नवायो॥
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर, नैनन प्रगट दिखायो॥ प० सं० ८५२

प्रात समै रसना रस पीजै।

× × ×

परमानन्ददास को ठाकुर जे बल्लभ ते सुन्दर स्याम॥ प० सं० ५७२

२ तुम तजि कौन सनेही कीजे।

× × ×

यह न होई अपनी जननी तें पिता करत नहीं ऐसी
बन्धु सहोदर सोउ न करत हैं मदन गोपाल करत हैं जैसी॥

३ जाके दिये बहोरि नहिं जाँचै दुख दरिद्र नहिं जानै॥ प० सं० ८५६

तथा

ताहि निहाल करै परमानन्द नैकु मौज जो आवै॥

४ जाइए वह देस जहँ नन्द नन्दन भैटिए। प० सं० ८४६

तथा

यह माँगौ गोपीजन बल्लभ।
मानुष जन्म और हरि की सेवा व्रज बसिवौ दीजै मोहि सुल्लभ॥

५ व्रज बसि बोल सबन के सहिए।
जो कोऊ भली बुरी कहै लाखै, नन्द नंदन रस लहिए॥ प० सं० ८३५

तथा

लगै जो सौ वृन्दावन रंग
देह अभिमान सबै मिटि जैहै, अरु विषयन को संग। प० सं० ८३७

तथा

बाढ्यौ है माई माधौ सौं सनेहरा
अब तौ जिय ऐसी बनि आई कियौ ममपन नेहरा प० सं० ५६८
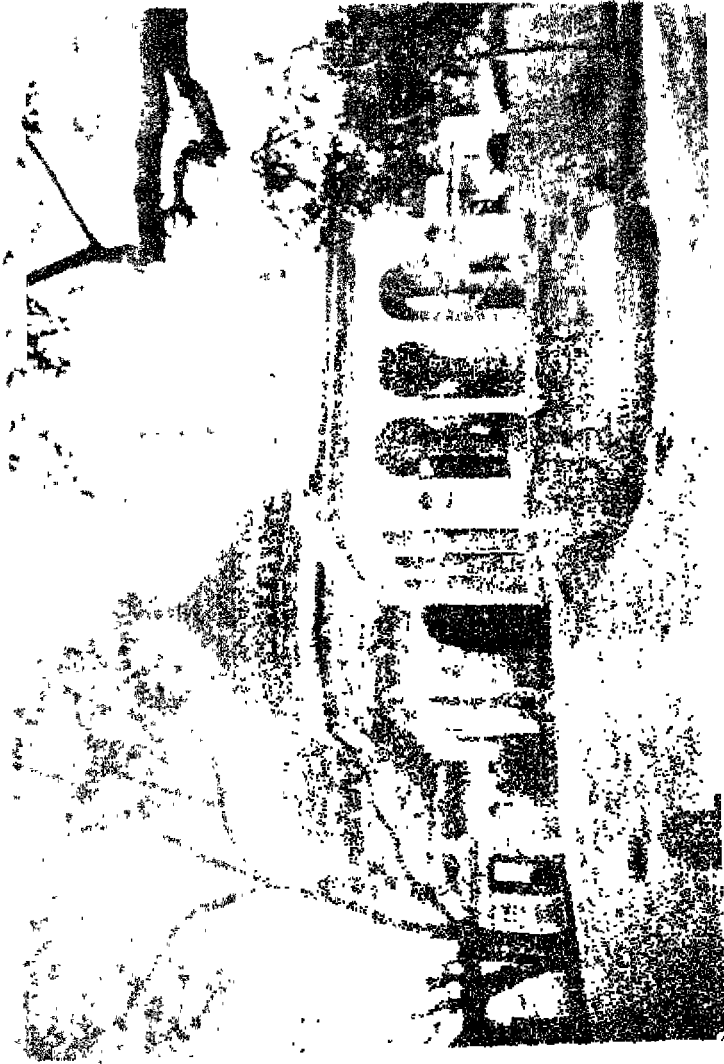
भारद्वाज आश्रम का वह भाग जहाँ भक्त कवि परमानंददास जी पुष्टिमार्गीय दीक्षा से पूर्व कीर्तन
[illegible]

७—भगवान की बाल, पौगण्ड और किशोर लीला में उनकी चरम आसक्ति थी।[1]

८—वे आचार्य के नित्य लीला प्रवेश के उपरान्त तक उपस्थित थे, और उन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के उपस्थिति में अपनी इह लीला संवरण की।[2]

९—उनकी भक्ति का आदर्श 'गोपी भाव' था।[3]

पदों के अन्तस्साक्ष्य के आधार पर जीवनी सम्बन्धी उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त और कुछ भी उपलब्ध नहीं होता।

वाह्यसाक्ष्य के अन्तर्गत निम्नांकित सम्प्रदाय एवं सम्प्रदायेतर ग्रन्थों का समावेश किया जाता है। जिनसे परमानन्ददास जी के जीवन-वृत्त के विषय में कतिपय तथ्य उपलब्ध होते हैं। वे ग्रंथ हैं—

१—चौरासी वैष्णवन की वार्ता।

२—भाव प्रकाश।

३—संस्कृत वार्ता मणिमाला।

४—अष्टसखामृत।

५—वल्लभ दिग्विजय।

---

१ सुन्दर आउ नन्दजू के छगन मगनियाँ।
बाल— × × ×
लाल गोपाल लाड़िले मेरे सोहत चरन पैंजनियाँ।
परमानन्ददास के प्रभू की, यह छबि कहत न बनियाँ॥ प० सं० ६६
तथा
पौगंड—लाल कौं भावै गुड़ गाँड़े अरु बेर।
और भावै याहि सेंद कचरिया लाओ बबा बन हेर॥
और भावै याहि गैय्यन को बसिबो संग सखा सब टेर।
परमानन्ददास कौ ठाकुर, पिल्ला लायौ बेर॥ प० सं० १०३
किशोर—
कुञ्ज भवन में पौढ़े दोऊ।
× × ×
रस में मातै रसिक मुकुट मनि 'परमानन्द' सिंध द्वारे होऊ॥ प० सं० ६९४

२ प्रात समै उठ करिये श्री लछमन सुत गान।
× × ×
सी घनस्याम पूरनकाम, पोथी में ध्यान।
पाण्डुरंग विट्ठलेस, करत बेद गान।
परमानन्द निरख लीला थके सुर बिमान। प० सं० ५७१

३ गोपी प्रेम की धुजा।
तथा
हरि सौं एक रस प्रीति रहीरी।
तन मन प्रान समर्पन कीनों अपनौ नेम ब्रत लै निबहीरी॥ प० सं० ४२१
तथा
कौन रस गोपिन लीनौं घूंट। प० सं० ७२२

६—बैठक चरित्र ।

७—प्राकट्य सिद्धान्त ।

८—वैष्णवाह्निक पद ।

९—श्री गोकुलनाथ जी कृत स्फुट वचनामृत ।

१०—श्री द्वारकेश जी कृत चौरासी बोल ।

११—अन्य साम्प्रदायिक भक्त जैसे कृष्ण दास आदि की उक्तियां (जैसे वसन्तोत्सव वाला पद) ।

उपर्युक्त साम्प्रदायिक सामग्री के अतिरिक्त निम्नांकित धार्मिक ग्रंथ और हैं जिनमें परमानन्ददास जी की चर्चा भर मिलती है—

१—भक्तमाल, नाभादास जी कृत ।

२—भक्त नामावली—ध्रुवदास ।

३—नागर समुच्चय—नागरीदास ।

४—पद प्रसंग माला ,,

५—व्यास वाणी—व्यास हरिराम जी ।

६—भक्तनामावली—भगवत रसिक ।

निम्नांकित वे आधुनिक पुस्तकें है जिन्हें इतिहास और समालोचना के अन्तर्गत रखा जाता है और जिनमें परमानन्ददास जी की चर्चा मिल जाती है ।

१—खोज-रिपोर्ट (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)

२—इस्त्वाददैला लितेरात्यूर ऐन्दुवे एन्दुस्तानी (गार्साँदतासी)

३—शिवसिंह सरोज (शिवसिंह सेंगर)

४—मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान (सर जार्ज ग्रियर्सन)

५—मिश्रबंधु विनोद (मिश्रबंधु)

६—हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल)

७—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डॉ० रामकुमार वर्मा)

८—हिन्दी साहित्य (डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी)

उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त अष्टछाप सम्बन्धी निम्मांकित ग्रंथों में परमानन्ददास जी की चर्चा की गई है—

१—अष्ट छाप (डॉ० धीरेन्द्र वर्मा)

२—अष्टसखान की वार्ता (श्री द्वारिकादास परीख)

३—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (डॉ० दीनदयालु गुप्त)

४—अष्टछाप परिचय (श्री द्वारकादास परीख एवं प्रभुदयाल मीतल)

इनके अतिरिक्त 'वल्लभीय सुधा', तथा 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ' एवं 'सत्संगादि' पत्र-पत्रिकाओं में उनकी थोड़ी बहुत चर्चा मिली है। इन साहित्यिक सूत्रों के अतिरिक्त कविवर परमानन्ददास जी का कहीं भी कैसा भी कुछ भी पता नहीं चलता। वे थे भी तो 'गोपी-भाव' के पोषक एकान्त कवि। प्रभु गुणगान के द्वारा आत्मकल्याण और लोककल्याण ही उन्हें अभीष्ट था। कबीर या तुलसी की भाँति वे सीधे लोक कल्याण भावना को महत्व देने वाले नहीं थे जिससे वे जन जन के कवि हो सकते नहीं वे केशव बिहारी अथवा भूषण की भाँति किसी

अड़ैल (प्रयाग) की महाप्रभु जी की बैठक का भीतरी भाग जो कवि का दीक्षा स्थान है।
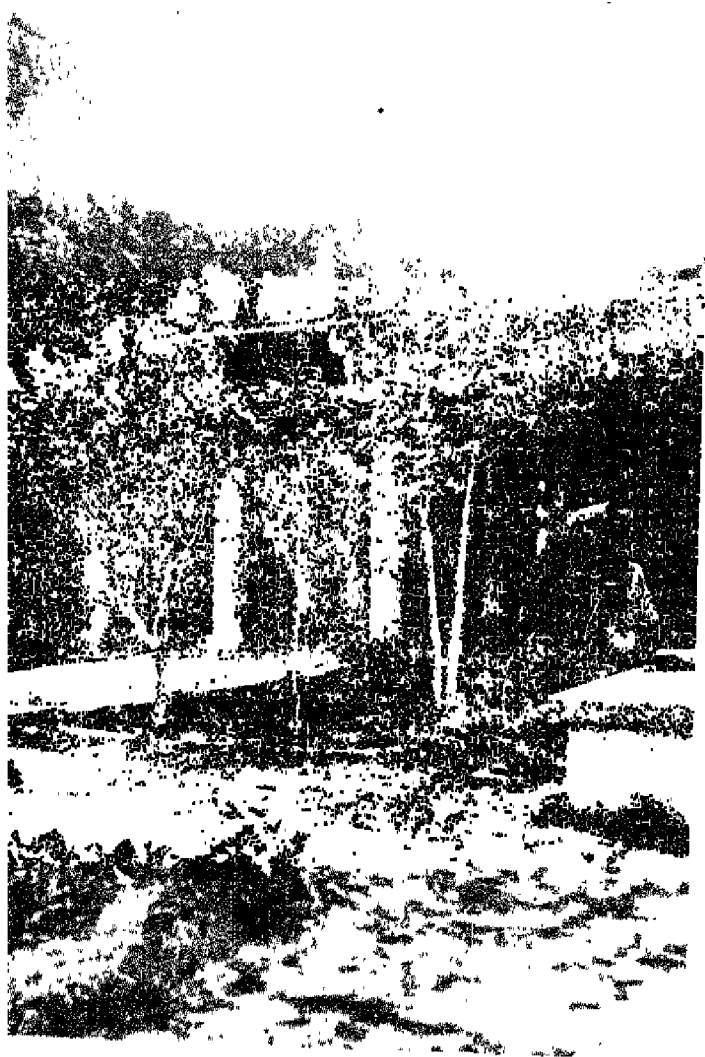
लता वृक्षादिक से आच्छादित महाप्रभु जी की बैठक का बाह्य भाग
जो प्रकृति के सौंदर्य से भरपूर है।

के राज्याश्रित कवि किंकर थे, जिससे कोई समसामयिक साहित्यकार या इतिहासकार उनका परिचय दे सकता। वे सीधे सादे भक्त, कवि एवं कीर्तनकार थे, जिन्होंने अपना सर्वस्व गुरु और गोविन्द को समर्पित कर दिया था। 'श्री वल्लभ रतन' उन्होंने बड़े जतन से पाया था। और उन्हीं के माध्यम से श्री गोवर्धननाथ जी के पावन चरणों में अपने जीवन का विनियोग कर चुके थे। अतः आजीवन विविध भावनाओं एवं अनेक आसक्तियों द्वारा रसमत्त होकर श्रीनाथ जी के सिंहद्वार पर पड़े रहना ही उन्हें पसन्द था।[1]

उपर्युक्त ग्रंथों के आधार पर उनकी जीवनी की प्रमाणिक रूप रेखा इस प्रकार निर्णीत हो पाती है—

(१) जाति—परमानन्द दास जी एक कुलीन, अकिंचन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उन्होंने स्वयं जाति का उल्लेख नहीं किया, परन्तु वे महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण में आने से पूर्व सेवक बनाते थे, और यह अधिकार तपस्वी कुलीन ब्राह्मणों को ही होता है।[2]

(२) नाम—वे 'परमानन्द' 'परमानन्द स्वामी', परमानन्ददास' आदि नामों से प्रसिद्ध थे। उनके काव्य में सर्वत्र यही नाम मिलता है।[3]

(३) स्थान—उनका स्थान कन्नौज था।[4]

(४) माता पिता—उनके माता पिता के नाम का पता नहीं चलता। कवि ने उनकी चर्चा भी कहीं नहीं की। पिता द्रव्यार्थी थे अतः कवि के आध्यात्मिक स्वभाव से उनकी प्रवृत्तियाँ मेल नहीं खाती थीं।

---

१ कुंज भवन में पौढ़े दोऊ।

× × ×

रस में माते रसिक मुकुट मणि 'परमानन्द' सिंघ द्वारे होऊ।

२ "सो ये कन्नोज में कनौजिया ब्राह्मण के यहाँ जन्मे। × × ×

सो कन्नौज में परमानन्ददास जी बहोत ही प्रसन्न बालपने तें रहते। पाछे ये बड़े योग्य भए और कवीश्वर हू भए। वे अनेक पद बनायके गावते। सो स्वामी कहावते और सेवक हू करते।"

चौ० वै० वार्ता पृ० ७८६

३ "तासों यह पुत्र बड़ो भाग्यवान है। जाके जनमत ही मोकों परम आनन्द भयो है। सो मैं या पुत्र को नाम परमानन्ददास ही धरूँगो। पाछे जन्म नाम करन लागे तब वा ब्राह्मण ने कही जो नाम तो मैं पहले ही पुत्र को 'परमानन्द' बिचारि चुक्यौ हौं। तब सब ब्राह्मण बोले जो तुमने विचार्यौ है सोई नाम जन्म पत्रिका में आयो है।"

चौ० वै० वार्ता पृष्ठ ७८६

४ सो ये कनौजिया ब्राह्मण के यहाँ जन्मे।

वार्ता पृष्ठ ७८८

५ तब परमानन्ददास ने माता पिता सौं कह्यौ जो मेरे तो ब्याह करनौ नाहीं, और तुमने इतनो द्रव्य भेलो करिके कहा पुरुषारथ कियो ? सगरो द्रव्य यों ही गयो। × × ×

तासों मैं तौ द्रव्य को संग्रह कबहूँ नाहीं करूँगो और तुम खायवे लायक मोसौं नित्य अन्न लेऊ। × × × तासौं अब तो धन को मोह छोड़ो.............।

वा० पृष्ठ ७९०

(५) जन्मकाल—वे सम्प्रदाय की मान्यता के आधार पर महाप्रभु से १५ वर्ष छोटे थे, अतः उनका जन्म सम्वत् १५५० माना गया है।[1]

(६) शैशव—उनके जन्म के अवसर पर पिता को द्रव्य लाभ हुआ था इसी से उनका नाम 'परमानन्द' रक्खा गया था, अतः उनका शैशव अवश्य चैन से बीता होगा।[2]

(७) शिक्षा दीक्षा—वे विद्वान् थे, सुन्दर कविता करते थे। भावप्रकाश का 'योग्य' शब्द उनकी उच्च योग्यता का परिचायक है। काव्य-रचना-नैपुण्य और उच्च संगीतज्ञता का प्रमाण उनके काव्य तथा कीर्तन से मिल जाता है। उनके अनेक पद सूर तथा तुलसी के टक्कर के हैं।[3]

---

१ संप्रदाय में यह प्रसिद्ध है कि परमानन्ददास जी महाप्रभु वल्लभाचार्य से १५ वर्ष छोटे थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का प्रादुर्भाव संवत् १५३५ बैशाख कृष्ण एकादशी को हुआ था अतः परमानन्ददास जी का जन्म सम्वत् १५५० ठहरता है। उनका जन्म मास मार्ग शीर्ष शुक्ल पक्ष एवं तिथि सप्तमी मानी गई है। यही मास और तिथि श्री गुसाईं विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ जी की है। संप्रदाय में गोस्वामी गोकुलनाथ जी की जन्म तिथि बड़ी श्रद्धा और पूज्य भाव से मनाई जाती है। उसी दिन परमानन्ददासजी को भी बड़े प्रेम भाव से स्मरण किया जाता है। सम्प्रदाय परमानन्ददास जी को भगवान् गोवर्द्धननाथ जी के अष्ट सखाओं में तो मानता ही है। अतः उक्त दोनों ही पुण्यश्लोकों की जन्म तिथियाँ एक होने से उसे मानने और स्मरण रखने में बड़ी सुविधा हो गई। इन तिथियों की खोज करने में विद्या विभाग काँकरौली ने बड़ी सावधानी और सतर्कता से काम लिया है।

उक्त मत इससे भी पुष्ट होते हैं कि जब परमानन्ददास जी महाप्रभु से अड़ैल (प्रयाग) में दीक्षित हुए तब वे युवक अथवा वयस्क होंगे क्योंकि वे संगीत में प्रवीणता प्राप्त कर चुके थे और उनकी विवाह योग्य अवस्था आ चुकी थी। जिसे वे टालकर घर से चले आए थे। 'यदुनाथ दिग्विजय' में आचार्य से उनकी भेंट सम्वत् १५७७ में बतलाई गई है (गो० यदुनाथ कृत वल्लभ दिग्विजय पृ० ५३)

अतः सम्वत् १५५० को उनका जन्म संवत् मान लिया जाय तो इस समय वे २७ वर्ष के सिद्ध होते हैं। यह समय विवाह, गुरु दीक्षा एवम् काव्य रचना सभी के लिए उपयुक्त एवं उचित ठहरता है। फिर इस काल मे आचार्य जी का निवास अड़ैल (अलर्कपुर) में सिद्ध भी हो जाता है। यहीं परमानंददास जी की भेंट महाप्रभु से हुई थी। अतः उनका जन्म संवत् १५५० के आस पास मानना समीचीन है।

हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी इतिहास ग्रन्थों में उनका समय सम्वत् १६०६ या १६०७ दिया गया है। यह समय उनके उपस्थिति काल का है न कि जन्म का। इस समय में वे ब्रज में स्थायी रूप से रह भी रहे थे। परन्तु इन संवतों को उनके जन्म संवत् कथमपि नहीं माने जा सकते क्योंकि महाप्रभु वल्लभाचार्य का तिरोधान संवत् सवत् १५८७ में ही हो गया था अतः वे अपने तिरोधान के २० वर्ष के बाद किसी शिष्य को दीक्षा दें ये नितान्त उपहासास्पद है।

२ वार्ता पृ० ७८६

३ "पाछें ये बड़े योग्य भये और कवीश्वर हू भए। वे अनेक पद बनाय के गावते। सो 'स्वामी' कहावते और सेवकहू करते। सो परमानन्ददास के साथ समाज बहोत, अनेक गुनी जन संग रहते।"

भावप्रकाश पृ० ७८६

(८) गृह त्याग— शैशव मे ही वे आध्यात्मिक विचारो के थे; एक बार मकर पर्व पर प्रयाग गये और वहाँ अड़ैल में महाप्रभु वल्लभ से भेंट हो जाने पर उनके दासानुदास हो गए। फिर घर लौट कर गृहस्थ नहीं बने और ब्रजवास के लिए चल दिये।[1]

(९) गुरु सम्बन्धी उल्लेख— उन्होंने अपने पदों में अपने गुरु वल्लभाचार्य का अनेक स्थलों पर श्रद्धा सहित स्मरण किया है।[2]

(१०) संप्रदाय में दीक्षा—मकर संक्रान्ति पर्व पर जब वे प्रयाग गये तब वहाँ उन्हे 'कपूरक्षत्री' द्वारा आचार्य वल्लभ से भेंट करने का अवसर मिला और तभी वे उनके शिष्य बन गये।[3]

इस प्रकार उन्होंने सदैव उनके साथ रहकर भगवान् की कीर्तन सेवा की। उनके सम्प्रदाय प्रवेश की तिथि संवत् १५७७ ही ठहरती है।

(११) विवाह—भक्तवर परमानन्ददासजी आजन्म कामिनी कांचन से दूर रहे।[4]

(१२) ब्रज के लिए प्रस्थान—अड़ैल में कुछ काल रहकर वे कन्नौज होते हुए महाप्रभु जी के साथ ब्रज में पधारे वहाँ गोकुल होते हुए गिरिराज पर आए। वहाँ श्री गोवर्धननाथजी के दर्शन कर वे सदैव के लिए उन्ही के चरणों में बस गए। सुरभि कुण्ड उनका नित्य स्थायी निवास था।[5]

(१३) संवत् १६०२ में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप में उनकी स्थापना की। और वे "लीला सागर" हुए। उन्होंने सहस्रावधि पद बनाये।[6]

(१४) गोलोक वास—संवत् १६४१ में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की विद्यमानता में उनका नित्य लीला-प्रवेश हुआ। वे सूर, कुम्भनदास, रामदास, कृष्णदासादि के समकालीन थे। उन्होंने जन्माष्टमी के दूसरे दिन नवमी को "दधिकाँदौ" के महोत्सव के उपरान्त अपने पाञ्च भौतिक देह का विसर्जन किया।[7]

(१५) उनका व्यक्तित्व एवं स्वभाव—उनका व्यक्तित्व अत्यन्त भावुक, गम्भीर, सत्यनिष्ठ एवं त्यागमय था। उन्हें गर्व छू तक नहीं गया था। भगवद् विश्वास, लोकैषणा का त्याग, ब्रज-प्रेम, वैष्णवों में श्रद्धा आदि उनके अपने गुण थे। काव्य रचना में उनकी छाप 'सारंग' थी। सत्संग से उन्हें प्रेम था। "गोपी भाव" उनकी भक्ति का आदर्श था।[8]

---

१ (अ) इन तजि चित कहूँ अनत न लाऊँ। प० सागर
(ब) चलिरी सखि नंदगाम जाइ बसिए, ,,
(स) जेहों तहाँ जहाँ नंद नंदन राज करौ यह गेहरा। ,,

२ स्री वल्लभ रतन जतन करि पायौ। ,, पद सं० ८५२

३ श्री वल्लभ कुल कौ हौं चेरो वैष्णव जन कौ दास कहाऊँ। ,,

४ "मेरे तौ ब्याह करनो नाहीं है" वार्ता भावप्रकाश पृ० ७६०

५ परमानन्द सागर तथा वार्ता पृ० ८३३

६ "या प्रकार सहस्रावधि कीर्तन परमानन्ददास ने किए" वार्ता भावप्रकाश पृ० ८२४

७ भाव प्रकाश पृ० ८३३।

८ 'नंदकोलाल सदा वर माँगौ,
गोपिन की दासी मोहि कीजै। प० सा० पद सं० ७५६

परमानन्ददास जी की जीवनी के उपर्युक्त तथ्य वार्ता साहित्य के अतिरिक्त अन्य स० ग्रन्थों में बिना किसी फेर फार अथवा परिवर्तन के उपलब्ध हो जाते हैं। इससे सिद्ध होता कि अधिकांश ग्रन्थ एवं अध्ययन के सूत्र वार्ता पर ही आधारित हैं।

परमानन्ददास की रचनाएँ

वे भक्त, गायक और कवि थे। दीक्षा से पूर्व वे भगवद् विरहपरक पद बनाकर गा० थे। महाप्रभु वल्लभ की शरण में आने के उपरान्त उन्होंने भागवत के दशम स्कंध की लीला को स्वरचित पदों में निबद्ध करके कीर्तन गान आरंभ किया था। उनके अधिकांश प० सुबोधिनी पर आधारित हैं। निम्नांकित ग्रन्थ उनके कहे जाते हैं। परन्तु वे प्रामाणिकता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

१—दान लीला
२—उद्धव लीला
३—ध्रुव चरित्र
४—संस्कृत रत्नमाला
५—दधि लीला
६—परमानन्ददास जी को पद
७—परमानन्द सागर

उपर्युक्त ग्रन्थों में पहले ५ ग्रन्थ अप्रमाणिक एवं अनुपलब्ध हैं। छठा ग्रन्थ सातवें का ही अंगमात्र है। "परमानन्द सागर" जो उनके भक्तों द्वारा उनके पदों के लिए दिया हुआ नाम है, उनकी प्रमाणिक रचना ठहरती है। इसी की ५ प्रतियाँ श्रीनाथद्वार के तिलकायित महाराज श्री के निज पुस्तकालय में तथा २ प्रतियाँ सम्प्रदाय के विद्वान् एवं मर्मज्ञ श्री द्वारकादास जी परीख के पास हैं। पाँच प्रतियाँ विद्या विभाग काँकरौली में सुरक्षित हैं। विद्या विभाग काँकरौली की एक प्रति में[1] सर्वाधिक पद हैं। उसकी पद संख्या ११२१ है। शेष प्रतियाँ एक दूसरे की प्रतिलिपि ही जान पड़ती हैं। प्राचीनतम प्रति का संवत् १७५४ मिलता है। इस काल में प्रभु चरण हरिराय जी उपस्थित थे।*

दीर्घकाल तक कवि का काव्य मौखिक कीर्तन-परम्परा की सीमा में ही आबद्ध रहा। खोज रिपोर्टों अथवा इतिहास ग्रंथों में कवि के जिन अन्य ग्रंथों की चर्चा अथवा उल्लेख है उनकी चर्चा गड्डलिकान्यायेन सभी लेखक महानुभावों ने कर दी है, वास्तव में वे कवि द्वारा लिखित नहीं। दतियाराजपुस्तकालय में अथवा अन्यत्र कवि का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। लेखक ने स्वयं दतिया जाकर दतिया राजपुस्तकालय में परमानंद सागर की खोज की है किन्तु कहीं कुछ नहीं मिला। 'परमानन्द सागर' में कवि ने मुख्यतः दशमस्कंध की कृष्ण लीला का ही गान किया है। उसमें भी कवि दशमस्कंध के पूर्वार्ध तक ही सीमित रहा है। लगभग ६५ विषयों पर कवि के ११०० से ऊपर पद कहे जाते हैं।

उपर्युक्त १४ हस्तलिखित प्रतियाँ जो उपलब्ध हैं उनका विवरण इस प्रकार है—

१—परमानन्द सागर [काँकरौली]

प्रथम प्रति

बंध संख्या ४५ पु० १। इसका नाम 'परमानन्ददास जी के कीर्तन' है। इसका साइज ८×६ इंच है। इसकी अन्तिम पुष्पिका नहीं मिलती। अतः पुस्तक अपूर्ण है।

---

१ तृतीय प्रति बन्ध ५७ पु० ३।

* यह प्रति श्री द्वारकादास जी परीख के पास सुरक्षित है। लेखक का प्रस्तुत पद-संग्रह लगभग इसी के आधार पर है सम्पादक

संवत् १७५४ वाली प्रति जो लेखक को श्री परीख जी से प्राप्त हुई।

१७५४ वाली प्रति का ऊपरी पृष्ठ

इसमें विषय क्रम से पद लिखे गये हैं विषय क्रम के अतिरिक्त परमानन्ददास जी के और भी पद इसमें हैं। इस पुस्तक के पदों की गणना करने पर लगभग ८५० पद होते हैं।

पुस्तक की लेखन शैली—इस पुस्तक के प्रारम्भ में ७८ पृष्ठ ग्रन्थ के पदों की प्रतीक पृष्ठ संख्या देकर लिखी गई है। लिपि सुवाच्य, सुन्दर, शुद्ध एवं प्राचीन है। रागों तथा विषयों के नाम लाल गेरू से दिए हैं। ग्रन्थ में प्रत्येक नवीन विषय का प्रारम्भ अलग नए पत्र से हुआ है। पृष्ठ १ से लेकर ११४ तक पद हैं। पदों का संकलन विषय क्रम से हुआ है।

लेखन समय—इस हस्तलिखित ग्रन्थ में "श्री गिरिधर लालो विजयतु" लिखा है। ये गिरिधरलाल जी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रथम पुत्र हैं। इनका समय सं० १५९७-१६०८ तक माना जाता है। श्री गुसाईं जी के आचार्य पद पर रहते हुए गोस्वामी गिरिधर लाल जी का प्राधान्य नहीं हो सकता। वे अपने पिता के उपरान्त ही संवत् १६४२ में आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए होंगे। अतः उनके आचार्यत्व का काल १६४२ से १६८० तक का हुआ। इन्हीं ३८ वर्षों के भीतर इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि हुई समझनी चाहिए।

द्वितीय प्रति

बंध सं० ५७ पु० ४ इसका नाम 'परमानन्द सागर' है। इसका साइज १०×७ इंच है। यह ग्रंथ ६ वें पत्र से प्रारम्भ होकर १५३ तक लिखा गया है।

लेखन शैली—'श्री गोपीजनवल्लभायनमः' से प्रारम्भ होकर राम जयन्ती तक के पद उपलब्ध होते हैं। अन्य जयन्तियों के पद नहीं। अतः पुस्तक अपूर्ण प्रतीत होती है।

लेखन समय—इसका लेखन काल प्रथम प्रति के लिपि साम्य के कारण सं० १६४२ से १६८० तक का ही स्थिर होता है। पुस्तक की दशा अच्छी नहीं। अन्तिम पुष्पिका भी नहीं मिलती, न लेखक का नाम ही मिलता है।

तृतीय प्रति

यह प्रति जैसा कि इसकी अन्तिम पुष्पिका से विदित होता है, किसी वैष्णव हरिदास की थी। अब यह बंध २७ में तृतीय नं० की पुस्तक है। आकार १०×८ इंच है। पत्र सं० १ से १५४ तक है। पुस्तक का आरम्भ—"४ चरण कमल बन्दौं जगदीस के जे गोधन संग धाए।" वाले मंगलाचरण से होता है। पुस्तक 'मथुरेशपुस्तकालय' की थी। इसमें समाप्ति के अनन्तर पत्र संख्या १५२ से १७२ तक परमानन्द दास जी के और भी पद लिखे हैं। जिनकी संख्या २० होती है और इस प्रकार कुल मिलाने से संख्या ११२१ हो जाती है। इतनी विशाल संख्या अन्य किसी प्रति में नहीं मिलती। लिपि सुवाच्य, सुन्दर शुद्ध और आद्योपान्त एक सी है। राग तथा विषय के नाम लाल स्याही से लिखे गए हैं।

लेखन समय—इस प्रति में स्पष्ट लिखा है गोस्वामी "श्री व्रजनाथात्मज गोकुलनाथस्येदं पुस्तकम्" ये हस्ताक्षर गोस्वामी श्री व्रजनाथ जी के पुत्र गोकुलनाथ जी के हैं। ये गोकुलनाथ जी श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के तृतीय पुत्र बालकृष्ण जी के वंशज एवं काँकरौली निवासी थे। इनका समय सं० १८८१ से १८५६ तक का है। अतः निश्चय है कि यह पुस्तक सं० १८५६ से पहले की लिखी हुई है। अनुमान से इस प्रति का सं० १८४० से १८५० तक होना चाहिए।

चतुर्थ प्रति

इसका नाम 'परमानन्ददास जी के कीर्तन' है। आकार ८॥।×६ इन्च है। इसमें अष्टछापी अन्य कवियों के कीर्तन लिखे हुए हैं। पत्र सं० १ से १७९ तक है। पद संख्या

विषय क्रम से है; अतः गणना से कुल पद ७४१ होते है। मंगलाचरण के ३, भगवल्लीला के ७२८ और फुटकर १० पद हैं। लिपि सुन्दर सुवाच्य और शुद्ध है। अन्तिम पुष्पिका नहीं। इससे विदित होता है कि पुस्तक अपूर्ण है, लेखन काल और लेखक का पता भी नहीं चलता।

पंचम प्रति

इसका नाम 'परमानन्ददास जी के कीर्तन' है। आकार ४×६ बंध सं० १६ में यह छठी पुस्तक है। पुस्तक गुटका साइज में है। लगभग ३१४ पत्र हैं। इसमें भी पुष्पिका न होने से लेखक तथा लेखनकाल का पता नहीं चलता। अक्षर सुन्दर और सुवाच्य हैं।

इनके अतिरिक्त दो प्रतियाँ और हैं। जिनमें क्रम से ८०० तथा २०० पद हैं। ये प्रतियाँ १००-१२५ वर्ष पुरानी प्रतीत होती हैं। प्रमाणिकता की दृष्टि से ये अधिक महत्व नहीं रखतीं।

नाथद्वार के महाराज श्री के निज पुस्तकालय में चार हस्तलिखित प्रतियाँ और हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

प्रथम प्रति

बंध ११, पुस्तक सं० १ परमानन्ददास जी के कीर्तन। इसमें १००० पद है। यह प्रति सं० १८७३ की लिखी हुई हैं।

द्वितीय प्रति

बंध १४ पु० ६ परमानन्द सागर। इसमें ८८३ पद है। प्रारम्भ में 'चरन कमल बन्दों जगदीश के जे गोधन संग धाये।' वाला मंगलाचरण है। यह प्रति लगभग १५० वर्ष पुरानी होगी। इसमें पद सं० लगभग १००० के है। यह कांकरौली विद्या विभाग में संगृहीत तृतीय प्रति के टक्कर की है। इसमें लगभग ६५ विषय दिये हुये हैं। विद्याविभाग की तीसरी प्रति और यह प्रति सम्भवतः किसी एक मूल प्रति की दो प्रतिलिपियाँ हैं। अतः बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

तृतीय प्रति

बंध १४ पुस्तक २—परमानन्द सागर—इसमें ५०० पद संगृहीत है। लेखक तथा लेखन काल उपलब्ध नहीं।

चतुर्थ प्रति

बंध १४ पुस्तक ३—परमानन्ददास जी के कीर्तन— इसमें लगभग ८०० पद हैं। पदों का संकलन विषय वार है। इसका लेखन काल अनुमानतः १८ वीं शती विदित होता है।

पंचम प्रति

बंध १४ पुस्तक ४—परमानन्ददास जी के कीर्तन—इसमें भी लगभग १००० पद हैं। पद विषय क्रम से हैं। लेखन काल का पता नहीं चलता।

श्रीनाथद्वार एवं कांकरौली की उपर्युक्त १२ प्रतियों के अतिरिक्त ३ प्रतियों की चर्चा और है वे क्रम से श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी मथुरा, श्री जमुनादास जी कीर्तनियाँ एवं जयपुर वाले श्री रामचन्द्र, इन तीन महानुभावों के पास बतलाई जाती हैं। इनमें चतुर्वेदी जी वाली प्रति तो किसी राधा बाई बाँसतल्ला कलकत्ता की बतलाई जाती है। यह प्रति संग्रहात्मक होनी चाहिये। अन्य दो प्रतियों का पता नहीं चलता। इनकी चर्चा भर है।

परमानन्दसागर की दो और प्रतियाँ जो लेखक को उपलब्ध हुई हैं वे सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान् श्री द्वारकादास परीख के अधिकार में हैं। प्रामाणिकता की दृष्टि से उनमें से एक प्रति तो विद्या विभाग की प्रथम दो प्रतियों के उपरान्त रखी जानी चाहिये इसका संवत् १७५४

श्री परीख जी की दूसरी प्रति जो लिखावट से प्रथम प्रति के आसपास की विदित होती है ?

स्पष्ट दिया हुआ है। और दूसरा वर्षा के कारण जीर्ण शीर्ण हो गई है, परन्तु पद संख्या की दृष्टि से इसका बड़ा महत्व है। इसमें ८०० से ऊपर पद हैं। लेखक ने इन दोनो प्रतियों का विस्तृत विवरण अपने शोध ग्रन्थ में मय फोटो के दिया है।*

इस प्रकार परमानन्द सागर की १२ प्रतियाँ देखने में, तथा तीन प्रतियाँ सुनने में आई। हस्तलिखित प्रतियों के देखने से हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

१—सभी प्रतियाँ प्रतिलिपियाँ हैं। परमानन्ददास जी का कोई स्वहस्तलिखित ग्रंथ उपलब्ध नहीं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कवि एक भक्त कीर्तनिया था अतः उसे मसि पात्र एवं लेखनी के स्पर्श के लिए न अवकाश ही था न आवश्यकता।

२—प्रायः सभी प्रतियों में पद विषय क्रमानुसार हैं।

३—कवि का अपना 'सागर' सूर के 'सागर' की भाँति स्कंधात्मक पद्धति पर उपलब्ध नहीं।

४—कवि मुख्य रूप से दशमस्कंध पर ही केन्द्रित रहा।

५—पदों के विषय बाल, पौगंड एवं किशोर लीला, गोपी भाव, विरह-भाव, युगल लीला आदि ही थे।

६—भगवान् कृष्ण की रसमयी भावात्मक लीलाओं एवं दीनता, विनय के अतिरिक्त अन्य विषयों पर उसने पद रचना नहीं की।

७—परमानन्द सागर के अतिरिक्त उसकी अन्य रचनायें संदिग्ध एवं अप्राप्य हैं।

परमानन्दसागर के मुद्रित पद लगभग ५३० हैं जो तीनों कीर्तन संग्रहों में आगए हैं। ठीक इतने ही पद राग कल्पद्रुम भाग १—२, राग रत्नाकर, अष्टसखान की वार्ता, अष्टछाप पदावली, अष्टछाप परिचय, बल्लभीय सुधा एवं पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ में कुल मिलाकर मिलते हैं। कीर्तन संग्रहों के पदों में और इन ग्रंथों के पदों में अधिकांश पुनरावृत्ति है। डॉ० दीनदयाल गुप्त अपने पास लगभग ४५० पदों का संग्रह बताते हैं। 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' की उद्धरण संख्या भी इससे ऊपर नहीं जाती। उनके अधिकांश पद कीर्तन-संग्रहों से मेल खा जाते हैं। परन्तु परमानन्ददास जी का स्वतन्त्र प्रामाणिक मुद्रित संग्रह आज तक उपलब्ध नहीं।

उनके पदों के तीन क्रम मिलते है—

१—वर्षोत्सव क्रम।

२—नित्यलीला क्रम।

३—भागवत के प्रसंगानुकूल पद एवं प्रकीर्ण विनय आदि के पद।

कवि का काव्य विषय मुख्यतः भगवान् कृष्ण का बाल, पौगण्ड और किशोर लीला गान था। अतः इन्हीं तीन लीलाओं के सर्वाधिक पद उपलब्ध होते हैं। कवि का बहुत सा साहित्य काल के कराल गाल में समाविष्ट हो गया। वह सूर की भाँति गोवर्धननाथ जी के मंदिर का कीर्तनिया था। अतः कीर्तन सेवा के ७० और ७२ वर्षों में उसने लक्षावधि पदों की रचना की होगी, परन्तु अब तो पद संख्या कुल मिलाकर लगभग १४००,१५०० तक ही कही जाती है।

शुद्धाद्वैत दर्शन और परमानन्ददास जी

अष्टछाप के कवियों का मुख्य उद्देश्य वस्तुतः दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण नहीं था, वे अहर्निश कीर्तन सेवा में आसक्त रहने के कारण भगवान् के लीला गान को ही महत्त्व देते थे। उनके आराध्य जन-ताप-निवारणार्थ ही इस भूलोक में अवतीर्ण होते हैं और विविध मानवीय लीलाएँ करते हुए भक्तों के चित्तों को अनुरंजित करते हुए दुष्ट दलन भी करते है और इस

* प्रस्तुत पद संग्रह अधिकांश में इन्हीं प्रतियों के आधार पर है। —संपादक

प्रकार भक्त मन रंजनकारिणी लीला के साथ लोकानुग्रहरूप अवतार हेतु की सिद्धि करते हैं भक्तों का उद्देश्य था कि भगवान का महत्व सांसारिक जनों से विस्मृत न कर दिया जाय इसलिये बीच बीच में ये कीर्तनकार भक्त उनका पूर्ण पुरुषोत्तमत्व अथवा पूर्ण ब्रह्मत्व भी प्रतिपादन करते चलते हैं। संसार की अनित्यता, जीव की बंधन ग्रस्तता भक्ति की स्वात्म निर्भरता, माया की असारता आदि का भी वे यथा स्थान प्रसंग उठाते चलते हैं। अतः उनके काव्य में दार्शनिक प्रसग अनायास ही आ जाते हैं। परमानन्ददास जी भी मुख्य रूप से सगुण लीला गायक होते हुए भी यथा स्थान शुद्धाद्वैत सिद्धान्तानुकूल दार्शनिक तत्व बिता कर बैठते हैं। उन्होंने भी पूर्ण ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म, जीव, माया, जगत, संसार, मोक्ष अथवा मुक्ति एवं निरोध की चर्चा की है। परन्तु ये सब चर्चाएँ हैं गौण अथवा प्रसंगवश ही। इन्हें मुख्यता कहीं भी नहीं दी गई है। शुद्धाद्वैत का यह सिद्धान्त मार्ग है। व्यवहार पक्ष इसका "पुष्टि" है। पुष्टि का स्वरूप 'कृष्णानुग्रह रूपाहि पुष्टि'। यही सर्वत्र प्रतिपाद्य रहा है। आचार्य जी का यह मत कि—

"कृति साध्यं साधनं ज्ञान भक्ति रूपं शास्त्रेण बोध्यते ताभ्यां विहिताभ्यां मुक्तिर्मर्यादा। तद्रहितानपिस्वरूप बलेन स्व प्रापणं पुष्टिरित्युच्यते।"—अणुभाष्य ३। ३। २९

तात्पर्य यह कि वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, तपादि करने से मोक्ष होता है। ये साधन मोक्ष अथवा मुक्ति के साधन हैं। इन साधनों से मुक्ति प्राप्त करना मर्यादा है। परन्तु जहाँ ये साधन नहीं गिने जाते और इन साधनों से भी श्रेष्ठभगवत्स्वरूप बल से ही प्रभु प्राप्ति होती है उसे ही 'पुष्टि' कहते हैं। सभी अष्टछापी भक्तों का यही आदर्श था। अतः उन्होंने दार्शनिक पक्ष के निरूपण करने अथवा उसे अधिक महत्ता देने की चेष्टा नहीं की। पुष्टि भक्ति ही उनका लक्ष्य था। वही उनकी प्रतिपाद्य थी। अतः दार्शनिक चर्चा में उलझना उन्हें अभीष्ट नहीं था, फिर भी प्रसंगवश जहाँ उन्हें पूर्ण ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्ष, निरोधादि की चर्चा उठानी पड़ी है वहाँ वे आचार्य वल्लभ द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैत सिद्धान्तानुकूल ही चले हैं।

परमानन्ददास जी ने भी आचार्य के मतानुसार ब्रह्म को "सर्वधर्मोपेतश्च" के अनुसार सर्व धर्ममय माना है। उसमें विरुद्ध धर्माश्रयत्व' स्थापित किया है, उसे आनन्द रूप, रस रूप, निस्सीम परिपूर्ण रसमय, नित्य धर्ममय कहा है। वह न्यायोपबृंहित, सर्व वेदान्त प्रतिपाद्य, निखिल धर्ममय, अनवगाह्य माहात्म्य एवं सर्व भवन समर्थ है। जब उसका इस प्रकार का ज्ञान हो जाता है, तब उसके प्रतिनिस्सीम भक्ति की प्राप्ति होती है।[1]

अक्षर ब्रह्म—परमानन्ददास जी ने अक्षर ब्रह्म की चर्चा विस्तृत रूप से न करके अनादि, सनातन, अनुपम, अव्यक्त, निर्गुण ब्रह्म को लीला हेतु सगुण माना है।

जीव—परमानन्ददास जी ने ब्रह्मवाद के अनुकूल जीव की अंशांशी भाव के अनुसार की बड़ी सुन्दर चर्चा की है। वे जीव की स्थिति भक्ति के लिये ही मानते हैं अन्यथा जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं।

चरण कमल हित प्रीति करि सेवा निरबाहों।

× × ×

जीव ब्रह्म अनन्तर नहीं, मणि कंचन जैसे।
जल तरंब, प्रतिमा शिला, कहिबै कौ ऐसे॥

---

१ सहज प्रीति गोपालहिं भावै—प० स० प० सं० २८५

तथा

तत प्रेम तथासक्तिव्य यदा भवत् न० व० ३

आरतिजुगलकिसोरकीकीजै तनमनधनन्यौछावरि
कीजै॥ रविससिकोटिवदनकीसोभा ताहिनिरषिमेरोंलो
ना॥ ओढैनीलपीतपटसारी कुंजविहारनकुंजविहारी॥
श्रीपरसोतमगिरधारी आरतिकरतिसकलब्रजनारी
मोरमुकटपीतांवरसोहै नटवरकलादेषिमनमोहै॥ फूलन
कीसेजफूलनवनमाला रतनसिंघासनवैठेनंदलाला॥ मन
वचकर्मकैआरतिगावै॥ वसिवैकुंठपरमपदपावै॥१ श्रीराधा
नंदनंदनवृषभाननांकिसोरी परमानंदस्वामीअविचलजोरी॥

जीव ब्रह्म में मणिकंचन की भाँति कोई अन्तर नहीं है। जल और उसकी तरंग तत्वतः एक है, केवल षडैश्वर्यादि का अभाव अथवा आनंदांश के तिरोहित हो जाने के कारण उसकी जीव संज्ञा हुई। नाम रूप का भेद मात्र है। जीव अविद्या ग्रस्त है।

'परमानन्द भजन बिन माधौ बंध्यौ अविद्या कूटै।'

अविद्या से ही यह जीव माया, ममता में फँसा हुआ आत्म स्वरूप किंवा भगवत्स्वरूप को भूला हुआ है। अन्यथा तत्वतः है ब्रह्म ही।

जगत्—जगत् ब्रह्मवाद में ब्रह्म का कार्य रूप है।

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा।
स्यादिदं भगवान्साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वरः॥ —भाग०

परमानन्ददास जी ने उसे "मोहन रूप जगत केरो।" कहा है। संसार को उन्होंने जगत् से पृथक् माना है। जहाँ 'जगत हरिस्वरूप ठहरात' है वहाँ संसार सागर है। जिसमें जीव बेठिकाने बहा जा रहा है।

बह्यौ जात मोहि राखि लियौ है।
पिय संग हाथ गह्यौ॥

इस अपार भवसागर से तरने के लिए गुरु के पादपद्म ही पोत स्वरूप है[१]:

गुरु को निहारि पोत पद अम्बुज भव सागर तरिबे के हेत।

अतः संसार जगत् से पृथक् दुखों का मूल ममता अहंता अज्ञान स्वरूप क्लेशदायक है। और जगत् कार्य रूप ब्रह्म का स्वरूप ही है:

माया—इसके दो स्वरूप हैं।

१—या जगत्कारण भूताभगवच्छक्तिः सा योगमाया।

यह योगमाया ऐश्वर्यादि षड्धर्मों से युक्त है किन्तु—

२—दूसरी अविद्या अथवा व्यामोहिका माया है:[३]

ऋतेर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथातमः॥

भागवत २।९।३३

परमानन्ददास जी ने अविद्या माया की बलवत्ता की खूब चर्चा की है। उसका प्रभाव ब्रह्मा और मार्कण्डेय पर तक बताया है:

'बच्छहरण अपराधतें कीनौहतौ अपमान।
मारकंड ते को बडौ मुनि ज्ञान प्रबीन॥
माया उदधि ता संग मैं कीने मति लीन॥ आदि

यदि भगवत्कृपा से भगवद् भक्ति का रंग चढ़ जाता है और देहाध्यास छूट जाता है, तो इस माया से छुटकारा मिल जाता है।

लगै जो श्री वृन्दावन रंग।
देह अभिमान सबै मिटि जैहै अरु विषयन को संग॥

---

१ मोहन नन्द राय कुमार—परमानन्द सागर।

२ निर्गुण ब्रह्म सगुण धरि लीला ताहि अब सुत करिमानो। म० स०

३ दैवी ह्येषा गुणमयी मममाया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतांस्तरंति॥ श्रीमद्भगवद् गीता ७। १४

इस प्रकार परमानंद दास जी ने भगवच्छरण और नाम स्मरण इन दो अमोघ मन्त्र से माया की व्यामोहिका शक्ति से जीव की मुक्ति बताई है।

मुक्ति—परमानंददास जी ने मुक्ति के नाम पर स्वरूपानंद मुक्ति बताई है। सांख्यादि में जहाँ साधक को ज्ञान द्वारा देहाध्यास, अन्तःकरणाध्यास और प्राणाध्यासों से मुक्ति बताई है वहाँ भक्ति-पथ के पथिकों के लिए भजनानंद मे मग्न रहकर सम्प्रदाय ने स्वरूपानंद मुक्ति बताई है। भक्त के लिए गोलोक लीला का आनंदानुभव ही सब कुछ है। स्वरूपानंद मुक्ति से विरहित साधक सालोक्य, सामीप्यादि मुक्तियों को भी नहीं चाहता अतः परमानंददास जी स्पष्ट कहते हैं :

'मुक्ति देहु संन्यासिन कों हरि, कामिन देहु काम कौ राम।'

इसलिए योग प्राप्ति को परमानन्द की गोपियाँ अपराध के अन्तर्गत गिनती है :

किहि अपराध जोग लिखि पठयौ,
प्रेम भजन तें करत उदासी।
परमानन्द वैसी को विरहिन,
माँगै मुक्ति पुनरासी ॥

इसलिए परमानन्द मोक्ष अथवा बैकुण्ठादि गमन की वासना भी नहीं रखते

कहा करूँ बैकुण्ठहि जाय।

इसी स्वरूपानन्द में उन्हें "निरोध" की प्राप्ति होती है।

निरोधः—आचार्य वल्लभ ने अपने निरोध लक्षण ग्रन्थ में "भगवद्विरहानुभूति" को निरोध-स्थिति बतलाया है। अन्ततोगत्वा उनके निरोध की परिभाषा पातञ्जल योग सूत्रकार की परिभाषा 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' से मेल खा जाती है क्योंकि प्रेम की चरमानुभूति में निखिल चित्तवृत्तियों का अटकाव प्राणाधिक प्रियतम में हो जाता है और इस प्रकार पातंजल योग सूत्र की परिभाषा भी वहाँ सही बैठ जाती है परन्तु भागवत धर्म का अवलम्बन लेने वाले भक्तों का निरोध साधन मार्ग की रूक्षता, क्लिष्टता से भिन्न सौंदर्य माधुर्य प्रेमानुभूतियों से तन्मय संयोग वियोगों की दशाओं से परिपूर्ण होता है।

"कृष्णे निरुद्ध करणात् भक्ता मुक्ता भवंति। — निबंध

भक्त प्रवर परमानन्ददास जी ने साम्प्रदायिक निरोध तत्त्व को ही अङ्गीकार किया है। उन्होंने भगवल्लीला शक्ति को ही निरोध स्थिति मानी है। आचार्य द्वारा दशमस्कंध की अनुक्रमणिका श्रवण कर उसी के अनुचिंतन में रत होकर अपनी मानसभूमि को वह कृष्ण लीलामय ही देखा करते थे और उसी स्थिति में वे बाह्य जगत से उपरत होकर अपने मनोराज्य में विचरण करते हुए कभी प्यारे कृष्ण के साथ मिलन सुख का अनुभव करते थे और कभी उनके वियोग में "क्वासि क्वासि" चिल्ला उठते थे। 'हरि तेरी लीला की सुधि आवे" में उनका वही मन्तव्य है जो आचार्य का निरोध लक्षण में "यच्च दुःखं यशोदायाः" के कथन करने में हैं। एक प्रकार से भगवल्लीला ही निरोध रूपा है। यही आचार्य के शिष्य सूरदास और परमानन्ददास आदि के कथन का लक्ष्य था। इसीलिए दशमस्कंध का विषय "निरोध" अथवा जीव का लय रखा है। इसी को आचार्यों ने अपने शिष्यों के हृदय में स्थापित किया था। भगवान् की बाल लीला निरोध कारिणी है। बाल लीला में मानवमन बड़ी शीघ्रता के साथ लय होता है। यही स्वरूपासक्ति है। परमानन्ददास जी में स्वरूपासक्ति जन्य निरोध लीला परक निरोध और वियोग जन्य निरोध तीनों प्रकार की निरोध स्थिति के उदाहरण मिल जाते हैं।

परमानन्ददास जी की भक्ति

परमानन्ददास जी सर्वोपरि भक्त हैं; कवि गायक अथवा कीर्तनकार पीछे। उन्होने भारतीय तत्व चिंता के अन्तर्गत भक्ति मार्ग की सुगम व्यावहारिकता को ही पसन्द किया और उसे ही अपनाकर उसी को अपना लक्ष्य बनाया था।

भारतीय साधना क्षेत्र में प्रेम साधना या भक्ति साधना उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव स्वयम्। आर्य सभ्यता का उषःकाल भक्ति-साधना की ही अरुणिमा से रक्ताभ था वही रक्तिमा ज्ञान, कर्म और उपासना सभी के लिये प्रेरणादात्री बनी। अतः भक्ति साधना उतनी ही पुरातन है जितनी कि मानव की अन्य भावनायें। इसी भक्ति के विकसित रूप को लेकर परवर्ती उपासकों ने साहित्य को भावापन्न बना दिया और साहित्य को 'सहित' का भाव दे दिया। वेद उपनिषद्, ब्राह्मण आरण्यक और बाद के श्रुति स्मृति पुराणादि सभी ने भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन एक स्वर से किया।[1] भागवत जो सबसे अन्तिम और विकसितम पुराण है इसीलिए भक्तिमय है। उसका लक्ष्य नितान्त भक्ति प्रतिपादन करना है, अतः आचार्य वल्लभ ने उसे 'समाधि भाषा' के नाम से अभिहित किया है। उनका सम्पूर्ण पुष्टि मार्ग भागवत पर ही आधारित है। भागवत को आधार मान कर चलने वाले निखिल भारतीय भागवत धर्म भक्ति तत्व प्रधान है। भक्ति के आगे वे जप, तप, तीर्थाटन आचार विचार व्यवहारादि को कुछ नहीं समझते। केवल निष्केवल प्रेम स्वरूपा भक्ति को महत्ता देते है। इसके दो रूप हैं :

१—वैधी भक्ति।
२—प्रेम लक्षणा रागानुगा भक्ति।

वैधी भक्ति के अन्तर्गत नवधा भक्ति आती है और प्रेम लक्षणा अथवा रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत 'गोपी भाव' का समावेश है।

परमानन्द दास जी ने 'ताते नवधा भगति भली' कह कर वैधी भक्ति का सम्मान किया अवश्य है किन्तु उनका लक्ष्य रागानुगा प्रेमलक्षणा भक्ति ही था। उसी की प्राप्ति के लिए उनका चरम उद्योग था। आचार्य ने उसे ही एक मात्र प्राप्य बताया है और उसकी अधिकारिणी गोपियों को अपना 'गुरू' बताया है।[2] 'गोपी भाव' वाले विरले भक्त जनों को उन्होंने शुद्ध पुष्ट जीवों की अन्यतम कोटि में रखकर अन्य सभी प्रवाही, मर्यादामार्गी, पुष्टि-पुष्ट जीवों को उनसे निम्न भूमि पर स्थित बतलाया है। यही भक्त 'प्रियतम संगम संजात हास्य रूप सलिल' में अवगाहन करता है और प्रिय के चर्वित तांबूल का अधिकारी बन कर "करुणाकुलस्मितावलोकन" का भाजन बन जाता है। परमाराध्य के चरणों मे उसकी निस्सीम प्रणति और प्रकृष्ट दैन्य ही उसकी संध्यादि उपासना है। रस ही इस भक्त का जीवन, रस ही प्राण और रस ही इसकी संपत्ति है। इसी की स्थिति को लक्ष्य कर भागवतकार ने कहा है :

"त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्"

परमानन्ददास जी ने जहाँ वैधी भक्ति की चर्चा की है वहाँ गोपी भाव[3] की भी चर्चा की है। 'अन्यपूर्वा' गोपी इसी कोटि की भावुक भक्तायें हैं। उन्हीं को लक्ष्य कर परमानन्द दास जी कहते हैं :

'परमानन्द स्वामी मन मोहन, स्रुति मरजादा पेली।'

---

१ वेदा: श्रीकृष्ण वाक्यानि व्यास सूत्राणि चैवहि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टमम्॥

२ गोप्यस्तु अस्माकं गुरुः—आचार्य वल्लभ।

३ सहज भाव।

यहाँ लोक वेद से परे प्रेमलक्षणा भक्ति निरोध रूपा है। इसी गोपी प्रेम की प्रशंसा ज्ञानी भक्त शुक और व्यास जैसे भक्त किया करते हैं।

परमानन्ददास गोपिन को प्रेम कथा सुक व्यास कही री।

यही उत्तम भक्ति है :

जो रस निगम नेति नित भाख्यौ।
ताकौं तें अधरामृत चाख्यौ॥

अतः गोपिकायें प्रेम के क्षेत्र में सर्वोच्च हैं :

"गोपी प्रेम की ध्वजा"

भक्ति के दोनों रूप वैधी एवं रागानुगा के अतिरिक्त परमानन्ददास जी में षड्विध शरणागति द्विविध आसक्तियाँ— स्वरूपासक्ति एवं लीलासक्ति के भी दर्शन होते हैं। भक्ति की सातों भूमिकायें, दीनता, मानमर्षिता, भय दर्शन भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य विचारणा सभी के दर्शन हो जाते हैं। इसी प्रकार तीनों प्रकार की प्रपत्तियाँ---

१ —भगवान् द्वारा भक्त का स्वीकार।

२——भक्तकृत भगवान् का स्वीकार।

३——भक्त और भगवान् दोनों का परस्पर स्वीकार आदि के उनमें उदाहरण मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त।

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षयिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरण तथा।
आत्म निक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥

के सभी स्वरूपों के उदाहरण मिल जाते है।

परमानन्ददास जी के काव्य में भक्ति, प्रपत्ति के सभी स्वरूपों के अतिरिक्त नारदीय भक्ति सूत्रोक्त एकादश आसक्तियों के भी दर्शन होते हैं। यद्यपि प्रेमस्वरूपासक्ति एक तथा अखण्ड है तथापि गुण माहात्म्यसक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति आत्म निवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति, परमविरहासक्ति, आदि सभी के उदाहरण उनके काव्य में मौजूद हैं।

भक्ति तत्व के निरूपण में कवि ने उसके सभी पोषक अङ्गों को यथा स्थान समाविष्ट किया है। अतः नाम माहात्म्य, गुरु महिमा, अनन्यता सम्प्रदाय के प्रति चरम आस्था, गुरुमंत्र में अगाध विश्वास, सत्संग और षडंग-सेवा-साधना, सभी को परमानन्ददास जी ने मुख्यता दी है। उन्होंने भगवन्नाम को सर्वोपरि, सर्व समर्थ- सर्वकल्मषापह माना है।

'काम धेनु हरिनाम लियौ।' आदि। भक्ति की पोषिका 'सेवा' को भी कवि भूला नहीं। उसने सेवा पर बड़ा महत्त्व दिया है। स्वयं वह श्रीगोवर्धननाथ जी की कीर्तन सेवा में अहर्निश तत्पर रहता था। सेवा भक्ति के प्रथम सोपान 'दैन्य' की जननी है और सेव्य के प्रति चित्त को केन्द्रित रखती है 'चेतस्तत्प्रवणम्' के अनुसार सेवा से ही चित्त की प्रवणता या तदाकार परिणति होती है। सेवा की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए आचार्य जी ने भक्ति वर्द्धिनी में कहा है :

सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत्।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम॥

भक्तिवर्द्धिनी ६

अतः अष्टयाम सेवा सम्प्रदाय की अष्टदर्शन विधि वाली नित्य सेवा के नित्य कीर्तन परमानन्ददास जी ने प्रस्तुत किए है। इन आठों दर्शन के तत्व श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध में निहित है।

साथ ही नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मों का समर्पण, सेवा, पूजा, चरण-कमलों का चिंतन एवं लीला कथा का श्रवण आदि षडंग सेवा का निर्वाह भी परमानंददास जी के पदों में उपलब्ध है।

सारांश यह कि भक्ति के सम्पूर्ण साधनों को अपने भक्ति-सिद्धांत में समाविष्ट कर परमानंददास जी ने 'गोपीभाव' को ही अपना आदर्श माना है। यह 'गोपी भाव' उनकी भक्ति का 'बीज भाव' है। इस भाव से जीव कभी भी विनाश को प्राप्त नहीं होता।[1] यह 'गोपीभाव' राधा वल्लभीय अथवा चैतन्य के सखीभाव से भिन्न है। उन दोनों संप्रदायों के सखी भाव का स्वरूप राधा का कैंकर्य या राधा का दास्य भाव है। "यह भाव सर्वथा संगोप्य है और साधक इसे यदि प्रकाश में ले आवे तो उसे नरक की प्राप्ति होती है।"[2] आदि

परन्तु परमानंददास जी का 'गोपीभाव' वह पुष्टिशिखर वाला गोपीभाव है जिसमें 'अंस बाहु' देकर परिरंभण आलिंगन पूर्वक चर्वित तांबूल दिया जाता है।[3] जिसमें क्षण मात्र का विलंब भी असह्य है। एक चुटकी का समय युग जैसा विदित होता है।

'गोपीभाव' वाली रागानुगा किंवा प्रेम लक्षणा एकान्त भक्ति के परम पोषक होते हुए भी परमानंददास जी ने वैधी भक्ति का तिरस्कार किया हो ऐसी बात नहीं। उन्होंने अधिकारी भेद से दोनों ही प्रकार की भक्ति को साध्य बताया है। वैधी भक्ति को वे भवताप पीड़ित-मानव के लिए भली अथवा सुगम बताते हैं।[4] प्रभु चरण हरिराय जी ने अपने भक्ति द्वैविध्य निरूपण नामक ग्रंथ में इसको प्रथमा कहकर शीतला बतलाया है तथा रागानुगा को दुर्लभ अथवा ऊष्ण कहकर गोप सीमन्तिनियों द्वारा ही साध्य बतलाया है।[5] परमानंददास

---

१. बीज दाढ्यं प्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः—भ. व. २

× × × ×

याबज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम—भ व. ६

२. सखी भावं विनानैव स्मरणे गुण कीर्तने।
पूजने वा तयोर्देवि ! कथंचिदधिकारिता ।।
संगोपयेन्निजं भावं न परेभ्यः प्रकाशयेत् ।
प्रकाशे सिद्धि हानिः स्यान्नरकं चापि गच्छति ।।
आत्मानं चिन्तयेत्तस्मात्किशोरीं प्रमदाकृतिम् ।
राधिकानुचरी भूतां राधा दास्यैकतत्पराम् ।।
रुद्रयामले—अष्टयाम सेवाविधिः।

३. तत्रैकांसगतं बाहुकृष्णस्योत्पल सौरभम् ।
चंदनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुंबह ।।
कस्याश्चिन्नास्य विक्षिप्त कुंडलत्विषमंडितम्
गंडागंडेसन्दधत्या अदात्तांबूल चर्वितम् ।। भाग १०, ३३, १२-१३

४. ताते नवधा भगति भली। प० सा०

५. प्रथमा शीतला भक्तिर्यतः श्रवण कीर्तनात् ।
तत्रैव मुख्य सम्बन्धः सुलभा नारदादिषु ।।
द्वितीया दुर्लभा यस्मादधरामृत सेवनात् ।
तद्भाव भावना रूपा विरहानुभवात्मिका ।
गोप सीमन्तिनीनांच सा दत्ता हरिणा स्वतः ।। भ० द्वै०, निरू०—२—३

जी ने भक्ति के किसी भी स्वरूप को छोड़ा नहीं है। उनके पद आचार्य द्वारा निर्दिष्ट प्रेम व तीनों ही सोपान—स्नेह, आसक्ति और व्यसन के महाभाष्य स्वरूप ही हैं। उनके पदों में तीन प्रकार की आसक्तियों के दर्शन होते हैं—

(१) स्वरूपासक्ति (२) लीलासक्ति (३) भावासक्ति। (१) स्वरूपासक्ति परक पदों में भगवान् कृष्ण के दिव्य सौंदर्य का चित्रण है। (२) लीला परक पदों में उनकी लीलासक्ति तथा भावासक्ति में गहन विरहानुभूति के दर्शन होते हैं। आत्मनिवेदन परक पदों में अनन्यता, गुरु गोविंद में अभेद दृष्टि, सत्संग में श्रद्धा एवं भगवत्सेवा में तन्मयता के साथ उनकी उच्चकोटि की भक्ति भावना पदे पदे प्रकट होती है।

भगवल्लीला

भक्ति निरूपण के उपरान्त जीव की निरोध दात्री भगवल्लीला पर परमानन्ददास जी ने बड़ा महत्व दिया है। आचार्य महाप्रभु जी से भागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका श्रवण कर वे पद रचना में प्रवृत्त हो गए थे। सुबोधिनी के अनुसरण का उन्हें व्यसन था। दशमस्कंध में भी उन्हें 'तामस प्रकरण' ही अतिशय प्रिय था। तामस जीवों की निरोधस्थिति दशमस्कंध के श्रवण से ही होती है अतः कवि को भागवत के वे ही प्रसंग अतिशय प्रिय लगे जिनमें भगवान् ने तामसजीवों का उद्धार किया है। भगवान् की अहैतुकी कृपा और महीयसी महिमा के अनवरत चिंतन के कारण कवि के विशाल मानस में लीलाब्धि अहर्निश तरंगायित रहता था। उसने अपने भाव-लोक में भगवल्लीला के प्रत्यक्ष दर्शन किए थे। अतः लीला-गान उसका भावोद्गार था। स्वयं लीला रसात्मक एवं आनन्दात्मक है। वह पूर्ण निरपेक्ष एवं स्वतंत्र है और वह नितांत प्रभु इच्छा है। लीला में और प्रभु-भक्ति में परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अर्थात् लीला में चरम आसक्ति ही प्रेम का चरम स्वरूप है। दोनों अपने अन्तिम बिन्दु पर एक हैं। लीला निरोधलक्ष्यैका है। इसीलिए 'लीला वस्तु कैवल्यम्' कहा गया है। सुबोध रत्नाकर कार ने इसे "अनायास हर्षपूर्वक[1] की गई चेष्टा" कहा है। इसी कारण ब्रज के निस्साधन तामस भक्तों का भगवान ने अपनी विविध लीलाओं द्वारा निरोध किया है। ये लीलाएँ ब्रज भक्तों को आनन्द देने वाली अथवा निरोध प्राप्ति कराने वाली थीं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है परमानन्ददास जी ने अपने लीला विषयक पदों में मुख्य रूप से दशमस्कंध और उसमें भी पूर्वार्द्ध ही को लिया है। वे पुरुषोत्तम परब्रह्म को लीला नायक सगुण अवतारी कृष्ण रूप में भूभार के हरण करने वाले बतला करके भी यशोदोत्संगलालित ब्रज-जन-पालक, क्रीड़ा नायक सिद्ध करते हैं। इस 'बाल क्रीड़ा' का उद्देश्य वही आनन्दमय भक्त-मन-रंजन है, जो ज्ञानी समाधि द्वारा प्राप्त करता है। परमानन्द ने अपना लीला वर्णन दोनों ही प्रकार का भागवत सापेक्ष और भागवत निरपेक्ष रखा है। लीला विषयक अनेक पद भागवत की कथा प्रसंग को अक्षुण्ण रूप में प्रस्तुत करते हैं और अनेक पदों में कवि की मौलिक कल्पना भी है। जिसमें भगवन्माहात्म्य, भक्त की दीनता भगवान की अतुलित सामर्थ्य और कृपावत्सलता की चर्चा है। इस प्रकार कहीं तो कवि ने तत्परता के साथ भागवत का अनुसरण किया है और कहीं वह स्वतंत्र हो गया है। राधा की चर्चा, के अतिरिक्त उद्धव प्रसंगादि में कुछ ऐसे प्रकरण हैं जो नितान्त भागवत निरपेक्ष हैं।

---

१ अनायासेन हर्षात्क्रियमाणा चेष्टा लीला। सु० र० का० ६ पृ० २

परमानन्द सागर मे कृष्ण, राधा, गोपियां और रास

परमानंददास जी का सपूर्ण काव्य पुष्टि संप्रदाय की परम मर्यादा लिए हुए है। आचार्य वल्लभ से दीक्षा लेने के उपरान्त वे संप्रदाय से इतने अभिभूत हो गए थे कि उसके राजमार्ग को छोड़कर वे एक इंच भी इधर उधर नहीं भटकते थे। अतः कृष्ण, राधा, गोपी, रास, मुरली आदि सभी के विषय में उनकी सम्प्रदायानुकूल मान्यताएँ उपलब्ध होती हैं।

कृष्ण—परमानन्ददास जी के कृष्ण सप्रदाय की मान्यताओं के अनुकूल रसात्मा, रसेश, भावनिधि, परमकारुणिक विरुद्धधर्माश्रयी ब्रह्म हैं जो निकुञ्ज लीला नायक हैं जिनके विषय मे श्रीमद्भागवत का कथन है—'ए ते चांशकला प्रोक्ता: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' इधर परमानन्ददास जी भी कहते हैं :

"बसुधा भार उतारन कारन प्रगट ब्रह्म बैकुण्ठ निवासी।"

अतः वह भुवन-चतुर्दश-नायक लीलावतारी निकुञ्ज नायक है।

राधा—परमानन्द दास जी ने कृष्ण की भाँति राधा की भी बधाई गाई है और राधा को कृष्ण की प्रिया, स्वामिनी, स्वकीया एवं ह्लादिनी शक्ति माना है। राधा तत्व उन्होंने आचार्य चरण से ही ग्रहण किया है। भागवत के 'अनयाराधितोनूनम्' मे राधा की खींचतान है। राधा की चर्चा श्रीमद्भागवत को छोड़कर ब्रह्मवैवर्त पुराण, भविष्य पुराण, पद्म पुराण, स्कंद पुराण, देवी भागवत, नारद पांचरात्र, निर्वाण तंत्र राधा तंत्र आदि मे मिलती है। इनमें बहुत से ग्रंथ आचार्य वल्लभ के पूर्व के हैं। अतः आचार्य ने गोपी भाव' को श्रीमद्भागवत से तथा राधातत्व अन्यान्य पुराणों से लिया है। राधा विषयक आचार्य का प्रभाव उनके दोनों शिष्यो अथवा 'सागरों' पर भी स्पष्ट है। 'राधा तत्व' इतना महत्वपूर्ण और आवश्यक है कि परिवृढ़ाष्टक में आचार्य ने एक 'पशुपजा' अथवा गोपकन्या की चर्चा की है। वह अन्य कोई नहीं, भगवान् कृष्ण की आद्याशक्ति राधा ही हैं। परमानन्द दास जी ने राधा को भी कृष्ण की भाँति रसेश्वरी एवं रासेश्वरी माना है।

'रसिकिनी राधा पलना झूले' से लेकर
धन धन लाड़िली के चरन।
"नन्द सुत मन मोद कारी सुरत सागर तरन"

तक उन्होंने राधा कृष्ण की युगल-लीला के शताधिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। उन सब के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनकी राधा स्वकीया है। राधा की प्रीति अलौकिक है। वे साक्षात् आद्याशक्ति और लक्ष्मी का अवतार हैं। अवस्था में वे कृष्ण से दो वर्ष बड़ी है। वे अतिशय कष्ट सहिष्णु, मौन, रूपमुग्धा मानवती, विदग्धा एवं सुरत लब्धा है। उनका प्रणय क्रम क्रम से विकसित होकर परिणय में पर्यवसित हुआ है।

गोपी—परमानन्ददास जी ने गोपी भाव' अथवा गोपी तत्व श्रीमद्भागवत तत्पश्चात् आचार्य वल्लभ से पाया। यह गोपीभाव भागवतोक्त भक्ति का लक्ष्य है। परमानन्ददास जी ने गोपियों को 'प्रेम की धुजा' कह कर स्मरण किया है। 'गोपी भाव' एक भाव है, यह प्रेम की उच्चतम स्थिति का ही नाम है जो लोक-वेद मर्यादा से परे है। यों तो परमानन्ददास जी ने सभी प्रकार की गोपियों की चर्चा की है किन्तु उनका प्रतिपाद्य 'गोपी भाव'[1] अन्यपूर्वा गोपी भाव' है। इसी को 'स्त्रीभाव' या गूढ़भाव पुकारा गया है।

मुरली—इसका मूल स्रोत भी अन्य प्रसंगों के मूल स्रोत की भाँति भागवत का वेणु गीत है। यह वेणु प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रतीक स्वरूप है। परमानन्ददास जी ने इसमें

१ सहज भाव।

आधिदविकत्व का आरोप किया है। मुरली रव मे समाधि द शा शक्ति का उ द्दान बचा क है। मुरली स्वभाव से रस स्वरूपा है। कोइ कोई गोपी अपने को उसकी 'चेरी' बताती है।

हों तो या बनेउ की चेरी"

परमानन्ददास जी ने उसे भगवान् की दिव्य शक्ति माना है। भक्तों का उससे निरो· होता है। इसका अद्भुत प्रभाव चराचर पर व्याप्त है।

यमुना—संप्रदाय में यमुना का बड़ा महत्व है वे कृष्ण की 'तुर्यप्रिया है' है। उनके दो रूप हैं। स्त्री रूप में वे चतुर्थ यूथकी स्वामिनी है और यह उनका आधिदैविक रूप है दूसरा उनका जल प्रवाह रूप है यह उनका आधिभौतिक रूप है। परमानन्ददास जी ने यमुना विषयक अनेक पद लिखे है जिनमें उन्होंने यमुना का साम्प्रदायिक रूप अक्षुण्ण रखा है। इस प्रकार यमुना के आधिदैविक एव आधि भौतिक दोनों ही रूपों की भावना की है। यह माहात्म्य उन्होंने जगद्गुरु वल्लभाचार्य से पाया है।

'तीर्थ माहात्म्य जग जगतगुरु लौ परमानन्ददास लह्यो।"

रास—भागवत में रास लीला प्रसंग पर पाँच अध्याय है। इस 'चारु क्रीड़ा' का आध्यात्मिक रहस्य है। परमानन्ददास जी ने रास क्रीड़ा का वर्णन भागवत के आधार पर किया है। अतः रास के अलौकिकत्व की उन्होंने चर्चा की है।

यह तो स्पष्ट ही है कि परमानन्ददास जी के लीला विषयक पद मुख्यत. श्रीमद्भागवत के आधार पर हैं। उन्होंने भगवान् कृष्ण के बाल, पौगंड और किशोर लीला का ही मुख्य रूप से वर्णन किया है। अपने लीला विषयक पदों में से वे अपनी स्वाभाविक कल्पना, मौलिकता के साथ आचार्यकृत सुबोधिनी पर समाश्रित है।

महारास में उन्होंने अन्यपूर्वा अनन्यपूर्वा दोनों ही प्रकार की गोपिकाओं का समावेश किया है। सभी गोपियाँ कान्ताभाव में लीन हैं। उस 'चारु क्रीड़ा' को देखकर नभ में देवगण भी अपने विमान संचालन को भूल गए हैं—

"सूर विमान सब कौतुक भूले कृष्ण केलि परमानन्ददास।"

व्रज—गोपिकाएँ 'लोक वेद की कानि' भुलाकर महारास में सम्मिलित हुई हैं। भागवत कार कहते है कि जो लोग इस कृष्ण क्रीड़ा का गान करेंगे उन्हें परा भक्ति की प्राप्त होगी[२] परमानन्ददास जी ने भी रास-वर्णन पराभक्ति के प्राप्त करने की दृष्टि से ही लिखा है। उनके दो ही प्रसंग अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं रासक्रीड़ा तथा गोवर्धन धारण। रसात्मा, रसेश श्रीकृष्ण की यह चारु क्रीड़ा' उन्होंने कहीं भागवत सापेक्षा और कहीं भागवत निरपेक्ष होकर प्रस्तुत की है। ललिता चन्द्रावली राधादि सहचरियों की चर्चा उन्होंने भागवत से पूर्ण स्वतंत्र होकर की है। उनका रास लीला वर्णन दिव्य है। और कृष्ण की पूर्णतः काम पर विजय है।

चंदन मिटत सरस उर चंदन देखत मदन महीपति भूल।'

संक्षेप में वे भागवतकार के मूल भावों की सुरक्षा के साथ अपनी मौलिकता नहीं भूले है

---

१ सहजभाव

२ विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णो:।
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद्यः॥
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं।
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥
भाग० १०।३३।४०

काव्य पक्ष

अष्टछाप के कवियों का मुख्य उद्देश्य कविता करना नहीं अपितु भगवान् की कीर्तन सेवा करना था। अतः वे मुख्य रूप से भक्त एवं कीर्तनकार हैं, कवि नहीं। फिर भी सहस्रावधि गेय पदों की रचना करने से उनका कवि रूप स्वयमेव ही सिद्ध हो जाता है और भगवान् की लोकपावनी लीला गान के कारण उनका कवि स्वरूप सहज संभाव्य हो जाता है। अपनी मधुरतम काव्य वस्तु के कारण वे भक्त, संगीतज्ञ एवं कवि तीनों ही रूपों में जनता के समक्ष आते हैं। जहाँ उनकी भक्ति का स्वरूप उनके लीलापरक पदों से प्रकट होता है, वहाँ उनका कवि रूप भी उनके पदों से झलकता है। अष्टछाप के सभी कवि महानुभाव मुक्तक गेय शैली के कवि हैं। इस शैली में स्वभावतः भावों का उद्गार, वर्णन की संक्षिप्तता, संगीत की मधुरता, कोमल कांतपदावली की सरसता, भावपूर्ण कोमल प्रसंगों की योजना रहती है। रसेश्वर भगवान् कृष्ण की ब्रज लीलाएँ मुक्तक गेय पद शैली के लिए अत्यन्त ही उपयुक्त हैं। सभी अष्टछापी कवियों ने इसी गेय शैली को भगवल्लीला गान के लिए अपनाया है। इस शैली में परमानंददास जी ने निम्नांकित भगवल्लीलाओं का गान किया है।

(१) श्रीकृष्ण स्तुति।
(२) श्रीकृष्ण जन्म, बधाई छठी, पलना, करवट, उलूखल, देहली उल्लंघन आदि।
(३) बाल लीला, मृत्तिका भक्षण, विश्वदर्शन।
(४) राधाजन्म बधाई।
(५) भगवान् के पालने के पद।
(६) गोदोहन, गोचारण, माखन चोरी आदि।
(७) गोपियों का उपालम्भ यशोदा का प्रत्युत्तर आदि।
(८) राधा कृष्ण की परस्पर आसक्ति प्रेमालाप हास्य विनोद आदि।
(९) राधा कृष्ण मिलन, गोपी प्रेम, वन-लीला आदि।
(१०) दान-लीला, पनघट, प्रसंग, गोपियों की स्वरूपासक्ति आदि।
(११) गोवर्धन लीला, अन्नकूट, गोपाष्टमी, व्रतचर्या।
(१२) वन से प्रत्यागमन, गोपियों की उत्कंठा।
(१३) राधा-मान, का दूती कार्य।
(१४) गोपियों की आसक्ति, राधा, कृष्ण-सौंदर्य-वर्णन।
(१५) रास निकुञ्ज लीला, मुरली, राधा कृष्ण की युगल लीला वन विहार, सुरतान्त शृङ्गार।
(१६) खंडिता के पद, गोपियों का उपालम्भ।
(१७) वसन्त, होली, चाँचर, धमार, फूलडोल, आदि के पद।
(१८) कृष्ण का मथुरा गमन।
(१९) गोपियों का बिरह।
(२०) उद्धव का ब्रज में आगमन भँवर गीत।
(२१) ब्रज माहात्म्य, ब्रज भक्तों का माहात्म्य।

(२२) श्री यमुना जी का माहात्म्य, गंगा जी का माहात्म्य भगवान् और भगवन्नाम का माहात्म्य, भक्ति का माहात्म्य, गुरु महिमा।

(२३) स्वसमर्पण, दैन्य, विनय, आत्म प्रबोध।

(२४) महाप्रभु वल्लभाचार्य, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी तथा उनके सात पुत्रों की बधाई।

(२५) नृसिंह जयन्ती, वामन जयन्ती, रामनवमी आदि के पद।

इन प्रसंगों के अन्तर्गत वर्षभर के उत्सव, तथा नित्य सेवा में गाए जाने वाले पद, आदि सभी का समावेश है। इसका तात्पर्य यही है कि परमानन्ददास जी का काव्य विषय दशम स्कंध और उसमें भी पूर्वार्द्ध तक ही सीमित है। इन्हीं सरस, कोमल, रमणीय प्रसंगों को लेकर कवि अपने काव्य जगत् में रमता रहा है। इन प्रसंगों में उसकी गेय शैली में जिस उच्च कोटि की भावुकता अवतीर्ण हुई है, उसके कारण वह 'सूर के टक्कर' का कहा जाने लगा। गेय शैली की लम्बी परम्परा इन अष्टछापी कवियों में और विशेषकर सूर परमानन्द में जितनी निखरी उतनी न इनसे पूर्व न पश्चात्। परमानन्ददास जी में दोनों शैलियों—

(१) कथात्मक गेय पद शैली।

(२) प्रसंगात्मक गेय पद शैली।

के दर्शन होते हैं। इन्हीं में कवि ने कृष्ण लीला के लोक मंगल और लोकरंजक दोनों ही पक्षों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।

गेय शैली की इस प्रधानता के कारण यह न समझना चाहिए कि इन कवियों में प्रबन्ध काव्य लिखने की भावना या क्षमता ही नहीं थी। कृष्ण लीला को मुक्तक गेय पदों में प्रस्तुत करने का प्रधान कारण था—आचार्य का कीर्तन-सेवा का आदेश। भगवान् गोवर्धननाथ जी के समक्ष राग सेवा करते हुए लीलात्मक अनन्त पद इनके मुख से निस्सृत होते थे, उन्हें स्वान्तः सुखाय से पहले भगवत्सुखाय गान करना ही इनका लक्ष्य था। साहित्यिक दृष्टिकोण अथवा प्रबंधात्मक भगवच्चरित वर्णन परम्परा को आगे न बढ़ाकर इन्हें लीलात्मक कीर्तन परम्परा को ही आगे बढ़ाना था। दूसरे, ये लोग सख्य भाव के उपासक थे। तीसरे, कृष्ण चरित जितना मुक्तक गेय शैली के अनुकूल पड़ता है उतना प्रबन्ध शैली के लिए नहीं। इसलिए ये 'दोनों सागर' भगवत्प्रसंगों को एक स्वतन्त्र मुक्त पद में निबद्ध कर संगीतात्मकता के साथ श्रीनाथ जी के चरणों में भाव-विनियोग के रूप में कर दिया करते थे।

पदों का भाव पक्ष—कवि मुख्यतः शृङ्गार—संयोग एवं विप्रलम्भ—का ही कवि है। परन्तु भगवान् की बाल किशोर एवं पौगण्ड लीला भी उसका प्रियविषय रही हैं। अतः उसके पदों में वात्सल्य भाव का भी उच्च कोटि का चित्रण हुआ है। बाल चेष्टा, बाल स्वभाव के सूक्ष्म से सूक्ष्मतम चित्रण द्वारा उसने वात्सल्य को रस कोटि तक पहुँचा दिया है। बाल-दशा के वर्णन में कवि की उच्च कोटि की चित्रोपमता सूर के कोटि की है। बाल मनोविज्ञान में वह सूर की भाँति पण्डित है। प्रत्येक वर्णन में उच्च कोटि की सजीवता, मार्मिकता, प्रभावोत्पादकता के साथ पाठक को तन्मय कर देने की क्षमता है। यदि अन्तिम पंक्ति में से कवि का नाम हटा लिया जाय तो उसके पदों में और सूर के बाल लीला के पदों में कोई स्पष्ट अन्तर ही नहीं रह जाता है साथ ही कवि ने पाँच से सात वर्ष तक की अवस्था के

इतने मधुर मनोहर सरस चित्रोपम प्रसंग प्रस्तुत किए हैं कि पाठक रसमय होकर एक निराले भाव-लोक में विचरने लगता है[1]। माता की ममता के इतने सरस मधुर चित्र अन्यत्र दुर्लभ है।

रस व्यंजना—भाव चित्रण के उपरान्त परमानन्ददास जी ने शृङ्गार के उभय पक्षों को लिया है। भगवान् की किशोर लीला राधा के साथ प्रथम परिचय तदुपरान्त अनुदिन वृद्धिगत प्रेम के क्रमिक विकास का जो मोहक चित्र कवि ने दिया है वह साहित्य की अनुपम निधि तो है ही, रसमय अनुभूतियों की पराकाष्ठा भी है। प्रेम के विविध रूपों एवं अनुभूतियो के नाना मार्मिक पक्षों के उद्‌घाटन में कवि की वृत्ति जितनी रमी है उतनी अन्य किसी रस में नहीं। संयोग के चरम और सुरतान्त वर्णन के उपरान्त मानजनित, प्रवासजनित आदि सभी प्रकार के विरह वर्णन में कवि ने मानो हृदय निकाल कर रख दिया है। यहाँ रसराज शृङ्गार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

संयोग पक्ष

१— आज तुम ह्यॉं ही रहौ कान्हर प्यारे।
निसि अँधियारी भवन दूर है चलत सकल धौं हारे।
तोरि पत्र की सेज बिछाऊँ वा तरवरै की छाँह।
नन्द के लाल तुम निकट रहौंगी देहुँगी उसीसे बाँह।
संग के सखा सब घर कौं बिदा करौ हम तुम रहेंगे दोऊ।
'परमानन्द' प्रभु मन राधा भावै अनख करौ मति कोऊ॥

२— मदन गोपाल बलैया लैहों।
बृन्दाविपिन तरनितनया तट चलि ब्रज नाथ अलिंगन दैहों।
सघन निकुञ्ज सुखद रति आलय नव कुसुमनि की सेज बिछैहों।
त्रिगुण समीर पंथ जब बोलहुगे तब गृह छाँड़ि अकेली एहौं।
'परमानन्द' प्रभु चारु बदन कौ उचित उगार मुदित ह्वै खैहों॥

३— कुंज भवन में पौढ़े दोऊ।
× × ×

४— मारग छोड़ि अब देहु कमल नयन मन मोहना।
× × ×
सुरत समागम रमि रह्यौ नदी जमुना के रेत।

५— राधा भाग सौं रस रीति बढ़ी।
मादर करि भैंटी नंद नंदन दूने चाऊ चढ़ी॥
बृन्दावन में क्रीड़त दोऊ जैसे कुंजर क्रीड़त करनी।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहना ताहु को मन हरनी।

तात्पर्य यह है कि प्रेम की संयोगावस्था के जितने भी चित्र सम्भव हो सकते थे परमानन्द दास जी ने बड़ी सफलता के साथ प्रस्तुत किए हैं। उनकी प्रेम-व्यंजना अत्यन्त अकृत्रिम व्यावहारिक और मोहक है। लोक मर्य्यादा की चिन्ता ने कवि के हृदय की स्वाभाविक

---

१ पाँच बरस को स्याम मनोहर ब्रज में डोलत नांगो।
'परमानन्ददास' को ठाकुर काँधे परयौ न तागौ॥

उमंग को दबाया नहीं है। प्रेम के गहन लवणार्णव में लोक लाज मर्य्यादा, गुरुजन संकोच, और वेद मर्यादा आदि गल चुके हैं। केवल चरम लावण्य और प्रेम तत्व की ही प्रधानता रह गई है। संयोग के बाद वे वियोग शृङ्गार का चित्रण भी बड़ी सफलता के साथ करते हैं—

१—ब्रज जन देखे ही जियत।
मेरे नैन चकोर सुधाकर हरि मुख दृष्टि पियत।
तुम अक्रूर चले लै मधुवन हरि मेरे प्राण आधार।।
राम कृष्ण गोकुल के लोचन सुन्दर नन्द कुमार।
इतनी करौ पाँइ लागति हौं वेगि घोष लै आवहु।
'परमानन्द स्वामी' है लरिका कान लागि समझावहु।।

२— चलत न देखन पाए लाल।
नीके करि न विलोक्यौ हरिमुख इतनोई रह्यौ जिय साल।।

× × ×

३— जिय की साध जिय ही रही री।
बहुरि गोपाल देख नहिं पाए बिलपति कुंज अहीरी।।

४— कमल नयन बिन और न भावैं।

५— हरि बिन बैरिन रैन बढ़ी। इत्यादि

परमानन्ददास जी में वात्सल्य-वियोग और विप्रलम्भ शृङ्गार दोनों ही के मार्मिक चित्रण मिलते हैं। शृंगार के उभय पक्षों के सफल चित्रण के उपरान्त अन्य रसों का भी सफल समावेश मिलता है—

करुण विप्रलम्भ—

गोपालै मधुवन जिन लैजाउ।

× × ×

कहत जसोदा सुन सुफलक सुत हरि मेरे प्राण अधार।
'परमानन्ददास' की जीवनि छाँडि जाहु इहि बार।।

वीर—

नन्द! गोवर्धन पूजौ आज।
जातैं गोप ग्वाल गोपिका सुखी सबनकौ राज।
जाकौं रुचि रुचि बलिहि बनावत कहा शक्र सौं काज।।
गिरि के बल बैठे अपने घर कोटि इन्द्र पर गाज।।
मेरो कह्यौ मान अब लीजै भर-भर सकटन साज।
'परमानन्द' आन के अर्पन वृथा करत कत लाज।।

रौद्र—

काहे को मारग में अघ छेड़त!
नन्दराय को मातौ हाथी आवत असुर लपेटत।
कहत ग्वाल सब सखा नन्द के गल गरजत भुज ठोंकत।।
कंस वंस को परिचित करिहैं कौन भरोसे रोकत।
नाहिन सुनी पूतना मारी तृणावर्त अघ केसी।।
'परमानन्ददास' को ठाकुर यह गोपाल पँरेमौ

अद्भुत—

कहो माई अचरज उपजै भारी !
पर्वत लियौ उठाइ अंक लै सात बरस कौ बारौ ।
सात द्यौस निसि इक टक ही याने बाम पानि कर धार्यौ ।।
अति सुकुमार नंद को नंदन कैसे बोझ सह्यौ ।
बरखे मेघ महाप्रलय के तिनते घोष उबार्यौ ।।
गोधन ग्वाल गोप सब राखे सुमिरत गर्व प्रहार्यौ ।
भक्त हेत अवतार लेत प्रभु प्रकट होइ युग गार्यौ ।।
'परमानन्द प्रभु' के बल जीवियै जिन गोबर्धन धार्यौ ।।

भयानक तथा वीभत्स के उदाहरण परमानन्ददास जी के उपलब्ध पदों में नहीं मिलते । वे कोमल सरस पवित्र भावों के कवि थे । अतः उनमें इन रसों का अभाव प्रतीत होता है ।

शान्त—

परमानन्ददास जी के भक्ति और दैन्य परक पदों में शांत रस ओत प्रोत है । संसार की असारता, जीवन की नश्वरता के साथ भक्ति की एक मात्र सत्यता उनमें पदे-पदे झलकती है—

१— करत है भक्तन की सहाय ।
दीन दयाल देवकी नंदन समरथ जादौं राय ।
हस्त कमल की छाया राखें जगत निसान बजाय ।।
दुष्ट भवन भय हरन घोख पति गोवर्धन जु लियौ उठाय ।।
× × × ×
'परमानन्ददास' प्रति पालक बेद विमल जस गाय ।

२— गई न आस पापिनी जैहै—
तजि सेवा वैकुण्ठनाथ की नीच लोग संग रहे है । आदि

इस प्रकार संक्षेप में शृङ्गार (संयोग-वियोग) हास्य, करुण (विप्रलंभ) वीर, आदि सभी रसों के उदाहरण उनके काव्यों में मिल जाते हैं । आत्मनिवेदन एवं भक्ति के अन्तर्गत शान्त रस की प्रधानता हो गई है । वीभत्स भयानक का अभाव है । शृङ्गार का रस राजत्व कवि के द्वारा अच्छा निरूपित हुआ है । युगल-क्रीड़ा में उसने सुरतांत वर्णन तक में संकोच नहीं किया है । इसी कारण उसमें नायिका भेद के अन्तर्गत आने वाली सभी प्रकार की नायिकाओं की अवस्था का वर्णन मिल जाता है । उसी प्रकार सभी संचारियों के उदाहरण उनके पदों में उपलब्ध हो जाते हैं । कवि की उच्च कोटि की रस व्यंजना के कारण उसका स्थान हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवियों में निस्संकोच निर्धारित किया जा सकता है ।

उसके काव्य में चित्रोपमता मनोवैज्ञानिक वर्णन, सौंदर्य वर्णन, सूक्ष्म निरीक्षण पदे-पदे मिलते हैं । प्रकृति चित्रण में ब्रज के निसर्ग रमणीय स्थानों की चर्चा में वन, वृक्ष, लता, पुष्प, सर, सरोवर, यमुना पुलिन, कछार, शैलराज गोवर्धन, चन्द्र-ज्योत्स्ना आदि से समन्वित प्रकृति के सुन्दरतम अङ्क में रसराज रसेश श्रीकृष्ण की सुन्दरतम लीलाओं की रमणीय ब्रज भूमि का कवि ने अत्यन्त नयनाभिराम चित्र प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार पशु पालन के सूक्ष्म निरीक्षण में कवि का पांडित्य दर्शनीय है । गौओं की विविध चेष्टाएँ और गोप वृन्द के गो

चारण के प्रसंग कवि के प्रिय विषय रहे हैं। उसी प्रकार रास क्रीड़ा और उत्फुल्ल मल्लिक वाली शारदीय ज्योत्स्नामयी राका के सौंदर्य को लेकर कवि ने बड़े दिव्य वातावरण को सजीवता के साथ प्रस्तुत करने की पूरी पूरी चेष्टा की है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उनके प्रकृति के चित्र आलम्बन और उद्दीपन—दोनों ही प्रकार के मिल जाते हैं। वे शृंगार और प्रेम के भावुक कवि हैं अतः प्रकृति चित्रण उद्दीपन विभाव के रूप में भी पर्याप्त रूप से आया है। विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत उन्होंने अपनी समसामयिक परम्पराओं का निर्वाह किया है। कवि ने लीला गान का लक्ष्य ही मुख्य रखा है अतः प्रकृति चित्रण को अन्य कवियों की अपेक्षा कम महत्त्व दिया है। परमानन्ददासजी का प्रकृति चित्रण अति रंजित कहीं भी नहीं हुआ है। भावोद्रेक, स्वरूप बोधन तथा रस परिपाक की दृष्टि से बाह्य प्रकृति का उपयोग परम्परागत उपमानों के लिए भी कवि ने किया है।

कला पक्ष—परमानन्ददास जी के पदों में वस्तु का भाव-गांभीर्य एवं भाव-सौंदर्य जहाँ सूर के टक्कर का विद्यमान है वहाँ उनका कलापक्ष भी उतना ही उत्कृष्ट है। कलापक्ष में हम प्रायः तीन बातें लेते हैं :

(१) परमानन्ददास जी के काव्य में अलंकार विधान।

(२) परमानन्ददास जी के काव्य में छन्द विधान।

(३) परमानन्ददास जी के काव्य में भाषा-सौष्ठव।

काव्य में अलंकारों का बड़ा महत्त्व है। भाव-गहनता की स्थिति में यद्यपि इन भक्त कवियों ने अलंकार, छन्द, गुण, दोषादि की परवाह नहीं की है तथापि इनकी रचना में ये सब अनायास ही आगए हैं बरबस ठूंसे नहीं गये है। उनमें शब्दालंकार अर्थालंकार दोनों ही प्रकार के अलंकारों के उदाहरण पाये जाते हैं। अतः शब्दालंकारों के अन्तर्गत अनुप्रास, वीप्सा, यमक, श्लेषादि के उदाहरण मौजूद हैं। अर्थालंकारों के अन्तर्गत उपमा, अन्वय, उदाहरण, प्रतीप, सांग, निरंग, व्यस्त एवं परंपरित रूपक, स्मरण, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, प्रतिवस्तूपमा, व्यतिरेक, परिकरालंकार, परिकुरांकुर, विशेषोक्ति, विषम, काव्यार्थापत्ति, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास, पर्यायोक्ति अन्योक्ति अतिशयोक्ति, लोकोक्ति, स्वभावोक्ति आदि के उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं।[1]

---

१ अलंकारों के कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

अनुप्रास—

(अ) बंदौं सुखद स्री बल्लभ चरन,
अमल कमल हू ते कोमल कलिमल हरन।

(ब) तरनि तनया तट बंसीवट निकट बृन्दावन बीथिन बहायौ।

(स) चंचल चपल चोर चिन्तामनि कथा न परति कही।

वीप्सा—

(अ) परम सनेह बढ़ावत मातनि रबकि रबकि बैठत चढ़ि गोद।

(ब) दुहि दुहि ल्यावत धौरी गैय्या।

यमक—

तिल भर संग तजत नहीं निजजन गान करत मनमोहन जस को।
तिल तिल भोग भरत मन भावत परमानन्द मुख लै यह रस को॥

श्लेष—

ह्वातो कोऊ हरि की भाँति बजावत गौरी।

उपमा—

(अ) धन धन लाड़िलो के चरन ।
अति ही मृदुल सुगंध सीतल कमल के से बरन ।।

(ब) हिंडोरे झूलत हैं भामिनी
कमल नयन हरि वे मृगनयनी चंचल नयन बिसाला ।

उदाहरण—

१. घन में छिपी रही ज्यों दामिनी ।
नंद कुमार के पाछे ठाड़ी सोहत राधा भामिनी ।

२. निरखत नेह भरी अखियाँ सो ज्यों निसिचंद चकोरी ।

प्रतीप—

१ सुन्दर बदन कमल दल लोचन देखत चंद लजाया है ।

२ गमन करत लख हंस लजावत अरक धरक धुति न्यारी ।

सांग रूपक—

सांग—सोहै सीस सुहावनो दिन दूल्हे तेरे ।
मणि मोतिन को सेहरा सोहै बसियो मन मेरे ।।
मुख पून्यौं को चंदा है मुक्ताहल तारे ।
उनके नयन चकोर हैं सब देखन हारे ।

× × ×

नंदलाल को सेहरा परमानन्द प्रभु गायो ।

निरंग—

आज मदन महोत्सव राधा ।

× × ×

मन्मथ राज सिंहासन बैठे तिलक पितामह दीन्हौं ।
छत्र चंवर तूणीर शंखधुनि बिकट चाप कर लीन्हौं ।

व्यस्त—

गोपी प्रेम की धुजा ।

परंपरित—

१ तरुण तमाल नंद के नंदन प्रिया कनक की बेलि ।

२ कंस तुषार त्रास तन दुर्बल, नलिन देवकी दुख निवारन ।

स्मरण—

१ जमुना जल खेवत हैं हरि नाव ।
बेगि चलौ बृखभान नंदिनी अब खेलन को दाव ।
नीर गम्भीर देख कालिंदी पुन पुन सुरत करावैं ।
बार बार तुव पंथ निहारत नैनन में अकुलावैं ।

२ पून्यौ चंद देखि मृग नैनी माधौ को मुख सुरति करै ।।

उत्प्रेक्षा—

१ अरुन अधर धृत मधुर मुरलिका तैसिए चंदन तिलक निकाई ।
मनो द्वितिया दिन उदित अर्धससि निकसि जलद में देत दिखाई ।।

२ अद्भुत मनि कुंडल कपोल मुख अद्भुत उठत परस्पर
मनौ बिधुमीन बिहार करत दोऊ जल तरंग में चलि

३ कनक कुंभ बीच पसीना मानों मोतिन पूंजें हो।
हेमलता तमाल अवलंबित सीस मल्लिका फूली हो।

दृष्टान्त—

१ मेरो भाई माधौ सों मन मान्यौ।
अब क्यों भिन्न होय मेरी सजनी मिल्यौ दूध अरु पान्यो।

२ तब ते गृह सूं नातौ टूट्यौ जैसे काचौ सूतरौ॥

प्रतिवस्तूपमा—

मेरो हरि गंगा को सौ पान्यौ।
पाँच बरस कौ शुद्ध साँवरौ तैं क्यों बिपई जान्यौ।

व्यतिरेक—

झूलत नवल किसोर किसोरी।
नीलांबर पीतांबर फरकत उपमा घन दामिनी छबि थोरी॥

परिकर—

नैनहिं नैन मिलै मन अरुझ्यौ यह नागरि वह नागर।

परिकरांकुर—

सुन्दर मुख की बलि बलि जाऊँ।
तामें मुस्काय हरत मन न्याय कहत कबि मोहन नाऊँ।

विषम—

तबकी प्रीति अबकी रुखाई फिरि पाछे बूझत नहिं बात।

काव्यार्थापत्ति—

राधा माधौ बिनु क्यों रहै।

काव्यलिंग—

स्रवनन कुसुम जराऊ राजै लर द्वै द्वै दुहूँ ओर।

× × ×

चल दल पत्र प्रवाल ब्रज सो कौंधल कंपित जोर।

अर्थान्तरन्यास—

बदरिया तू कित ब्रज पर भोरी।
'परमानन्द प्रभु' सो क्यों जीवै जाकी बिछुरी जोरी।

पर्यायोक्ति—

सो को जो न करी बस अपने जा तन में कहुसि चितैय्या।
'परमानन्द प्रभु' कुँवर लाड़िलो अबहि कछु भींजत मसिया॥

अन्योक्ति—

सरिता सिन्धु मिली 'परमानन्द' एक टक बरस्यो मेह।

अतिशयोक्ति—

कमल नयन के एक राम पर वारौं कोटि मनोज

लोकोक्ति—

माधौं सों कत तोरिए ।
कीजै प्रीति स्याम सुन्दर सों बैठे सिंह न रोरिए ।

स्वभावोक्ति—

लाल अंगूठा गहि कमल पानि मेलत मुख माँही ।
अपनो प्रतिबिंब देखि देखि मुसुकाहीं ।।

छन्द—यति, गति और लयादि के नियमित बंधन का ही नाम छन्द-विधान है । अपने गेय पदों को परमानन्ददास जी ने अनेक छन्दों में बाँधा है और विविध प्रसंगों के अनुकूल ही छन्दों का विधान किया है । उनके काव्य में कुकुभ, विष्णुपद, शंकर, सिंह, सार, ताटंक, चवपैया, प्रिय, रोला, विलास, हरिगीतिका, झूलना, चौपाई, चौपई, दोहे, रोला, रूपमाला, समान चवपैया, लावनी सखी, हँसाल, विजया आदि छन्द मिलते है । कवि पर विदेशी छन्द शैली का भी प्रभाव है । उन्होंने छन्दों में मात्राओं की अपेक्षा गति और संगीतात्मकता का ही विशेष ध्यान रखा है संगीत के बंधान में यति-भंग की चिन्ता नहीं की है ।[1] फिर भी उनके छन्द विधान को देखने हुये हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते है—

१ **कुकुभ—**

चरन कमल वन्दौं जगदीस के जे गोधन संग धाये ।
जे पद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उर लाए ।।

विष्णुपद—

आज गोकुल बजत बधाई ।
नन्द महर के पुत्र भयौ है आनंद मंगल गाई ।।

शंकर—

जन्म फल मानत जसोदा माय ।
जब नंदलाल धूरि धूसर वपु रहत कंठ लपटाय ।।

सिंह—

प्रगट भये हरि श्री गोकुल में ।
नाचत गोपी गोप परस्पर आनंद प्रेम भरे हैं मन में ।।

सार—

तुम जो मनावत सोई दिन आयो ।
अपनो बोल करो किन जसुमति लाल घुटुरुवन धायौ ।।

ताटंक—

देखोरी यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है ।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन, देखत चंद लजाया है ।।

चवपैय्या—

सुनो हो जसोदा, आज कहूँ ते गोकुल में एक पंडित आयो ।
अपने सुत को हाथ दिखायौ सो कहै जो विधि निरमायौ ।।

प्रिय—

देखत ब्रजनाथ बदन कोटि वारौं ।
जलज निकट नैन मनि, उपमा बिचारौं ।।

(१) उन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी सम-विषम मात्रिक छन्दों के प्रयोग किये हैं।

(२) छन्दों में मात्राओं की अपेक्षा उन्होंने गति और संगीतात्मकता का ही विशेष ध्यान रखा है।

(३) रसिए, लावनी, चौबोले आदि ब्रज के प्रसिद्ध गाये जाने वाले पदों को ही वे अधिक पसंद करते हैं।

(४) वे समसामयिक वैष्णव भक्त जैसे सूरदास, कृष्णदास, कुम्भनदास आदि का भी पूरा पूरा प्रभाव ग्रहण किए हुये हैं।

(५) कहीं कहीं वे उर्दू फारसी छन्द शैली को भी अपनाए हुए हैं।

रोला—

हरि रस ओपी सब गोप तियन ते न्यारी।
कमल नयन गोविंद चंद का प्रानन प्यारी॥

बिलास—

कोटिऊ ते कठिन भृकुटि की ओट।
सराहू ते सरस सब्द की चोट॥

गीतिका—

आवति आनन्द कंद दुलारी।
विधु बदनी मृगनयनी राधा दामोदर की प्यारी।

झूलना—

मदन गोपाल बलैये लैहों।
वृन्दा विपिन तरनि तनया तट चलि ब्रजनाथ आलिंगन देहों।
सघन निकुंज सुखद रति आलय नवकुसुमन की सेज बिछैहों॥

चौपाई—

सुनि मेरौ बचन छबीली राधा।
तैं पायौ रस सिंधु अगाधा॥
जो रस निगम नेति नित भाख्यौ।
ताकौ तें अधरामृत चाख्यौ॥

चौपई—

कालिंदी तीर कलोल लोल।
मधु रितु माधौ मधुर बोल॥

दोहा—

राधे तू बड़ भागिनी, कौन तपस्या कीन।
तीन लोक के नाथ हरि, सो तेरे आधीन॥

रोला—

घर घर मंगल होत कहा है आज तुम्हारे।
बहुत बिध करत रसोई, हूँ मध्य गयो सकारे॥

रूपमाला—

मोहीं देख सब कोई, कह्यौ यहां बिन आवौ लाल
देव अग्य हम करत हैं कर पकवान रसाल

लावनी—

तू बनि आई नन्द जू के द्वारे, तेरी बात चलाई री।
खान पान सब तज्यौ साँवरे लै सब लियौ चुराई री॥
कौन नन्द काको सुत सजनी, मैं देख्यौ सुन्यौ न माई री।
फूँकि फूँकि हौं पाई धरत मेरे पैंडे परै जुगाई री॥

सखी—

चलहु तौ ब्रज में जैये।
जहाँ राधा कृष्ण रिझैये।
ब्रखभान रजा घर आए।
तहँ अति रस न्यौति जिवाए।

उर्दू बहरों की सी शैली—

बने माधौ के महल।
जेठ मास अलि जड़ात।
माघ मास कहल।
दूर भए देखियत बादर कैसे पहल।

हंसाल—

माई साँवरी गोविन्द लोला।
ग्वालि ठाड़ी हँसै, प्राण हरि में बसैं कामबौं बावरी चारु बोला।
आयरी, ग्वालिनी, मेलदे बाछरी, आन दै दोहनी दै हाथ मेरे।

विजया—

अति मंजुल जलप्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति तरिनि नंदिनी।
श्याम बरन झलकत रूप, लोल लहर वर सेवित, संतन मनसिज ताप मंदिनी॥

ताटंक (रसिया शैली)—

आरति जुगल किशोर की कीजै।
तन मन धन न्यौछावर कीजै॥

कीर्तनकार परमानन्ददास जी

भक्ति अथवा उपासना का संगीत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव बुद्धि ने जब से किसी उपास्य की भावना की युगपद् उसका भाव-सागर भी अपने उपास्य की स्तुति में संगीतात्मक होकर उद्वेलित हो उठा था और उस उपास्य के अप्रत्यक्ष होने पर भी वह भाव-दशा में लयात्मक होकर गा उठा था—'कस्मै देवाय हविषा विधेम।' अतः भक्ति और संगीत का आत्मा और शरीर जैसा परस्पर गाढ़ सम्बन्ध है। सगुण भक्ति में तो कीर्तन भक्ति का दूसरा स्थान है। अतः सभी भक्तों ने कीर्तन पर अत्यधिक महत्त्व दिया है। इस कीर्तन भक्ति के दो स्वरूप पाये जाते हैं :

१—नाम-कीर्तन अथवा ध्वनि गान।

२—पद-संकीर्तन अथवा लीला गान।

पुष्टि सम्प्रदाय में दोनों ही प्रकार के कीर्तन प्रचलित हैं। अष्टछापी भक्तगण मुख्यतः लीला गायक हैं अतः इन भक्तों में संगीत की उच्चकोटि की साधना मिलती है। भगवान् गोवर्धननाथ जी के समक्ष जब कीर्तन की नियमित व्यवस्था हुई तो रागों की शास्त्रीयता को भी पूरा-पूरा महत्त्व दिया जाने लगा और इस प्रकार सम्प्रदाय में शुद्ध शास्त्रीय संगीत की परम्परा प्रारम्भ हुई। उस परम्परा को चरम विकास भी इन अष्टछापी कवियों ने अपनी विशिष्ट कीर्तन पद्धति द्वारा दिया। जिसमें सम्प्रदाय के कतिपय अपने विधि—निषेध भी स्वीकृत हुए। उन सब विधि विधानों के साथ आज भी सम्प्रदाय में कीर्तन पद्धति प्रचलित है और उन्हीं अष्ट सखाओं के कीर्तन सम्प्रदाय के भगवन्मन्दिरों में आज तक गाए जाते हैं।

परमानन्ददास जी उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। उनमें भारत की पुरातन शास्त्रीय शैली के—जो ध्रुपद धमार शैली कही जाती है—दर्शन होते हैं। वे सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही उच्चकोटि के गायक थे। महाप्रभु जी से दीक्षित होने के उपरान्त वे श्री नवनीतप्रिय जी के समक्ष कीर्तन करते थे। ब्रज में आने के उपरान्त और श्री गिरिराज पर गोवर्धननाथ जी के मन्दिर के कीर्तन सेवा ग्रहण करने पर वे अहर्निश भगवद् गुणगान ही करते रहते थे, परन्तु उनका विशिष्ट समय अथवा 'ओसरा'—मंगला, राजभोग, उत्थापन और भोग था। कवि इन समयों पर तो प्रभु के समक्ष कीर्तन सेवा करता ही था, वैसे भी वह अहर्निश कीर्तन गान में रत रहता था। सम्प्रदाय-कीर्तन क्षेत्र में उनका अपना विशिष्ट स्थान है, उनके पदों को विशेष अवसरों पर, विशिष्ट पर्वों पर गाया जाता है। अतः सभी अष्टछापी कवियों के कीर्तन वैदिक मंत्रों की सी मान्यता प्राप्त किये हुए हैं; जो श्रीनाथ जी के समक्ष विशिष्ट अवसरों पर नैत्यिक अथवा वार्षिक गाये जाते हैं। परमानंददास जी ने लगभग ४० रागों[1] में अपने पदों को प्रस्तुत किया है।

---

१ परमानन्ददास जी द्वारा प्रयुक्त राग —

गौरी—मोहन नेकु सुनहुगे गौरी।

आसावरी—आजु नीको बन्यौ राग आसावरी।

मलार—ठाढ़े हंसत राधिका मोहन राग मलार जमायो

सारंग—गावत मुदित खिरक में गोरी सारंग मोहिली

केदारा—मधुरे सुर गावत केदारो परमानन्द निजदासी।

इनके अतिरिक्त—देवगंधार, रामकली, बिलावल, जैतश्री, धनाश्री, भैरव, मुलतानी, मालश्री, कानड़ा, नट, अड़ाना, मालकोस, बिहाग, पूर्वी, सूहा, मलार पूर्वी, कल्याण, विभास, जैजैवंती, बसंत, चर्चरी, टोड़ी, काफी, यमन, मालव, सोरठ, ललित, सूरसारंग, नायकी, गूंजरी, मारू, बिहागरो, गौड़मलार, मेघमलार शुद्ध मलार आदि।

उनकी अपनी 'सारंग' छाप थी। सारंग मध्याह्न का राग है। कवि का कीर्तन सेवा का समय विशेषकर मध्याह्न अर्थात् राजभोग का था। उन्होंने गायन, वादन[1] एवं नृत्य[2] की पूरी-पूरी प्रामाणिक चर्चा की है। अनेक वाद्यों के नाम गिनाये हैं। नृत्यों के विविध भावों और उत्तरी भारत की संगीत शैली की भरपूर चर्चा की है।

परमानन्ददास और ब्रज संस्कृति

लोक जीवन की सर्वमान्य, सर्व अभ्यस्त एवं सर्वव्यवहृत परिमार्जित परम्पराओं को संस्कृति नाम दिया जाता है। इसके कई रूप हैं—राष्ट्रीय संस्कृति, सामाजिक संस्कृति, प्रादेशिक संस्कृति आदि। पुष्टि संप्रदाय का केन्द्र स्थल भगवान् श्रीकृष्ण की लीला भूमि ब्रज प्रदेश रहा है। अतः सभी अष्टछापी महात्माओं के अमर काव्य में ब्रज-संस्कृति का ही आनुषंगिक चित्रण हुआ है। इन ब्रज-भक्तों की काव्य-साधना में ब्रज-संस्कृति स्पष्ट प्रतिबिंबित हुई है।

संस्कृति सामाजिक परम्परागत व्यवहार है और समाज व्यक्तियों से निर्मित होता है अतः समाज की सर्वमान्य परम्परागत मान्यताओं का अनुगामी होने के लिए व्यक्ति बाध्य है। अतः ब्रज भक्तों का अमर काव्य स्वांतः सुखाय होते हुए भी लोक-बाह्य नहीं है न उसे नितान्त ऐकान्तिक कहा जा सकता है। उसमें मर्यादामय एक भावुक समाज की दिव्य परम्पराओं का अनुकथन है, जिसमें हमें उसके आचार, विचार, व्यवहार, संस्कार, खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज पर्व-उत्सव, कला-कौशल-दर्शन-विज्ञान और उपासना आदि सभी का संश्लिष्ट चित्रण मिल जाता है।

विशाल भारत के आर्यावर्त के अन्तर्गत ब्रह्मावर्त प्रदेश में गंगा-यमुना के मध्य के भू-भाग को अन्तर्वेद पुकारा जाता था। उसी की पश्चिमी संस्कृति का नाम ब्रज-संस्कृति है। यह आर्यों का सनातन देश रहा है। इसी में पूर्ण पुरुषोत्तम, मर्यादा पुरुषोत्तम और लीला पुरुषोत्तम राम और कृष्ण के अवतार हुए हैं।

इसी प्रदेश के ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, धर्म तथा कला-कौशल आदि ने सभ्य मानव की विकसिततम अवस्था का प्रतिनिधित्व किया है और इसी कारण इसे विश्व-गुरुत्व का गौरवपूर्ण आसन प्रदान किया गया था। इसी मानव-संस्कृति ने अरण्यों में जन्म लेकर भी बड़े-बड़े विशाल राष्ट्रों की चरम नागरिकता को चुनौती दी थी।

सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि से दीप्त मुक्त गगन के नीचे और निसर्ग रमणीय लता वृक्षादि से संकुल शस्य श्यामला उर्वरा वसुन्धरा के वक्ष पर शैल सरिताओं से आवृत ब्रज प्रदेश में

---

१ वाद्य चर्चा—
बाजत चंग मृदंग अघोटी।
पटह झाँझि झालरी सुर घोरी।
ताल रबाब मुरलिका बीना मधुर मन्द उघटत मुनि थोरी
ताल किन्नरी, ढोल दमामो भेरि मृदंग बजायो।

२ नृत्य चर्चा—
नर्तत मण्डल मध्य नन्दलाल।
(१) ताल मृदंग संगीत बाजत हैं ततथेई बोलत बाल।
उरप तिरप तान लेत नटनागर गावत गन्धर्व गुनी रसाल।
(२) ततथेई, ततथेई थेई करत गोपीनाथ नीकी भाँति।
(३) रास मण्डल मध्य मण्डित मोहन अधिक सोहत लाड़िली रूप निधान।
हस्तभेद, चरन बाहु निर्तत आच्छी भाँतिन मुखहास, भौंह विलास लेत नैनन ही मान।।

प्राकृतिक जीवनयापन करते हुए, भूतदया का दिव्यतम आदर्श लिए हुए गोप सभ्यता में पले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा आचरित संस्कृति का मूल मन्त्र लोक कल्याण और "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" था। सुरसरि की जीवन धारा की भाँति यही निर्मलतम संस्कृति समूचे विश्व की सिरमौर संस्कृतियों में समझी जाती थी।

रागानुगा भक्ति के परम पोषक आचार्य वल्लभ ने गोप सभ्यता में पली ब्रज गोपांगनाओं को ही अपना आदर्श माना था, और इन्हीं की प्रभु भक्ति को एकमात्र आदर्श मानकर इन्हीं की संस्कृति को अपनाया था। अतः अष्ट सखाओं को भी यही संस्कृति मान्य थी। इसी की सम्पूर्ण झलक उनके काव्य में सर्वत्र पाई जाती है। इसी प्रदेश के आचार-विचार व्यवहार और संस्कारों का वर्णन उनके काव्य में मिलता है। परमानन्ददास जी ने भी लोक जीवन का कोई ऐसा अङ्ग अछूता नहीं छोड़ा है जिसमें ब्रज-संस्कृति के दर्शन नहीं हो जाते। कृष्ण लीला गान के मिष से जन्म[1], छटी[2], नामकरण[3] से लेकर विवाह[4] तक के समस्त

१ **जन्म—**

(अ) सुनोरी आज मंगल नवल बधायो है।

× × ×

वेदोक्त गोदन द्विजन को अनगिन द्यायो है

गरग परासर अन्वाचार्य मुनि जात कर्म करायो है

(आ) **वर्ष ग्रन्थि—**

सुनियत आज सुदिन सुभ गाई।

बरस गाँठ गिरिधरनलाल की बहोरि कुसल में आई।

निछावर दानादि—

नन्द महोच्छव हो बड़ कीजे।

× × ×

कंचन कलस अलंकृत रतनन विप्रन दान दिवाई।

नेग वितरण—

नन्द बधाई दीजे ग्वालन।

२ (क) **छठी पूजन—**

मंगल द्यौस छटी कौ आयौ।

(ख) **अन्न प्राशन—**

अन्न प्रासन दिन नन्दराय को करत जसोदा माय।

(ग) **कर्ण वेध—**

गोपाल के बेध करन कौ कीजै।

३ **नाम करण—**

जहाँ गगन गति गर्ग कह्यौ

यह बालक अवतार पुरुष है 'कृष्ण' नाम आनन्द लह्यौ।

करवट

करवट लई प्रथम नन्द नन्दन।

भूमि उपवेशन

करतें उतारि भूमि पै राखे,

संस्कार ब्रज की रीतियाँ, वेष भूषा, ज्योतिष सम्बन्धी विचार, धार्मिक परम्पराएँ व्रत, उत्सव, पर्व खेल, क्रीड़ा, खान-पान भोजन की विविध सामग्री एवं पकवान आदि से लेकर राजनीति राजस्व की चर्चा करके धार्मिक परम्परा मूर्ति पूजादि सब की चर्चा की है। इस प्रकार ब्रज संस्कृति और ब्रज प्रदेश की महत्ता को उन्होंने अपने काव्य में यत्रतत्र प्रदर्शित किया है। यही प्रदेश उन्हें अपनी साधना के लिए अत्यन्त उपयोगी जान पड़ा और इसी के प्रेम में अभिभूत होकर वे बैकुण्ठ तक को तुच्छ समझते हैं—कहा करूँ बैकुण्ठहि जाय।

परमानन्ददास जी की भाषा

परमानन्ददास जी ब्रज भाषा के रस सिद्ध कवि हैं। उनकी भाषा के सौष्ठव, माधुर्य एवं वैभव को देखकर पाठक न केवल आनन्द विभोर ही हो जाता है, अपितु विस्मय विमुग्ध होकर आश्चर्य के सागर में गोते खाने लगता है। अभिव्यक्ति की कुशलता, वर्णध्वनि की मधुरता, चमत्कृति की चारुता, चित्रोपमता, आलंकारिक सजीवता के साथ साथ समन्वय की साधना परमानन्ददास जी की विशेषता थी। परमनन्ददास जी कन्नौज निवासी थे। अतः उनकी भाषा कन्नौजीपन को लिए हुए है। कन्नोजी स्वयं ब्रज का एक परिवर्तित रूप है। अतः उनकी ब्रज भाषा पुष्ट, प्रांजल व्यवहार्य और सबल है जिसमें तत्सम तद्भव, देशज शब्दों के प्रयोगों के साथ-साथ लोकोक्तियों, वाग्धाराओं, (मुहावरों) के उपयोगों के साथ अन्य प्रान्तीय शब्दों का सुष्ठु प्रयोग मिल जाता है। उनकी भाषा में पाठकों को भावमग्न और रसनिमज्जित करने की अपूर्व क्षमता है। उसमें उच्च कोटि की व्यंजकता, लाक्षणिक वक्रता तथा संक्षिप्तता भी है। साथ ही उसमें मध्यकालीन ब्रजभाषा का चरमोत्कर्ष दृष्टिगत होने के साथ साथ खड़ी बोली के युगारम्भ होने के दर्शन होने लगते है। बुन्देली के शब्दों एवं क्रियापदों के प्रयोग के साथ राजस्थानी, मालवी के भी प्रयोग मिल जाते हैं।

इसके अतिरिक्त संस्कृत तत्सम शब्दों की प्रयोग बहुलता के साथ समास शब्दों के एवं समासान्त पदावलियों के अनायास प्रयोग और श्रुति मधुर शब्दावलियों के साथ नाद-सौंदर्य और संगीतात्मकता के पुष्कल उदाहरण भी उनकी भाषा में मिल जाते हैं। तद्भव, देशज, ठेट ब्रज के शब्दों के साथ मुहावरों का प्रयोग देखते ही बनता है। संक्षेप में उनका उच्च कोटि का भाषा-वैभव उन्हें महात्मा सूर के समकक्ष स्थापित कर देता है।

निम्नांकित पाद-टिप्पणी के कतिपय उदाहरणों से हम परमानंददास जी की भाषा के सम्बन्ध में इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

(१) उनकी भाषा में ब्रजभाषा का विकसिततम रूप मिल जाता है।

(२) उनकी ब्रजभाषा शुद्ध, पुष्ट, प्रांजल और संस्कृत मय है।

यज्ञोपवीत

परमानन्ददास को ठाकुर काँधे पर्‌यो न तागो

वाग्दान

आज ललन की होत सगाई।

× × ×

वृषभान गोप टीका दै पठयौ सुन्दर जान कन्हाई।

विवाह

व्याह की बात चलावन आए।

सजनी री गाओ मंगलचार।

भामर लेत प्रिय और प्रियतम तन मन दीजै वारी —आदि

(३) तत्सम[1], तद्भव[2] एवं देशज[3] शब्दों के अतिरिक्त अरबी[4] फारसी[5] शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

---

१ **तत्सम**

अन्तर, अक्षत, अनुराग, अमित, अभ्यंग, अलंकृत, आचमन इक्षुदण्ड, इन्द्रनीलमनि, उच्छलित, उत्थापन, उपदेश, उत्संग, उपहार, उलूखल, अँगुष्ठ, कृशोदरि, कुसुमायुध, कुंचित, कुंतल, गोरज, ग्रथित, त्रिभुवनपति, निर्मत्सर, नराकृति, प्रतिबिंब, परिरंभण, महोत्सव, महाकाय, वेदोक्त, विरंचि, विषमासन, वल्लभ, संभाषण, विपदभूमि। आदि

समास शब्द एवं समास-पदावली

आनन्द-ह्रद-कल्लोल, उदरदाम, विश्वंभर, भुवमंडल, पद्मनाभ, गोपवेश, रसन दशन, जानुपाणि, रतन जटित, धूरि-धूसर-वपु, नील-वसन, श्रमजल, वदन-सुधा-निधि भाग्य-पुरुष, कुन्तल अलिमाल, जलद कंठ, पीतवसनदामिनी मंडित तारागण, मत्तकरिणीवत्, महापतित द्विज, दीप-अपेक्षा, वेणी चलित खसित कुसुमाकर, कटिकिंकणी कलराव मनोहर क्वासि क्वासि, सघन निकुंज सुखद रति आलय, हेम लता तमाल अवलंबित, भाव-समागम, जग्य पुरुष आदि।

नाद-सौंदर्य

झनक मनक, खनक खनक, तनक तनक, कनक, कटि किंकिन कलराव मनोहर, कुण्डल झलक परत गंडनिपर, छगन-मगन, दोहन, मंडन, खंडन लेपन, चंचल चपल चोर चिंतामणि, बाहुदंड कर अम्बुज पल्लव आदि।

संगीतात्मकता

माखन चोरत भाजन फोरत, अलकावलि मधुपनि की पाँति, मुक्तामणि राजत उर ऊपर, चंचल अचपलकुचहारावलि सघन निकुंज सुखद रति आलय, कुसुम माल राजत उर अन्तर, कटि किंकणी कुणित कछनी आदि।

२ **तद्भव**

अकाथ, अचंभा, नागस, असाध, अनत, असीम, अमरत, अन्तरगति, इन्द्र, उछंग, उनमद, अकुंस, कुनिल, गृह कारज चौगुनो, थोख, धीम, पूत, न्यौति, बघनखना, बतरस, भाग्यौ, भीतर, महोच्छव, हरिनाछी, राजधानी, लौलीन, पौन, बेग। आदि

३ **देशज**

बीथिन, बैटो, बिहाल, बिन्दुका, डिठौना, मीड़े, राती, रनियाँ, रिगना, अघात, आरोगत सौह, हुलसौ, अलार, अनेरो, अथाई, अघाउँ, उराहनो, उबकत, एतो, एथत, ओट, ओसर, होड़ाहोड़ी, कहानी किवार, कौंधति, चौंधा, गाजि, गोधि, छाक, जेबरी, झोंटा, झाँपन, झूमकरा, ढोल, ठगौरी, ढोटा, त्यौहार, निहोर, नाज, पुरई, पाहुनी, बिजुकानी, मनुहार, रांगत, उबरो, लरिका, हटरी, हवतबा, हिलम साँट आदि :

अवधी

अनत, अनुहरत, उगार, उबर्यो, ओन, ओभा, ओसर, काँखासोती, खवासी, खुभी, गहक जाचक, झीनी, टकुटकु, दोहिलो, पेसि, बरिस, नकवान्यौ, बिलुग, वेग, बटाऊ, मोट, रहसि, लटुवा, लरिका, सचुपाई, सरवरि, सुवन: बसीठ। आदि

खड़ी बोली

किवाड़, कीच, खिलौना, खटको, गद. जंजाल, तोल, टहल, दहल, दाँव, बखट, बिदेस, दगला, झगड़ो, तुम्हारे, त्यौहार, तमक, दरेर, पनी, बानिक, महल, सलूनो, सिरताज, मोल, कहानी, पूँजी, भिखारी।

(४) कवि की भाषा में प्रवाह के साथ माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुण मिलते हैं।

(५) भावाभिव्यक्ति के साथ कवि के पाण्डित्य एवं बहुज्ञता के दर्शन होते हैं।

विदेशी

आब, इजार, उयाल, एलान, ओझल, गनी, खासा, खुनस' खसम, खवासी, जसन (जश्न) जासूस, जंगी, तागो, तापता, तमासो, दरखत (दरख़्त) दमामा, दगा, दाग, दफतर, दहल, दीवान, दाद, दर, नाहक, नाज, निहाल, बंदिस, बला, बेहाल, मैदान, महक, मखतूल, मौज, मवासी, लायक, शहनाई, सोर (शोर) सेहरा, सहल सौदा, सिरताज, हयाली आदि।

मुहावरे

फूले फिरत, कुल दीपक, पुजे मन के काम, फूली अङ्ग न समाई, चन्द्र लजाया है, कल न परत, टेढ़ी दृष्टि, कहे सो थोरी, अखियन तारो, गढ़ि गढ़ि छोल बनावत, भाग-दशा, हाथ बिकानों, कहा रंक कहा रानो ! डगर बताई, मन खटको, लाज कुआ में पटको, मिलो निसान बजाई, फूँकि-फूँकि हौं पाइ परत, सोवत सिंह जगायो, पूँजी सी खोए, देख दाहिनो बांयो, आदि।

लाक्षणिक प्रयोग

जमुना थाह भई, पूतना सोखी; तिहूं लोक को खंभ; देवता जाकी करत किवार; एक टक बरस्यौ मेह, दृष्टि भई कलिकाल।

शब्दों का मनमाना प्रयोग

कुल कालक; अद्‌भूत, बरीसो, बनियाँ, घतन, बाछी, रनियाँ, संखोद, सुयं, पान्यौ, नकवान्यौ, मंग, (मंग) मुसकि, सलक (शलाका), अवतौर, बेरी (विलंब), भदैया (भाद्रपद), खिच (खिचड़ी) इच्छ (इच्छा) रहसि (हरषि) आदि।

च्युत संस्कृति

शोधना (शोध ही पर्य्याप्त था) पवन (पुल्लिग) कृपा स्त्रीलिंग है परन्तु कवि ने 'पवन कृपा कैसो की', लिखा है।

कतिपय क्रियापदों के उदाहरण

ब्रज में वर्तमान काल में क्रिया ह्रस्व अकारांत हो जाती है—

भजत, फिरत, मनावत, देत, होत आदि। स्त्रीलिंग में वही ह्रस्व इकारान्त हो जाती है—

निहारति, बूझति, देति, कहति आदि। कहीं-कहीं एकारान्त क्रियाएँ वर्तमान काल में प्रयुक्त हुई हैं—

आवै, भावै, बिलोबै, जावै, खोवै। आदि

ओकारान्त

बारौं, आबौ, लागौं आदि

खड़ी बोली

जाया है, लजाया है, लै गए, देखे, मारेगी, जिआऊँगी।

ब्रज के भविष्यत् के प्रयोग—

बोलेगो, डोलेगो, किलोलेगो आदि

अवधी के भविष्यत् के प्रयोग—

देहौं, जैहौं, परिहौं, पूजिहैं, जाउब, खाउब, पाउब आदि

बुंदेली—

जैहैं, फगुवा लै गारी न दैहै; कँगना माँझ बँधैहैं। आदि

(६) परमानन्ददास जी में शब्द चित्र प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता है। अष्टछाप में सूर के उपरान्त यदि किसी को भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से महत्ता दी जा सकती है तो परमानन्ददास जी को ही।

(७) उनमें खड़ी बोली सर्वाधिक सुप्रयुक्त पाई जाती है। उन्हे खड़ी बोली का बेताल कहा जा सकता है।

(८) सौंदर्य, माधुर्य, भक्ति और दर्शन आदि के पदो में उनकी भाषा उच्चकोटि की सुसंस्कृत हो गई है।

कवि की बहुज्ञता

परमानन्ददास जी के काव्य का गंभीर अनुशीलन करने पर हम दो तथ्यों पर पहुँचते है—

१—कवि का उद्देश्य, कविता न होकर लीलागान द्वारा भक्ति-रस का आस्वादन और भगवन्माहात्म्य का प्रतिपादन करना था।

२—कवि उच्चकोटि का विद्वान्, काव्य मर्मज्ञ, संगीतज्ञ एवं बहुज्ञ था।

उसके दार्शनिक सिद्धान्त आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तानुकूल थे। अतः वह दार्शनिक सिद्धान्तों के पचड़े में अधिक नहीं पड़ा। उसके गुरु ने उसे 'कृष्ण भजन' का सीधा सा राज डगर बता दिया था जिस पर वह आजीवन चलता रहा। भक्ति-भावना की निष्पत्ति के लिए उसने गुरु वचन में असीम आस्था रखकर भागवत का मनन, अनुशीलन एवं सुबोधिनी का श्रवण एवं अनुसरण किया और उसी के अनुसार भगवल्लीला के रहस्यों को वह अपने पदो में निबद्ध करता रहा। भगवल्लीला-गान में ही उसकी सम्पूर्ण रसिकता, कवि सुलभ कोमलता, भावुकता और एक संगीतज्ञ की कलात्मकता का समावेश हो गया है। उसी काव्य-सागर में उसकी बहुज्ञता के भी दर्शन हो जाते हैं।

कवि ने ज्योतिष[1], न्याय[2], संगीत, पाकशास्त्र[3] आदि के ज्ञान का स्थान-स्थान पर परिचय दिया है। वेशभूषादि[4] की भी अनेक स्थलों पर चर्चा की है।

परमानन्ददास जी का पौराणिक ज्ञान भी अच्छा था। उनके अनेक पदों में अनेक पौराणिक आख्यानों की चर्चा है[5] भागवत और पद्मपुराण की तो स्पष्ट चर्चा की है। पद्म पुराण भागवत के उपरान्त सबसे अधिक भक्ति प्रतिपादक ग्रन्थ हैं। भागवत माहात्म्य के प्रारम्भिक ६ अध्याय पद्म पुराण से ही लिए गए हैं। अतः पद्म पुराण से उसने यमुनादि तीर्थों का माहात्म्य और जगद्गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य से भागवत को श्रवण किया और भागवत के बीज भाव-गोपी भाव की यावज्जीवन साधना करता रहा।

अष्टछाप के कवियों में परमानन्ददास जी का स्थान

महाप्रभु आचार्य वल्लभ एवं गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के ये आठों शिष्य ब्रजभाषा काव्य एवं कृष्ण भक्ति में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यों तो किन्हीं भी दो भक्त

१ देखो परमानन्द सागर
२ ,,
३ ,,
४ ,,
५ ,,

कवियों की तुलना परस्पर करना कठिन होता है, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से विद्वज्जन स्वान्तः सुखाय कभी-कभी इन भक्त कवियों का तारतम्य से साहित्य में स्थान निर्धारण करने का प्रयत्न किया करते हैं जिससे अन्य साहित्यिकों अथवा आलोचकों को कुछ मार्ग दर्शन मिले। इसमें उन विद्वानों का उद्देश्य केवल आत्मसुख ही होता है, और कुछ नहीं। इस प्रकार किसी आलोचक के द्वारा मन: पूर्त ऊँची नीची भूमि पर बिठा देने से इन भक्त कवियों के महत्त्व में कोई बाधा नहीं पड़ती। अत: कतिपय आलोचकों[1] ने काव्य-परिमाण की दृष्टि से इन आठों महानुभावों का क्रम इस प्रकार रखा है—

१—सूरदास
२—नंददास
३—परमानन्ददास
४—कृष्णदास
५—कुम्भनदास
६—गोविंद स्वामी
७—चतुर्भुजदास
८—छीत स्वामी

काव्य कला और भावानुभूति की दृष्टि से इनका क्रम इस प्रकार रखा जाता है—

१—महात्मा सूरदास
२—परमानन्ददास
३—नंददास
४—कुम्भनदास
५—चतुर्भुजदास
६—कृष्णदास
७—छीत स्वामी
८—गोविंद स्वामी

इस प्रकार का क्रम निर्धारण अपनी व्यक्तिगत रुचि का भी परिचायक हो सकता है। फिर अभी आठों ही महानुभावों का पूरा-पूरा काव्य साहित्य-जगत में आया भी नहीं है अत: उपर्युक्त क्रम अन्तिम नहीं कहा जा सकता। अब तक के साहित्य के आधार पर सूर के उपरान्त परमानंददास जी का ही नाम आता है। इनके पश्चात् कुम्भनदास कृष्णदास आदि का।

अब तक के उपलब्ध काव्य-परिमाण की दृष्टि से भले ही किसी कवि को कहीं रख दिया जाय परन्तु सभी का अपना एक विशिष्ट क्षेत्र है जिसमें वह अद्वितीय और अप्रतिम है। उदाहरणार्थ—सूर बाल लीला, मान लीला और विप्रलंभ के लिए प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र में उनकी टक्कर का दूसरा कवि नहीं। इसी प्रकार परमानंददास जी बाल, पौगंड और किशोर लीला के सरस चित्रण में अनन्य और अद्वितीय हैं। विप्रलंभ में भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से वे सूर के समकक्ष ठहरते हैं। यदि प्रज्ञाचक्षु सूर ने अन्तरंग उत्कट प्रेम की अभिव्यक्ति में और मानवती राधा के मनोवैज्ञानिक चित्रण में साहित्य को सजीव सम्पत्ति प्रदान की है तो भक्त प्रवर परमानंददास ने भी किशोर लीला में यौवन के वासन्तिक उन्माद में चिरवसन्त का संदेश

१ देखिये अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय—डा० दी० द० गुप्त

दिया है। दिव्य प्रेम की अमरता और सौंदर्य-साहचर्य की गहरी प्रणयानुभूति को कवि ने बड़ी सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। युगल-लीला की मादकता में कवि स्वयं इतना आत्म-विभोर हो गया था कि उसे बाह्य-जगत् अथवा लोक मर्य्यादा का भान ही नहीं रह गया था। उसका किशोर लीलात्मक काव्य एक दम ऐकान्तिक, रागानुगा भक्ति-सम्पन्न केवल ब्रज भक्तों के काम का हो गया है। उसके प्रेम-प्रवाह में मर्य्यादा के विशाल प्रस्तर खण्ड सहज ही लुढ़क गये और 'लोक वेद की कानि' की सुदृढ़ प्राचीर शिथिल सैकत राशि की भाँति ढह गई। भावुक कवि ने कृष्ण के प्रति एक अनायास आसक्ति में 'सर्वस वार' देने की मनोवृत्ति का परिचय दिया है। युगल लीला के रसाब्धि में कवि चूड़ान्त अवगाहन करके जिस आनन्द सुमेरु पर विचरण करता था वह इस पार्थिव जगत् की कल्पना से सर्वथा परे है। इसकी गहराई अथवा आनन्द की अभ्रंलिह ऊँचाई अनुभूति की वस्तु है, शब्दों की नहीं। इस क्षेत्र में परमानंददास जी अष्टछापी कवियों में मूर्द्धन्य हैं। अपनी अलौकिक रसमयता के कारण उन्हें ऐन्द्रिक कथमपि नही कहा जा सकता। वे भाव-क्षेत्र के एकान्त भावुक कवि हैं। उनकी स्वर्गीय काव्य मंदाकिनी मे अवगाहन करने वाला पाठक तन्मय होकर देहानुसंधान खो बैठता है। उनकी काव्य शक्ति अप्रतिम है।

हिन्दी साहित्य को परमानंददास जी की देन

राधा-कृष्ण की सरस प्रणय लीलासुरसरि के भागीरथ भक्तवर परमानंददास मुख्यत: विप्रलंभ की अपेक्षा संयोग शृङ्गार के ही गायक है। उनके काव्य में भगवान् की त्रिविध लीला बाल, पौगंड और किशोर के ही दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त रागानुगा-प्रेम लक्षणा भक्ति का जो दिव्य चित्रण उन्होंने किया है वह अन्य ब्रज-भक्त कवियों में तो क्या अष्टछापी महात्माओं में भी दुर्लभ है।

पुष्टिमार्ग की निखिल मान्यताओं को सरलता और सुगमता के साथ अपने काव्य में लाकर साम्प्रदायिक मर्य्यादाओं के स्वरूप स्पष्ट करने में वे अतुलनीय हैं। आचार्य महाप्रभु के प्रमुख शिष्य और सुबोधिनी के कट्टर उपासक होने के नाते वे सुबोधिनी के गहन से गहन रहस्यों को अपने सरस मधुर संक्षिप्त पदों में व्यक्त कर देने में अत्यन्त कुशल हैं। उनके पदों को यदि सुबोधिनी का भाष्य कहा जाय तो अनुचित न होगा। लीलावतारी भगवान् की प्रणय लीलाओं को इतनी पवित्रता के साथ हिन्दी साहित्य में प्रस्तुत करने वाला उनके अतिरिक्त कोई दूसरा कवि नहीं। भगवान् के माहात्म्य का ज्ञान कराकर अपने पदों के माध्यम से जन-मन को सांसारिकता से खींचकर भगवच्चरणारविंद में लगा देने में उनकी सफलता अपूर्व है। परमानन्ददास जी से अधिक भागवत का अनुसरण करने वाला शायद ही कोई अन्य कवि हो। सूर के उपरान्त ब्रज-संस्कृति का पूरा-पूरा चित्र उनके पदों मे मिल जाता है।

संक्षेप में वे 'निर्गुण-प्रीति' के अमर गायक भाव-क्षेत्र के अद्वितीय कवि हैं। उनका सूक्ष्म निरीक्षण, भाव-प्रवणता, कल्पना, अनुभूति, संगीतात्मकता तथा भाषा की सजीवता, मधुरता, सरलता सुबोधता एवं रसात्मकता सभी कुछ हिन्दी साहित्य की अमर सम्पत्ति है।

गोवर्धननाथ शुक्ल

श्री परमानंददास जी के दीक्षा गु

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य

(श्री गोविन्द जी के म

परमानन्द-स्तवन

सूर सूर जस हृदय प्रकासत।
परमानन्द आनंद बढ़ावत ॥

कुंभनदास महारस कन्द।
प्रेम भरे निज परमानन्द ॥

सर्वोपरि दास परमानन्द रे।
गाया गुणनिधि बालमुकुंद रे ॥

द्वारकेश

पौगंड बाल कैशोर, गोप लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात हुतौ, पहिलौ जसु गाई ॥
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन दिन।
गद् गद् गिरा उदार स्याम सोभा भीज्यौ तन ॥
'सारंग' छाप ताकी भई स्रवन सुनत आवेस देत।
ब्रज बधू रीति कलियुगविषे परमानंद भयो प्रेम केत ॥

नाभाद

परमानंद और सूर मिल गाई सब ब्रज रीति।
भूलि जात विधि भजन की, सुन गोपिन की प्रीति।

ध्रुवद

अष्टछाप के संस्थापक

गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी

[श्री परीख जी

❀ श्रीहरिः ❀

परमानन्द सागर

[पद-संग्रह]

विषयक्रमानुसार पद सूची

(४) छठो पूजन

(५) पलना के पद

(६) अन्नप्राशन

(२८) श्री वामन जी के पद

(२९) विजयादसमी के पद

(१३) दशहरे के पद

[३३] धनतेरस के पद

[३४] रूप चतुर्दशी के पद

[३५] गाय खिलायबे के पद

पद संख्या शीर्षक

[५६] अभिसार

पद संख्या | शीर्षक | पृ

[५७] मथुरा गमन प्रसंग

[५८] मथुरा प्रवेश

श्री हरिः

२

अथ

नित्य सेवा

के

कीर्तन

[परमानन्द सागर]

[६०] श्री आचार्य जी महाप्रभु स्मरण

[६१] श्री यमुना जी के पद

[६२] श्री गंगाजी के पद

पद संख्या शीर्षक

[६३] मंगला आरती के पद

[६४] अथ जगायबे के पद

[६५] खंडिता के पद

[६६] कलेऊ के पद

[७३] आवनी के पद

[७४] राजभोग के पद

श्री हरिः

३

प्रकीर्ण-पद

विनय, महात्म्य शरणागति

[परमानन्द सागर]

[१२३] दृष्टकूट

४

परिशिष्ट

[परमानन्द सागर]

पद संग्रह

[१२४] डोल के पद

* श्रीहरिः *

अथ परमानन्द सागर

॥ मंगलाचरण ॥

[१]

चरन कमल बन्दौं जगदीस के जे गोधन संग धाए ।
जे पद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उर लाए ॥
जे पद कमल युधिष्ठिर पूजित राजसूय में चलि आए ।
जे पद कमल पितामह भीषम भारत में देखन पाए ॥
जे पद कमल संभु चतुरानन हृदै कमल अंतर राखे ।
जे पद कमल रमाउर भूषन वेद भागवत मुनि भाखे ॥
जे पद कमल लोकत्रय पावन बलि राजा के पीठ धरे ।
सो पद कमल 'दासपरमानन्द' गावत प्रेम पीयूष भरे ॥

श्री जन्माष्टमी की बधाई

[२]

जनमफल मानत जसोदा माय ।
जब नंद लाल धूरि धूसर वपु रहत कंठ लपटाय ।।
गोद बैठि गहि चिबुक मनोहर बातें कहत तुतराय ।।
अति आनन्द प्रेम पुलकति तन मुख चुंबत न अघाय ।
आरति चित बिलोकि बदन बिधु पुनि पुनि लेत बलाय ।।
'परमानन्द' मोद छिन छिनको मोपै कह्यो न जाय ।।

[३]

आज गोकुल में बजत बधाई ।
नंद महर के पुत्र भयो है आनन्द मंगल गाई ।
गाम गाम ते जाति आपनी घर घरतें सब[1] आई ।।
उदय भयो जादौं कुल दीपक आनन्द की निधि छाई ।।
हरदी तेल फुलेल अच्छत[2] दधि बंदनवार बँधाई ।।
बंदी सूत नंदराय घर घर सबहिन देत बधाई ।
आज लाल को जनम द्यौस है मंगलचार सुहाई ।
'परमानन्ददास' को जीवन तीन लोक सचुपाई ।।

[४]

ब्रज में फूले फिरत अहीर ।
ढोटा भयो नंद बाबाकें सुखनिधि स्याम सरीर ।।
मंगल कलस दूब दधि अच्छत वेद पढत द्विज धीर ।
फूले नंदराय पहरावत छिरकत कुमकुम नीर ।।
'परमानंददास' कौ ठाकुर प्रगट्यो जादों बीर ।।

---

१ न्योति बुलाई ।
२ सुवासित ।

[५]

आज अति बाढ्यौ है अनुराग ।
पूत भयौरी नंद महरकें बड़ी बैस बड़भाग ।।
दई सुबच्छ लच्छ द्वै गैयाँ नंद बढायो त्याग ।
गुनी गनक[1] बंदीजन मागध पायो अपनो लाग ।।
फूले[2] ग्वाल मानों रनजीते आनंद फूले बाग ।
हरद दूब दधि माखन छिरकें मच्यो भदैया[3] फाग ।।
गोपी गोप ओप सब के मुख गावत मंगल राग ।
'परमानंददास' भक्तन कौ अब भयौ परम सुहाग ।।

राग रामकली

[६]

सुनोरी आज [मंगल] नवल बधायो है ।
नंदमहर घर रानी जसोदा ढोटा जायो है ।।
घोख-घोख प्रति गलिन-गलिन प्रति आनंद दरसायो है ।
घर घरतें नर-नारी मुदित जुरि जूथन धायो है ।
लै लै साज समाज सबै ब्रजराज पै आयो है ।
गावत गीत पुनीत परम रुचि लगत सुहायो है ।।
धरति साथिये, तोरन बांधति दधि छिरकायो है ।
नाचत कूदत करत कुलाहल मुरज बजायो है ।।
नंदराय सतकार सबन को कियो मन भायो है ।
वेदोक्ति गोदान द्विजनको अनगन द्यायौ है ।।
गरग परासर अन्वाचार्य मुनि जात कर्म करायो है ।
वासुदेव श्रीकृष्ण सुवन कौ नाम धरायो है ।।
ब्रजवासिन पांय परत सब सीस नवायो है ।
बारंबार निहार कमल मुख हियो सिरायो है ।।

---

[1] गन ।

[2] कूदें ।

[3] वधैय्या अथवा भादौं मास को फाग ।

[४]

धनि धनि रानी जसोमति तुम ब्रज सुबस बसायो है ।
बहुत दिनन की आसा पूजी वांछित फल पायौ है ।।
दिन दिन अधिक तिहारे गृह उत्सव आयो है ।
मनि मानिक के भूषन अंबर जाचक जन लुटायो है ।।
हरखे देव सुमन बरखे नभ निसान बजायो है ।
'परमानंद' नन्द नन्दन सुजस सुनायो है ।।

[७]

राग बि

सो गोविन्द तिहारे बालक ।
प्रगट भये घनस्याम मनोहर धरें रूप दनुज कुल कालक ।।
कमलापति त्रिभुवनपति नायक भुवन चतुर्दस नायक सोई ।
उतपति प्रलय कालको कर्ता जाके किये सबै कछु होई ।।
सुनों नन्द उपनन्द कथा यह आयो छीर समुद्र को बासी ।
बसुधा भार उतारन कारन प्रगट ब्रह्म बैकुण्ठ निवासी ।।
ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक विनती करि यहाँ लाये ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर बिहरत पुन्य तप के फल पाए ।।

[८]

सोभा सिंधुन अनत रहीरी ।
नंद भवन भरि उपटि सखीरी ब्रज की बीथनि फिरतबहीरी ।।
देखन आज गई हुती सजनी बेचन गोकुल मांझ दहीरी ।
कहा कहि कहौं चतुर सखीरी कहत न मुख ससिहु न लहीरी ।।
जसुमति उदर अगाधि उदधितें यहजु बात कहीरी ।
'परमानन्द' प्रभु इन्द्र नीलमनि ब्रजजुवतिन उर लाय लईरी ।।

[९]

प्रगट भये हरि स्त्री गोकुल में ।
नाचत गोपी गोप परस्पर आनन्द प्रेम भरे हैं मन में ।।
गृह गृह से गोपी सब निकसीं कंचन थार धरे हाथन में ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर प्रगटे नन्द जसोदा के घर में ।।

[१०]

राग जैतश्री

सुनियत आज सुदिन सुभरे माई ।
बरस गांठ गिरिधरनलाल की बहोरि कुसल में आई ।।
गोपी सब मिल मंगल गावत मोतिन चौक पुराई ।
विविध सुगंध उबटनों करिकें कुंवर कान्हहि अन्हवाई ।।
पीतांबर आभूषन सखियन कर सिंगार बनाई ।
निरखि निरखि फूलत ललतादिक आनन्द उर न समाई ।।
तिलक करत अच्छत दे जसुमति सुत की लेत बलाई ।
'परमानन्द' प्रभु सब मन भायो नन्द सुवन सुखदाई ।।

[११]

राग धनाश्री

सबै मिलि मंगल गावो माई ।
आज लालको जन्मद्यौस है बाजत रंग बधाई ।।
आँगन लीपो चौक पुरावो विप्र पढ़न लागे वेद ।
करो सिंगार स्याम सुन्दर कौ चोवा चन्दन मेद ।।
आनन्द भरी नन्द जू की रानी फूली अंग न समाई ।
'परमानन्ददास' तिहि औसर बौहोत न्यौछावर पाई ।।

[१२]

रानीजू आपुन मंगल गावै ।
आज लाल को जन्मद्यौस है मोतिन चौक पुरावै ।।
गाम गाम ते जाति आपुनी गोपिन न्यौति बुलावै ।
अन्वाचारज मुनि गरग परासर तिनपै वेद पढ़ावै ।।
हरदी तेल सुगंध सुवासित लालै उबटि न्हवावै ।
हरि तन ऊपर वारि न्यौछावर 'परमानन्द' पावै ।।

[१३]

जसोदा रानी सुवन फूलें फूली ।
तुम्हरे पुत्र भयो कुल मंडन वासुदेव समतूली ॥
देति असीस विरध दे ग्वालिन गाम गाम ते आई ।
लैलै भेंट सबै मिल निकसी मांगलचार बधाई ॥
ऐसे दसक होंई जो औरे सब कोउ सचुपावै ।
बाढ़ौ बंस नंद बाबा कौ 'परमानन्द' जिय भावै ॥

[१४]

नन्द महोत्सव

नन्द महोच्छ[१] मची बढ़ कीचै ।
अपने लाल पर वार न्यौछावर सब काहू कों दीजै ॥
विप्रन देहु गाय और सोनों माटन रूपो दाम ।
ब्रज जुबतिन पाटंबर भूखन पूजै मन के काम ॥
नाचो गाओ करो बधाई अजनम जनम हरि लीनों ।
यह अवतार बाललीला रस 'परमानन्दहि' भीनों ॥

रा

[१५]

आज नंदराय के आनन्द भयो ।
नाचत गोपी करत कुलाहल मंगल चार ठयो ॥
राती पीरी चोली पहरै नौतन झूमक सारी ।
चोवा चन्दन अंग लगाये सेंदुर मांग सँभारी ॥
माखन दूध दह्यो भरि भाजन सकल ग्वाल लै आये ।
बाजत बैनु पखावज मनोहर गावत गीत सुहाए ॥
हरद दूब अच्छत दधि कुमकुम आँगन बाढ़ी कीच ।
हँसत परसपर प्रेम मुदित मन लागि लागि भुज बीच ॥
चहुँ वेद ध्वनि करत महामुनि पंच सबद ढपढोल ।
'परमानंद' बाढ़्यौ गोकुल में आनंद-हृद[२] कलोल ॥

---

१ महो ।
२ हृदै ।

[१६]

गोकुल में बाजत कहाँ बधाई ।
भीर भई है नंदजू के द्वारें अष्ट महासिद्धि आई ।।
ब्रह्मादिक रुद्रादिक जाको चरन रेनु नहीं पाई ।
सोई नंदजू को पूत कहावै कौतिक सुनों मेरी माई ।।
ध्रुव अंबरीस प्रह्लाद बिभीसन निब नित महिमा गाई ।
सो हरि 'परमानंद' को ठाकुर ब्रज जन केलि कराई ।।

[१७]

नंदजू तुम्हारें जायो पूत ।
खोलि भंडार अब देहु बधाई तुम्हारे भागि अद्भूत ।।
लै लै दधि घृत देहरी पखारो तोरन माल बँधाई ।
कंचन कलस अलंकृत रतनन विप्रन दान दिवाई ।।
विप्र सबै मिलि करत वेद ध्वनि हरखित मंगल गाये ।
सब दूख दूरि गये 'परमानंद' आनंद प्रेम बढ़ाये ।।

[१८]

नंद बधाई दीजे ग्वालन ।
तुम्हारे स्याम मनोहर आये गोकुल के प्रति पालन ।।
जुवतिन बहु विधि भूखन दीजै विप्रन कों गोदान ।
गोकुल मंगल महोच्छव कमल नैन घनश्याम ।।
नाचत देव विमल गंधरव मुनि गावैं गीत रसाल ।
'परमानंद' प्रभु तुम चिर जीयो नंद गोप के लाल ।।

[१९]

तुम जो मनावत सोई दिन आयो ।
अपने बोल करो किन जसुमति लाल घुटुरुवन धायो ।।
अब चलि है पायन ठाड़े ह्वै महरि बजाय बधायो ।
घर घर आनंद होत सबन के दिन दिन बढ़त सवायो ।।

इतनों बचन सुनत नद रानी मोतिन चौक पुरायो
बाजत तूर बरना[१] मिलि गावत लाल पटा बैठायो ।
'परमानंद' रानी धन खरचत ज्यों विधि बेद बतायो
जा दिन को तरसत मेरी सजनी गहि अँगुरियन लायो ।

[२०]

आज बधाई को दिन नीको ।
नंद घरनि जसुमति जायो है लाल भामतौ जीको ।।
पंच सबद बाजे बाजत घर घरतें आयो टीको ।
मंगल कलस लिये ब्रज सुन्दरि ग्वाल बनावत छींको ।।
देत असीस सकल गोपी जन चिरजीवौ कोटि बरीसो ।
'परमानंददास' को ठाकुर गोप भेस में दीसो ।।[२] ।।

[२१]

घर घर ग्वाल देत हैं हेरी ।
बाजत ताल[३] मृदंग बांसुरी ढोल दमामा भेरी ।।
लूटत झपटत खात मिठाई कहि न सकत कोउ फेरी ।
उनमद ग्वाल करत कोलाहल ब्रज बनिता सब घेरी ।।
धुजा पताका तोरन माला सबै सिंगारी सेरी ।
जय जय कृष्न कहत 'परमानन्द' प्रकट्यो कंस को बैरी ।।

[२३]

नाचत हम गोपाल भरोसे ।
गावत बाल विनोद ग्वाल के नारद के उपदेसे ।
संतन कौ सरबसु सुख सागर नागर नंद कुमार ।
परम कृपाल जसोदा नंदन जीवन प्रान आधार ।
ब्रह्म रुद्र इन्द्रादि देवता जाको करत किवार[४] ।
पुरुषोत्तम सबही के ठाकुर यह लीला अवतार ।
सरग नरक को अब डर नाहीं विधि निसेध नहीं आस
चरन कमल मन राखि स्याम के बलि 'परमानन्ददास' ।

---

१ (बन्ना गाना); सबन ।
२ जगदीसो ।
३ पंचवाद्य ।
४ ताके करत बिचार ।

[२३]

गह्यो नंद सब गोपिन मिलिकै देहु हमारी बधाई ।
अखिल भुवन की जो है महा सिद्धि सो तुम्हरे गृह[1] आई ।
बाजत तूर करत कोलाहल मंगल चार सुहाई ।
कंचुकि ऊपर कचतर लटकत ये छवि बरनि न जाई ।।
दै दै कनिक पाटंबर भूखन ग्वाल सबै पहराई ।
'परमानन्द' नंद के आंगन गोपी महानिधि पाई ।।

[२४]

गोकुल आज कुलाहल पाई ।
ना जानौं यह अरट महा सिधि कहो कहाँ ते आई ।
बोले नामकरन के कारन गर्ग बिमल जस गाई ।
'परमानन्द' सन्तन हित कारन गोकुल आये माई ।।

[२५]

ब्रज में होत कुलाहल भारी ।
आनन्द मगन ग्वाल सब नाचत देत परस्पर तारी ।।
नन्दराय के भवन में आवत आनन्दित ब्रज नारी ।
पुत्र जनम सुनि हरख भयौ है 'परमानन्द' बलिहारी ।।

[२६]

धन्य यह कूख जन्म जहां लीनो गिरि गोवर्द्धनधारी ।
लरिका कहा बहुत सुत जाये जो न होय उपकारी ।।
एक सो लाख बराबर गिनियैं करै जो कुल रखवारी ।
अति आनन्द कहत गोपी जन मन क्रम बचन बिचारी ।।
इन्द्र कोप कीनो ब्रज ऊपर मघवा[2] गरव निवारी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गो बृन्दावन[3] चारी ।।

।
: ।
बल गर्व प्रहारी ।

[२७]

चलो भैया आनन्द[१] राय मे जैये ।
जसुमति लाल लाडिलो जनम्यो कछुक बधाई पैये ।।
जाचक जन आवत माँगन को सुरभी हेम पर दीने ।
दुख दारिद नसे सबहिन के जन्म अजाचिक कीने ।।
घुरत निसान सबद सहनाई बाजत है जो बधाई ।
भामिनी सब मिलि मंगल गावति मोतिन चौक पुराई ।।
कौन पुन्य तप कीने नंदजू कहे न आवै पार ।
'परमानन्द' प्रभु बैकुण्ठ जाके, ब्रज लीनो अवतार ।।

[२८]

नंद गृह बाजत कहूँ बधाई ।
जुरि आई सब भीर आँगन में जन्मे कुंवर कन्हाई ।।
सुनत चली सब ब्रज की सुन्दरि कर लिये कंचन थाल ।
कुमकुम केसरि अच्छत स्त्री फल चलत चलित गति चाल ।।
आज मैया यह भली भई है नंदजू तुम घर ढोटा जायो ।
हृदै कमल फूल्यो जो हमारो सुनत बहौत सुख पायो ।।
दान करन विप्रन बहु दीने सब को लेत असीस ।
पुहुप होय वृष्टि करत 'परमानंद' सुर जो कोटि तेतीस ।।

[२९]

आनन्द की निधि नंद कुमार ।
प्रगट[२] ब्रह्म नर[३] भेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार
स्रवनन[४] आनन्द लोचन आनंद[५] मन में आनंद आनंद मूरति
गोकुल आनंद गाइन[६] आनंद नंद जसोदा आनंद पूरति[७]

---

१ राजगृह ।
२ परब्रह्म ।
३ नट भेस ।
४ श्रवणनि ।
५ मन में आनन्द, लोचन आनन्द, आनन्द पूर्ति ।
६ गोपी ।
७ मूरति ।

[११]

सब दिन आनद धेनु चरावत बेनु बजावत आनद कंद ।
खेलत हँसत[1] कुतूहल आनंद राधापति वृन्दावन चंद ।।
सुक[2] मुनि आनंद भक्तन[3] आनंद निसि दिन आनंद विलास ।
चरन[4] कमल अनुहरत निरन्तर अति आनंद 'परमानन्ददास' ।।

[३०]

बदन निहारति है नंदरानी ।
कोटि काम सतकोटि चंद्रमा, कोटिक रवि बारति जिय जानी ।।
सिव विरंचि जाकी पार न पावत सेष सहस गावत रसना री ।
गोद खिलावति महरि जसोदा 'परमानंद' किए बलिहारी ।।

[३१]

पद्म धर्‌यो जन ताप निवारन ।
चक्र सुदर्सन धर्‌यो कमल कर भगतन की रुच्छा के कारन ।।
संख धर्‌यो रिपु उदर बिदारन गदा धरी दुस्टन सिंघारन ।
चारों भुजा चारों आयुध धरे नरायन भुव भार उतारन ।।
दीनानाथ दयाल जगत गुरू आरति हरत भक्त चिन्तामन ।
'परमानंददास' को ठाकुर यह औसर मो छांड़ौ जनि ।।

[३२]

आठैं भादौं की अँधियारी ।
गरजत गगन दामिनी कौंधति गोकुल चले मुरारी ।।
सेस सहस्र फन बूँद निवारत सेत छत्र सिर तान्यौ ।
वसुदेव अंक मध्य जगजीवन कहा करैगौ पान्यौ ।।
जमुना थाह भई तिहि औसर आवत जात न जान्यौ ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर देव मुनिन मन मान्यौ ।।

नृतत ।
सुरमुनि ।
सन्तन ।
चरण कमल मकरंद पान के अलि आनन्द परमानन्ददास ।

[३३]

यह धन धर्म ही तें पायौ ।
नीकें राखि जसोदा' मैया नारायन ब्रज आयौ ।।
या धन कों मुनि जप तप खोजत बेद हू पार न पायौ ।
सो धन धरयो छीर सागर मँह ब्रह्मा जाय जगायौ ।।
जा धन तें गोकुल सुख लहियत सगरे काज सँवारें ।
सो धन बार बार उर अन्तर 'परमानन्द' विचारें ।।

[३४]

हरि जनमत ही आनन्द भयौ ।
सब विधि प्रगट भई नंद द्वारे सब दुख दूरि गयौ ।।
बासुदेव देवकी मतो उपायो पलना माँझ लयौ ।
कमला कंत दियौ हुँकारौ जमुना पार दयौ ।।
नन्द जसोदा के मन आनंद गर्ग बुलाय लयौ ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गोकुल प्रगट भयौ ।।

[३५]

रानीजु तिहारो घर सुबस बसो ।
सुनिरी जसोदा या ढोटा को न्हातहि जनि बार खसो ।।
कोऊ करत बेद धुनि मंगल कोऊ अति आनन्द लसो ।
निरखि निरखि मुख कमल नैन को आनन्द प्रेम हिए हुलसो ।।
देत असीस सकल गोपी जन कोऊ गावो कोऊ बिहसों ।
'परमानन्द' नन्द घर आनन्द पुत्र जनम भयो जगत जसों ।

[३६]

जनम लियो सुभ लगन विचार ।
कृष्ण पच्छ भादों निसि आठैं नच्छत्र रोहिनि और बुधवार
संख चक्र गदा पद्म बिराजत कुण्डल मनि उजियार
मुदित भये बसुदेव देवकी 'परमानन्ददास' बलिहार

[३७] राग भैरव

देखोरी यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन, देखत चन्द लजाया है॥
पूरन अखिल अलख अविनासी, प्रकट नन्द घर आया है।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, केसरि तिलक लगाया है॥
कानन कुंडल गल बिच माला कोटि भानु छवि छाया है।
संख चक्र गदा पदम बिराजे, चतुर्भुज रूप बनाया है॥
परमेस्वर पुरुषोत्तम स्वामी, जसुमति सुत कहलाया है।
मच्छ, कच्छ, बराह और बामन, राम रूप दरसाया है॥
खंभ फारि प्रगटे नरहरि बपु जन प्रहलाद छुड़ाया है।
परसुराम बपु निकलंक होय भुव का भार मिटाया है॥
काली मरदन कंस निकन्दन गोपीनाथ कहाया है।
मधुसूदन माधव मिकुंद प्रभु भगत बछल पद पाया है॥
दामोदर गिरधर गोपाल हरि त्रिभुवनपति मन भाया है॥
सिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक सेस सहस मुख गाया है।
सुर नर मुनि के ध्यान न आवत अद्भुत जाकी माया है॥
सो पारब्रह्म प्रगट होय ब्रज में लूटि-लूटि दधि खाया है।
'परमानन्द' कृष्ण मन मोहन चरन कमल चितलाया है॥*

[३८] राग सारंग

ो पूजन

मंगल द्यौस छठी कौ आयौ।
आनन्द ब्रजराज जसोदा मनहुँ अधन धन पायौ।
कुंवर न्हवाय जसोदा रानी कुल देवी कौ पाँय परायौ।
बहु प्रकार बिजन धरि चौगन सब बिधि भलौ मनायौ॥
सब ब्रज नारी बधावन आईं सुतको तिलक करायौ।
जय जय कार होत गोकुल में 'परमानन्द' जस गायौ॥

---

*तुन पद की भाषा से परमानन्ददास जी के उपस्थिति-काल पर प्रकाश पड़ता है।—संपा०

[३९] राग सारंग

आजु छठी जसुमति के सुत की चलौ बधावन माई।
भूखन बसन साज मंगल लै सकल सिंगार बनाई ॥
भली बात विधि करी बंस बड़ सुत पायौ नन्दराई।
पुन्य पुंज फूले ब्रजवासी घर घर होत बधाई ॥
पूरन काम भये निज जन के जीवेंगे जस गाई।
'परमानन्द' बात भई मन की मुद मरजाद नसाई ॥

[४०] राग देवगांधार

पलना के पद[१]

अद्भुत देख्यो नन्द भवन में लरिका एक भला।
कहा कहूँ अंग अंग प्रति सोभा कोटिक काम कला ॥
गावति हँसति हँसावति ग्वालिन झुलवति पकरि डला।
'परमानन्ददास' को ठाकुर मोहन नन्द लला ॥

[४१] राग देवगांधार

रतन जटित कंचन मनिमय नन्द भवन मधि पालनों।
ता ऊपर गज मोतिन लर लटकत अति तहं झूलत जसोदा लालनो ॥
किलकि किलकि विलसति मन ही मन चितवन नैन बिसालनो।
'परमानंद प्रभु' की छवि निरखन आवत कल न परत ब्रजबालनों ॥

[४२] राग बिलावलि

हालरो हुलरावै माता।
बलि बलि जाऊं घोख सुख दाता।
बलि[२] लोहित कर चरन सरोजे।
जे ब्रह्मादिक मनसा खोजे ॥
जसुमति अपनो पुन्य बिचारे।
बार बार मुख कमल निहारे ॥
अखिल भुवनपति गरुड़ागामी।
नन्द सुवन 'परमानन्द स्वामी' ॥

---

१ भाषा में खड़ी बोली का पुट
२ अति

[४३] राग बिलावल

जसोदा तेरे भाग की कही न जाई ।
जो मूरति ब्रह्मादिक दुरलभ सो प्रगटो है आई ॥
सिव नारद सनकादि महामुनि मिलिवे करत उपाई ।
ते नन्द लाल धूरि धूसर बपु रहत कंठ लपटाई ॥
रतन जटित पौढाय पालने बदन देखि मुसिकाई ।
झूलो मेरे लाल जाऊं बलिहारी 'परमानंद' जस गाई ॥

[४४] राग आसावरी

बारी मेरे लटकन पग धरो छतियाँ ।
कमल नैन बलि जाऊँ बदन की सोभित नन्हीं नन्हीं द्वै दूध की दतियाँ ॥
यह मेरी यह तेरी, यह बाबा नंदजू की, यह बलभद्र भैया की यह
ताकी जो झुलावे तेरो पलना ।
इहाँ ते चलो खर खान पीवत जल परिहरो रुदन, हँसो मेरे ललना ॥
रुनुक झुनुक पग बाजत पैजनियाँ अलबल, कलबल बोलो मृदुबनियाँ ।
'परमानंद प्रभु' त्रिभुवन ठाकुर जाय[1] झुलावे बाबा नंदजू की रनियाँ ॥

[४५] राग आसावरी

माई मीठे हरि जू के बोलना ।
पाय पैंजनी रुनझुन बाजें आँगन मनिमय डोलना ॥
काजर तिलक कंठ कठुला पुनि पीताम्बर की बोलना ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गोपी झुलावे झोलना ॥

[४६] राग आसावरी

माईरी कमल नैन श्याम सुन्दर झूलत हैं पलना ।
बाल लीला गावत सब गोकुल की ललना ॥
लाल के अरुन तरुन चरन-कमल-नख मनि ससि जोती ।
कुंचित कच भमराकृत लट लटकत गज मोती ॥
लाल अँगूठा गहि कमल पानि मेलत मुख माँही ।
अपनो प्रतिबिम्ब देखि पुनि पुनि मुसिकाईं ॥
रानी जसुमति के पुन्य पुंज बार बार लालै ।
'परमानन्द स्वामी' गोपाल सुत सनेह पालै ॥

---
[1] जिमे (अर्थ)

[४७] राग आसा[illegible]

मात[1] जसोदा दह्यौ बिलोवै प्रमुदित बाल गोपाल जस गावै।
मन्द मन्द अम्बर घन घोरै रई घघर[2] कै लावै ॥
नूपुर कनक छुद्रघंटिका रजु आकरषित बाजै।
मिस्रित धुनि उपजत तिहि औसर देखि सचीपति लाजै ॥
मंगल द्यौस सदा कौतूहल अजनम जनम हरि लीनो।
नन्द जसोदा को सुकृत फल बपु दिखाय सुख दीनो ॥
सिव बिरंचि जाके पद बंदत सो गोकुल के बासी।
'परमानन्ददास' को ठाकुर पलना झूले सुख रासी ॥

[४८] राग आसाव

झुलावै सुत को महरि पलना कर लिये नवनीत।
नैनन अंजन गाल मसी बिंदुका तन ओढे पटपीत ॥
बेनु देखत मंद हँसत हैं कबहुँक होत भयभीत।
दै करतार नचावत गोपी गावत मधुरे गीत ॥
राई लौन उतारति बारति है होत सकल अंग प्रीति।
पूरन ब्रह्म गोकुल में झूले 'परमानन्द' पुनीत ॥

[४९] राग रामक

लाल कौ मुख देखन को हौं आई।
काल्हि मुख देख गई दधि बेचन जातहि गयौ बिकाई ॥
दिन तें दूनों लाभ भयौ घर काजरि बछिया जाई।
आई हौं गाय थमाय साथ की मोहन देहौं जाई ॥
सुन तिय[3] बचन बिहँसि उठि बैठे नागर निकट बुलाई।
'परमानन्द' सयानी ग्वालिनि सैन संकेत बताई ॥[4]

---

१ गोरी गुजरिया दही विलोवे
२ घमर
३ प्रिय
४ नित्य सेवा का पद

रामकली

प्राशन

[५०]

अनप्रासन दिन नँदलाल कौ करत जसोदा माय ।
आह्वान देव पूजि कुल देवी बहोत दच्छिना पाय ।।
कुटुम जिमाय पटंबर दीने भवन आपुने आय ।
मागध भाट सूत सनमाने सब हित हरख बढ़ाय ।।
जेहि जेहि जाच्यौ सो तिन पायौ नंदराय बड़दानी ।
भगत हेतु प्रगटे जग[1] जीवन 'परमानन्द' गुन गानी ।।

रामकली

[५१]

यह मेरे लाल कौ अनप्रासन ।
भोजन दच्छना बहुत प्रियजनकौ देहू मनिमय आसन ।।
पायस भरि हर[2] पल्लव लैहों सब गुरुजन अनुसासन ।
'परमानंद' अभिलाख जसोदा बेगि बढ़ै खटमासन ।।

रामकली

[५२]

सुदिन सवारों सोधिके लालजू भोजन कीजे ।
कुल देवता मनहरख सों यहै माँगि मन लीजै ।।
आह्वान भोजन और दच्छना अति आदर सों दीजै ।
आसीरबाद देत सबै मिल मन इच्छित फल लीजै ।।
यह बाढ़ो बेलि लाल कहे तें लोचन पुर[3] अमृत रस पीजै ।
'परमानंद' कहत नंद रानी देखि देखि मुख जीजै ।।

रासकल

[५३]

कनछेदन

गोपाल के बेधकरन को कीजै ।
गुरुबल तिथिबल नच्छत्र वार बलि सुभघरी बिचार लीजै ।।
गनिक निपुन द्वै चारि बैठिके मतो बिचारयो नीको ।
मुहूरत जामें दोस रहित सुख सागर है जीको ।।
दियो मनोरथ सब सुख दाता चीते मनोरथ पाये ।
नारि सीमंतनि गीत गवाए दिये भूखन मन भाये ।।
जसुमति माई गोद लै बैठी लाल देखि मन हरखे ।
सुची[1] माता के गोद बैठिके मूंदि स्रवन मन करखे ।।
कनिक सूचि लै स्रवन कों दीनी बेधत बार न लागी ।
बाल रुदन जब करन लग्यो रोहिनी मातु लै भागी ।।
पुचकारत चुंबत चांपत हिय लेहु बलैया तेरी ।
देत दान नंदराय विप्रन कों कहें 'परमानंद' हेरी ।।

रामकली

[५४]

सूची पढ़ि दीनी द्विजवर देवा ।
जाते पीर न होय करन को हम करिहें सब सेवा ।।
कहत जसोदा द्विजवर देवा तुव मन भायो कहिये ।
गोकुल के प्रतिपालन लायक नंद गोप कें रहिये ।।
ऐसो सुख अपने दृग देखों सबल संपदा बाढ़ी ।
यातै कहा अधिक चहियतु है अस्ट महा निधि ठाड़ी ।।
चिर जीयो यह नन्द लाल तेरो द्विजवर बोलै बानी ।
नंदराय जस जुग-जुग बाढ़ौ "परमानन्द" बखानी ।।

---

१ सुची माता कर देखिकैं

बिलावल

रण

[५५]

जहां गगन गति गर्ग कह्यो ॥
यह बालक अवतार पुरुष है 'कृष्ण' नाम आनन्द लह्यो ।
द्रोन धरावसु परम तपोधन, पुत्र नाम निरभय करी ॥
ते तुम नन्द जसोदा दोऊ बर माँग्यौ सुत देहु हरी ।
कहै नन्दराय ग्वालिन सबनके आगे सकल मनोरथ पूरन करे॥
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर गोकुल की आपदा हरे ॥

बिलावल

[५६]

नन्द ग्रह आयो[१] गर्ग बिधि जानी[२] ।
राम कृस्न के नाम करन हित जदुकुल में सनमानी ॥
गज मोतिन के चौक पुराये नाम करन विधि ठानी ।
मंगल गीत गवावत जसोमति बोलत अमृत बानी ॥
प्रथम ही सुनो बड़े ढोटा कौ नाम रामबलदेव ।
हलधर और नाम संकर्षण कोऊ न जाने भेव ॥
अब यह नाम तुम्हारे सुत कौ सुनि चित दे नन्द ।
'कृष्ण' नाम केसव नारायन हैं हरि परमानन्द ॥
पद्मनाभ माधौ मधुसूदन वासुदेव भगवान ।
और अनन्त नाम इनके हैं कहो कहां लौ आन ॥
नन्द सुवन त्रिभुवन के ठाकुर तिनके नाम धराये ।
'परमानन्द' प्रभु अखिल लोक पति गोप भेस धरि आये ॥

ी

गी

राग मालव

[५७]

मोहन नन्दराय कुमार ।
प्रकट ब्रह्म निकुंज नायक भक्त हित अवतार ।।
प्रथम चरन सरोज बंदौं स्यामघन गोपाल ।
ललित कुंडल गण्ड मण्डित चारु नैन विसाल ।।
बलराम सहित बिनोद लीला सेस संकर हेत ।
'दास परमानन्द' प्रभु हरि निगम बोलत नेत ।।

लावनी

[५८]

सुनाहा जसोदा आज कहूँ ते गोकुल में इक पंडित आयो ।
अपने सुत कौ हाथ दिखावो बुह कहै जो बिधि निरमायो ।।
तुरत ही जन पठयो देखन को आनि बुलाय दियो अरघासन ।
पाँय पखारि पूजि अंजुली ले तब द्विज पै मांग्यौ अनुसासन ।।
मुख पखारि काजर टिकुली दै कंठनि सों हरि कंठ लगायो ।
सुन्दर तात मात कनियाँ ले विप्र चरन बन्दन करवायो ।।
दे असीस कर धरि कर देख्यौ सुनि बिसालनैनी सुत के गुन ।
लोचन चिह्न होइ ये स्रीपति उदरदाम पावन सुभ बंदन ।।
हृदय सूत पग देत बहुत गुन भुव मंडल या सम नहिं कोऊ ।
'परमानन्द' करी न्योछावर हरखे नन्द जसोदा दोऊ ।।

बिलावल

[५९]

अब डर कौन कौ रे भैया ।
गरग बचन गोकुल में बैठे हमरे मीत कन्हैया ।।
कहत ग्वाल जसुमति के आगे है त्रिभुवन कौ रैया ।
तोर्‌यो सकट पूतना मारी को कहि सकै बगैया[1] ।।
नाचो गाओ करो बधाई सुखैन[2] चरावो गैया ।
'परमानन्द दास' कौ ठाकुर सब प्रकार सुख दैया ।।

---

१ बधैय्या
२ सुखै नचाओ

सारंग

: के पद

(शकटासुर उद्धार)

[६०]

करवट लई प्रथम नन्द नन्दन ।
ताकौ महरि महोच्छव मानत भवन लिपायो चन्दन ॥
बोली सकल धोख की नारी तिन कों कियो बंदन ।
मंगल गीत गवावत हरसत हँसत कहूँ मुख मंदन ॥
यह विधि भई घड़ी द्वै चारिक तब ही कुँवरि उठि जागे ।
भूलि गई संभ्रम में सुत को कछु एक रोवन लागे ॥
दई लाति गिर गयो सकट धँसि तब ही सबै उठि दौरे ।
बिसमय भये बिलोकत नैनन भूले से कछु बौरे ॥
लिये उठाय कुँवर ब्रज रानी रहसि कंठ लिपटाई ।
प्रेम बिबस सब श्रापु न संभारत 'परमानन्द' बलिजाई ॥

गौरी

पर बैठाने के पद

(तृणावर्त लीला)

[६१]

हौं बारी मेरे कमल नैन पर स्याम सुन्दर जिय भावै ।
चरन कमल की रैनु जसोदा लै लै सीस चढ़ावै ॥
रसन दसन धरि बाल कृस्न पर, राई लौन उतारै ।
काहू निसचरि हृष्टि लगाई लै लै अंचर झारै ॥
लै उछंग मुख निरखन लागी विस्व-भार जब दीनौ ।
करते उतारि भूमि राखे इहि बालक कहा कीनों ॥
तू मेरौ ठाकुर तू मेरौ बालक तोहि विस्वंभर राखै ।
'परमानन्द स्वामी' चित चोरयौ चिरजीवौ यों भाखै ॥

देहली उल्लंघन

[६२] बिलावल एकताल

हरि कौ विमल जस गावत गोपांगना ।
मनिमय आँगन नन्दराय के बाल गोपाल तहाँ करें रिंगना
गिरि गिरि परत घुटरुवन टेकत जानु-पानि मेरे छंगन कौ मँगन
धूसर धूर उठाय गोद लै मात जसोदा के प्रेम कौ भँजना
तिरपद[1] भूमि मापी न आलस भयो अब जो कठिन भयो देहरी उलंघन
'परमानन्द प्रभु' भक्त वत्सल हरि रुचिर हार वर कण्ठ सो है बघनखना

[६३] सारंग

गावत गोपी मधु मृदुबानी × ।
जाके भवन बसत त्रिभुवनपति राजानंद जसोदा रानी ।।
गावत वेद भारती गावत नारदादि मुनि ग्यानी ।
गावत गुन गंधर्व काल सिव गोकुलनाथ महातम जानी ।।
गावत चतुरानन जगनायक गावत सेस सहस मुख रास ।
मन क्रम बचन प्रीति पद अंबुज अब गावत 'परमानन्ददास' ।।

[६४] सारंग

धनरानो जसुमति गृह आवत गोपी जन ।※
वासरताप निवारन कारन बारंबार कमल मुख निरखन ।।
चाहत पकरि देहरी उलघन किलकि किलकि हसत मन ही मन ।
राई लौनि उतारि दुहूँ कर वारि फेरि डारत तन मन धन ।।
लालै लेत उमंग चाँपति हियो भरि प्रेम बिबस लागे दृग ढरकन ।
ले चली पलना पौढ़ावन कों अरकसाय पौढ़े सुन्दर धन ।।
देत असीस सकल गोपीजन चिरजीयौ लाल जौलौं गंग जमुन ।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर भगत वछल भगतन मन रंजन ।।

१—गिरि पुहुमि मापत

× माहात्म्य सूचक

※ बधाई के दिन आशीश का पद

...खल के पद

(नल कूबर उद्धार)

[६५]

गोविन्द बार बार मुख जोवै ।
कमल नयन हरि हिलकनि रोवत बंधन छोड़ि यह सोवै ।।
जो तेरो सुत खरोई अचगरो अपनी कूखि कौ जायो ।
कहा भयो जो घर के लरिका चोरी माखन खायो ।।
नई मटुकिया दह्यौ जमायो देव न पूजन पायो ।
तिहिं घर देव पितर काहे के जिहिं घर कान्ह रुवायो[२] ।
जाकौ नाम कुठार धार है यम को फांसी काटै ।।
सो हरि बाँधे प्रेम जेवरी जननी साँट लै डाटै ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर करन भगत मन भाये ।।
देखि दुखी ह्वै सुत कुवेर के लाल जू आप बंधाये ।।

[६६] राग बिलावल

सुन्दर आउ नंदजू के छगन मगनियाँ ।
कटि पर आडबंद अति झीनो भीतर झलकत तनीयाँ ।
लाल गोपाल लाड़िले[३] मेरे सोहत चरन पैजनियाँ ।
'परमानन्ददास' के प्रभु की यह छवि कहत न बनियाँ* ।।

...तिका भक्षण

[६७]

देखो गोपालजू की लीला ठाटी ।
सुर ब्रह्मादिक अचरज ह्वै हैं जसुमति हाथ लिये रजु साँटी ।
ये सब ग्वाल प्रकट कहत हैं स्याम मनोहर खाई मांटी
बदन उघारि भीतर देख्यौ त्रिभुवन रूप बैराटी ।

-ब्रज (प्रयोग)
कान्हर आयौ
भावते
* प्रस्तुत पद नित्य-सेवा के अन्तर्गत शृंगार का है ।

केसव के गुन वेद बखाने सेष सहस मुख साटी लाटी ।
लख्यौ न जाय अन्त अन्तरगति बुधि न प्रबेस कठिन यह घाटी ।।
जनम करम गुन स्याम के बखानत समुझि न परै गूढ़ परिपाटी ।
जाके सरन गये भय नाहीं सो सिंधु 'परमानन्द' दाटी ।।

माता की अभिलाषा

राग गौरी

[६८]

जा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलेगो ।
तादिन[१] अति आनन्द[२] गिनोंरी माई[३] रुनक झुनक ब्रज गलिन में डोलेगो
प्रात[४] ही खिरक माय दुहिबेकौ धाई बंधन बछरवा के खोलेगो ।
'परमानन्द' प्रभु नवल कुँमर मेरो ग्वालिन के संग बन में किलोलैगो ।X

राग गौरी

[६९]

जसोदा बदन जोवै बार बार कमल नैन प्यारे ।
मधुपनि की पाँति बनी अलक घुंघरारे ।।
जो सुख ब्रह्मादिक कौं कबहूँ नहिं दीनो ।
धरा* अरु बसुवादिक को सत्य बचन कीनो ।।
निगम गावैं नेति नेति पारहू न पायो ।
'परमानन्द स्वामी' गोपाल सोई गोकुल आयो ।

---

१ सो ।

२ सुभग ।

३ आलि ।

४ भोर ही उठंगो धाय खिरक दुहि गाय बंधन बछरुवा झटकि कर खोलेगो ।

X बाल लीला का प्रारम्भ ।

* तुलना कीजिये —

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ।
करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणस्तमुवाचह ।। भाग १० । ८ । ४८
अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणोमहायशाः ।
जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ।। भाग १० । ८ । ५०

[७०] राग गौरी

बिमल जस ब्रुन्दावन के चन्द को ।
कहा प्रकास[१] चन्द[२] सूरज को सो[३] मेरे गोविन्द को ।।
कहत जसोदा सखियन आगे वैभव आनन्द कंद को ।
खेलत फिरत गोप बालक संग ठाकुर 'परमानन्द' को ।।

[७१] राग गौरी

तेरी लाल की मोहि लागो बलाय ।
बाल गोपाल घुगुनवा मेरे चलो अंगन धाय ।।
लाल जू के लटकन मटकन पोंहची नूपर बाजे पाँय ।
चुटकी दै दै ग्वाल नचावत मुदित जसोदा माय ।।
आनन्द भरी नंद जू की रानी अंग अंग निरखत भाय ।
'परमानन्द' नंद नंदन कों राखों उर लपुटाय ।।

[७२] राग गौरी

तिहारो बाल मोहि भाँवत लाल ।
बार बार जसुमति के भवन में यह सुनत हों आवत लाल ।।
पार परौसिन अनख करति है औरे कछु लगावत लाल ।
ताको साखि बिधाता जाने जिहिं लालच उठि धावत लाल ।।
दधि को मथन और ग्रह कारज तुम्हरे प्रेम बिसरावत लाल ।
'परमानन्द' प्रभु कुँवर लाड़िले निरखि बदन सचुपावत लाल ।।

त लीला

[७३] राग सारंग

कहन लगे मोहन मैया मैया ।
बाबा बाबा नंदरायसों और हलधर सों भैया भैया ।।
छगन मगन मधुसूदन माधौ सब ब्रज लेत बलैया ।
नाचत मोर रहत संग उनके तोतरे बोल बुलैया ।।

---
१ प्रताप
२ भाग
३ जो

दूरि खेलन जिन जाऊ मनोहर[१] मारेगी काहूकी
मात जसोदा ठाड़ी टेरे लै लै नाम ६
सब गोकुल में आनंद उपज्यो घर घर होत
नंद नंदन की या छबि ऊपर परमानन्द ६

[७४]

क्रीड़त कान्ह कनक आँगन ।
निज प्रतिबिंब बिलोकि किलकि धावत पकरन को
पकरन धावत, भ्रमित होत तब आवत उलटि लाल
'परमानंद' प्रभु की यह लीला निरखत जसुमति हँसि

[७५]

रानी तेरे लाल सों कहा कहों ॥
जे जे कर्म नैन भरि देखति हौं अचम्भे रहों ।
तोर्यो सकट पूतना मारी तृनावर्त वध कीनों ॥
सात दिवस तेरेई ढोटा एक हाथ गिरि लीनों ।
जब तैं दाम उलूखल बांधे दरखत[२] तोरि गिराये ॥
कालिन्दी जल निर्विष कीनों गो[३] सुत मृतक जिवाये ।
है कोउ यह बड़ो देवता कै ब्रह्मा कै सम्भु ॥
'परमानंददास' को ठाकुर तिहूँ लोक को खंभ ।

[७६]

मोहन ब्रज को री रतन ।
एक चरित्र आज मैं देख्यौ पूतना पतन ॥
तृणावर्त ले गयो अकासे ताही को घतन ।
जे जे दुस्ट उपद्रव ठाने तिनही को हतन ॥
सुनिरी जसोदा या मोहन कों रीझत ।
'परमानंददास' को जीवन स्याम है सुत न ॥

---

१ मोहन
२ (फारसी) प्रयोग
३ गुरु

[७७] राग सारंग

मनिमय आँगन नंद के खेलत दोऊ भैया ॥
गोरे स्याम जोरी बनी बलि कुंवर कन्हैया ॥
नूपुर कंकन किंकिनी कटि रुन झुन बाजे ।
मोहि रही ब्रज सुन्दरी मनसा सुत लाजे ॥
संग जसुमति रोहिनी हित कारिनि मैया ।
चुटकी दै दै नचावही सुत जानि नन्हैया ॥
नील पीत पट ओढ़नी देखत मोहि भावै ।
बाल विनोद आनन्द सूँ 'परमानंद' गावै ॥

[७८] राग सारंग

यह तन कमल नैन पर वारौं[1] सामलिया मोहि भावेरी ।
चरन कमल की रैनु जसोदा ले ले सीस चढ़ावेरी ॥
ले उछंग मुख निरखन लागी राई लौन उतारे ।
कौन निरासी दृष्टि लगाई लै लै आँचल झारै ॥
तू मेरो बालक यदु नन्दन तोहि बिसम्भर राखेरे ।
'परमानन्ददास' चिर जीवो बार बार यों भाखे रे ॥

[७९] राग सारंग

बाल दसा गोपाल की सब काहू भावै ।
जाके भवन में जात है सो लै गोद खिलावै ॥
स्याम सुन्दर मुख निरखि के अबला सचुपावै ।
लाल लाल कहि ग्वालिनी हंसि हंसि कंठ लगावै ॥
चुटकी दै दै मुदित ह्वै कर लाल बजावै ।
'परमानन्द' प्रभु नाचही सिसुताई जनावै ॥

---

[1] वारि डारौं ।

[८०] राग स

बाल बिनोद गोपाल के देखत मोहि भावै।
प्रेम पुलकि आनन्द भरी जसुमति गुन गावै॥
बलि समेत धन साँमरो आँगन में धावै।
बदन चूमि गोद लियो सुत जानि खिलावै॥
सिव विरंचि मुनि देवता जाको पार न पावै।
सो 'परमानन्द' ग्वाल कौं हँसि भलो मनावै॥

[८१] राग सा

हरि लीला गावत गोपी जन आनन्द में निसि दिन जाई।
बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नैन ब्रजजन सुखदाई॥
दोहन मण्डन खंडन लेपन, मण्डन गृह सुत पति सेवा।
चारि याम अवकास नहीं पल सुमिरत कृस्न देव देवा॥
भवन भवन प्रति दीप विराजत कर कंकन नूपुर बाजै।
'परमानन्द' घोख कौतूहल निरखि पाँति सुरपति लाजै॥

[८२] राग सा

सोमुख ब्रजजन निकट निहारत।
जा मुख कौं चतुरानन जानन[१] साधन करि करि हारत॥
जा मुख कौं स्रुति नेति नेति प्रति सिव सनकादिक आरत।
सो मुख नंद गोप के गोकुल बन बछरा गौ चारत॥
जा मुख कौं सेस सहस मुख नाम लेत दिनन टारत।
सो मुख 'परमानन्द' जसोदा लै उछंग चुचकारत॥

[८३] राग सार

नाहिन गोकुल बास हमारौ।
बैरी कंस बसत सिर ऊपर नित उठि करै खगारो[२]॥
गाम गाम प्रति देस देस प्रति लोक लाज जानी।
यह गोपाल कहाँ लै राखौं कहत नंदजू की रानी॥

---

१ ध्यानन
२ हानि (अवधी)

सकट पूतना तृनावर्त ते यहै बिधाता राख्यौ ।
कैसे मिटै कह्यो संतन को गर्ग बचन जो भाख्यौ ।।
जद्यपि परम ब्रह्म अविनासी महतारी उर मानैं ।
'परमानन्द' प्रीति ऐसी पुनि सुक मुनि ब्यास बखानैं ।।

[८४] राग सारंग

भाँवत हरि के बाल विनोद ।
केसव राम निरखि अति विहँसत मुदित रोहिनी मात जसोद ।
आँगन पंकराग तन सोहत चल नूपुर धुनि सुनि मन मोद ।
परम सनेह बढ़ावत मनिमय रबकि रबकि बैठत चढ़ि गोद ।।
अतिहि चपल सुखदायक निसिदिन रहत केलि रस ओद[1] ।
'परमानन्द' अम्बुज लोचन फिर फिर चितवत निजजन कोद ।।

[८५] राग सारंग

बाल विनोद खरे जिय भाँवत ।
मुख प्रतिबिम्ब पकरिबे कों हरि हुलसि घुटरुवन धावत ।।
कमल नैन माखन के कारन करि करि सैन बतावत ।
सब्द जोरि बोल्यौ चाहत मुख प्रगट बचन नहिं आवत ।।
कोटि ब्रह्माण्ड खंड की महिमा सिसुता माँहि दुरावत ।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन जसुमति प्रीति बढ़ावत ।।

[८६] राग सारंग

नन्दजू के लालन की छबि आछी ।
पाय पैंजनी रुनझुन[2] बाजत चलत पूँछ गहि बाछी ।।
अरुन अधर दधि मुखलपटानो तन राजत छींटे छाछी ।
'परमानंद' प्रभु बालक लीला हँसि चितवत फिर पाछी ।।

---
[1] ओत प्रोत

[2] घुम घुम

[८७] राग स

आँगन खेलिये झनक मनक ।
लरिका जूथ संग मन मोहन बालक मनक ननक ।।
पैयाँ लागों पर घर जावो छाड़ों खनक खनक ।
'परमानन्द' कहत नन्दरानी बालनक[1] तनक तनक ।।

[८८] राग स

रहिरी ग्वालिनि जोबन मदमाती ।
मेरे छगन मगन से लालहिं कित लै उछंग लगावति छाती ।।
खोजत ते अब ही राखे है न्हानी न्हानी दूध की दाँती ।
खेलन दै घर अपने डोलत काहे को एतो इतराती ।।
उठि चली ग्वालि लाल लागे रोवन तब जसुमति लाई बहु भाँती
'परमानन्द' प्रीति अन्तर गति फिरि आई नैननि मुसकाती ।।

[८९] राग स

हरिहि जो बालक लीला भावै ।
माखन दूध दह्यौ की चोरी सोई जसोदा गावै ।।
सकट भंजि पूतना सोखी तृणावर्त बध कीनो ।
कंस हनन जमुना उधरन भक्तन कौं सुख दीनों ।।
बछरा चरावन मुरली बजावन जमुना कालु बिहारी ।
'परमानन्ददास' को जीवन बृन्दावन संचारी ।।

[९०] राग स

तुम्हारे बाल रूप पर वारी ।
मृग मद तिलक कंठ कठुला दति मुख मुसिकान बिचारी ।।
घूंघर वारे बार स्याम के लर लटकत गज मोती ।
देखि स्वरूप नंद के नंदन कौ प्रान वारति सब जुवती ।।
काखासोती हँसुली धारे मोहन पीत झगुलियाँ सोहै ।
'परमानंददास' को ठाकुर देखि ब्रह्म हर मोहै ।।

---

१ बालक

[६१] राग सा

माई मेरे गोपाल लड़ैतो ।
अपनो काहू छुवन न देहौं याहीते लोग बड़ैतो ॥
मेरे कुंवर गोरस बहुतेरो लेन उधार न जइबो ।
राखों जो कंठ लगाय लाल कौं पलना मांझ झुलइबो ॥
परम विचित्र पांय पैजनियाँ चलन घुटुरुवन धइबो ।
'परमानंद' नंद के आंगन लै लै नाम बुलइबो ॥

[६२] लाव

एक समय जसुमति सखियन सों बात कहत मुसकाय ।
मो देखत कब धौं मेरे लालन भूमि धरैगो पाँय ॥
पुनि मैया मोसों कब कहि कै कुँवर कछुक हँसि आय ।
भरि दै दूध दही के कारन तन गोरज लपटाय ॥
खरिक दुहावन मोय जातही आय मिलेंगे धाय ।
कह्यों[१] द्यौस होइगो कबहुँ ललन दुहेंगे आय ।
सौंपिहैं सुत चरावन गैयाँ सुनि सजनी नंदराय,
यह अभिलास करति जसुमति जिय 'परमानंद' बलि जाय ॥

[६३] राग बिलावल

माई तेरो कान्ह कौन अब ढंग लाग्यो ।
मेरी पीठ पर मेलि करुरा वह देख जात भाग्यो ॥
पाँच बरस को स्याम मनोहर ब्रज में डोलत नाँगो ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर काँधे पर्यो न तागो[१] ।

ग उड़ायबे के पद

(६४) राग धनाश्री

गुडी उड़ावन लागे बाल ।
सुन्दर पतँग बाँधि मनमोहन नाचत[२] हैं मोरन के लाल ॥
कोऊ पकरत कोऊ ऊँचत कोऊ देखत नैन बिसाल ।
कोऊ नाचत कोऊ करत कुलाहल कोऊ बजावत खरी करताल ॥

तागो—फारसी शब्द । यज्ञोपवीत से तात्पर्य है
बाजल

कोउ गुडी ते उरझावत आपुन ऐंचत डोर रसाल ।
'परमानन्ददास' स्वामी मन मोहन रीझि रहत एक ही काल ।।

[६५] राग धनाश्री

गोपाल माई खेलत हैं चौगान ।
ब्रज कुमार बालक संग लीने बृन्दावन मैदान ।।
चंचल बाजि[१] नचावत आवत होड़ लगावत थान ।
सब ही हस्त[२] लै गेंद चलावत करत बाबा की आन ।।
करत न संक निसंक महाबल हरत[३] नयन को मान ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गुन आनन्द[४] निधान ।।

---

१ पात अथवा ताजी
२ तन
३ हरति
४ आगरो

ाखन चोरि

[९६] राग रामकली

गोपालै माखन खान दै ।
बांह पकरि कर उहां लै जैहों मोहि जसोदा पैं जान दै ॥
सुनरी सखी मौन ह्वै रही सगरो बदन दह्यो लपटान दै ।
उनत जाय चौगुनों लेहौं नयन तृसा बुझान दै ॥
जो कहत हरि लरका है सुनत मनोहर कान दै ।
'परमानन्द' प्रभु कबहूँ न छांडूँ राखोंगी तन मन प्रान दै ॥

[९७] राग रामकली

बाबा जु मोहि दुहन सिखावौ ।
गाय एक सों मिलवो हौंहूँ दुहौं बलदाऊ दुहावौ ॥
लई नोई मेलि चरन[१] में लाडिलो कुँवर बछराऊ ।
पानि पयोधर धरे धेनु कौ भाजन बेगही भरो उबराऊ[२] ॥
तब नंदरानी नयन सिराये द्विज बुलाय दई दच्छिना दिवाहू[३] ।
बारि फेरि पीताम्बर हरि पर 'परमानन्द' ग्वाल[४] पहिराहू ॥

[९८] राग रामकली

ढोटा मेरी दोहनी दुराई ।
मोपैं तें लीनीं देखन कों यह धौं कौन बढ़ाई ॥
निपट सवेरी हौं उठि आतुर खिरक दुहावन आई ।
जान अकेली या ढोटा ने बहुतै भांति खिजाई ॥
द्वार उघारि खोल दिये बछरा बेखट गैया चुर वाई ।
हौं पचिहारी कही नहिं मानत बरजत[५] नाकै आई ॥

मेली चरन में
सोउ पटाहू
दच्छिन बाहू
दासहिं
बरबट

घर मेरी सास आसेगी[1] हौं कहा उत्तर देहौं जाई
'परमानंद' प्रभु तब हंसि दीनो भई बात मन भाई

बलदेव जी के पद

[९९]

मैया निपट बुरो बलदाऊ।
कहत है बन बड़ो तमासो सब लरका जुरि आऊ
मोहू कों चुचकारि चले लै जहां बहुत बड़ो बन झाऊ
ह्वांहीते कहि छांड़ि चले सब काटि खायरे हाऊ
डरपि कांपि के उठि ठाडो भयौ कोऊ न धीर धराऊ
धरि परि गयो चल्यौ नहीं जावै भाजे जात अगाऊ
मोसौं कहत मोल कौ लीहो आप कहावत साऊ
'परमानन्द' बलराम चबाई तैसेई मिले सखाऊ

[१००]

देखिरी रोहिनि मैया कैसे हैं बलदाऊ भैया।
जमुना के तीर मोहि झुझुवा बतायोरी ॥
सुबल श्रीदामा साथ हँसि हँसि बूझै बात।
आप डरपे और मोहि डरपायो री ॥
जहाँ जहाँ बोले मोर चित्त रहत ताही ओर।
भाजोरे भाजो भैया वह देखो आयोरी ॥
आपु गये तरु चढ़ि मोहि छांड्यो वाही तर।
धर धर छाती करे दोर्यो घर आयोरी ॥
उछंग सों लिये लगाय कंठ सों रहे लपटाय।
बारी रे बारी मेरो हियो भरि आयोरी ॥
'परमानंद' रानी दुज बुलाय वेद मंत्र पढ़ायो री।
बछिया की पूंछ गहि हाथहि दिखायोरी ॥

---

1 भारेगी

[१०१] बसं

हो हो होरी हलधर आवै ।
ऐसी प्रीति स्याम सुन्दर सौं हरि लीला अपने मुख गावै ।।
पियै बारुनी मन संकरषन नैन रसमसे कच कछु ढीले ।
भौंह चढी चढी सिर पाग लटपटी बचन गंभीर अधर गीले ।।
नील बसन छबि डगति चरन गति सुभ्र सरीर रोहिनी नंदन ।
'परमानंददास' जुबती प्रिय कुण्डल एक चढ़ाये चंदन ।।

[१०२] राग बस

मोहन मान मनायौ मेरो ।
हौं बलिहारी कमल नयन की नेकु चितै मुख फेरो ।।
माखन खाहु लेहु मुरली ग्वालन बालन टेरो ।
जोरी करिकै जोरि आपनी न्यारी गैयाँ घेरो ।।
कारो कहि कहि मोहि खिजावत नहीं बरजत बल अधिक अनेरो ।
इन्द्र-नीलमनि सो तन सुन्दर कहा जाने बल चेरो ।।
मेरौ सुत सिरताज सबनकौ सबतें कान्ह बडेरो ।
'परमानन्द' भोर भयो गावै बिसद बिमल जस तेरौ ।।

[१०३] राग बसं

लाल[1] कौं भावै गुड़ गाँड़े[2] अरु बेर ।
और भावे याहे[3] सेंद कचरिया लाओ बबा बनहेर[4] ।।
मधु मेवा पकवान मिठाई और बिंजन कौ ढेर ।
'परमानन्ददास' कौं ठाकुर पिल्ला लायो घेर ।।

---

[1] मोहे

[2] सेरना (सिरनी) अथवा (सिन्नी) खुशी अथवा मांगलिक अवसरों पर बाँटी ज
वाली मिठाई ।

[3] और भावे मोहे सेंद कचरिया लाओ नंदजू हेर ।

[4] और भावे याहे गैयन में बसिबो संग सखा सब टेर ।।

भोजन के लिए आह्वान

[१०४] रा

देखोरी गोपाल कहाँ हैं खेलत ।
कै गायन संग गये अगाऊ के खिरक बछरवन मेलत ॥
कहत जसोदा सखियन आगे परोसि धरी है थारी ।
भोजन आय करो दोऊ भैया बालक सहित मुरारी ॥
ऐसी प्रीति पिता माता की पलक ओट नहिं कीजै ।
बारंबार 'दास परमानन्द' हरि की बलैया लीजै ॥

[१०५] राग

भोजन कों बोलत महतारी ।
बल समेत आओ मेरे मोहन बैठे नंद परोसी थारी ॥
खीर सिरात स्वाद नहिं आवत बेगि ग्रास तुम लेहो मुरारी ।
चितवत चित नीकें करि जैंवो पाछे कीजे केलि बिहारी ॥
अहो अहो सुबल स्रीदामा बैठो नेंक, करौं मनुहारी ।
'परमानन्ददास' कौ जीवन मुख बिजन दै जाँउ बलिहारी ॥

[१०६] राग

बोलत स्याम जसोदा मैया ।
अति आनन्द प्रेम रस उमगी हँसि हँसि लेत बलैया ॥
उर अंचल स्रमजल पोंछत[१] पुनि पुनि अपने हाथ ।
भोजन करौं लडैते मोहन सब ग्वालन के साथ ॥
सुत मुख चन्द बिलोकि सकत नहिं मित्र समाज ।
'परमानन्द प्रभु' परम मनोहर अति विचित्र ब्रजराज ॥

[१०७] राग ध

नैंक गोपालै दीजो टेर ।
आज सबारे कियो न कलेऊ सुरत भई बडि बेर ॥
ढूंढत फिरत जसोदा मैया कहाँ कहाँ हो डोलत ।
यह कहियो घर जाउ सांवरे बाबा नंद तोहि बोलत ॥

---
१ औंछत ।

इतनी बात सुनत ही आये प्रीति जो मन में जानी ।
'परमानंद' स्वामी को जननी देखि[1] बदन मुसकानी ॥

[१०८] राग धनाश्री

प्रेम मगन बोलत नंदरानो ।
अहो सुबल अहो स्रीदामा ले आवहु किन टेरि मद्दुबानी ॥
भोजन बार अबार जानि जिय सुरत भई आतुर अकुलानी ।
ढूँढत घर घर आंगन लौं तनकी दसा हिरानी ॥
जननी प्रीति जान उठि दौरे सोभित हैं कच रज लपटानी ।
'परमानंद' प्रभु नंद नंदन कौं अखियाँ निरखि सिरानी ॥

[१०९] राग धनाश्री

बलि गई स्याम मनोहर गात ।
तिहारो बदन सुधानिधि सीतल अँचवत दृग न अघात ॥
पलक ओट जिन जाउ पियारे कहत जसोदा मात ।
छिन एक खेलन जात द्यौस में पल जुग कल्प बिहात ॥
भोजन आय करो दोऊ भैया कुँवर लाडले तात ।
'परमानंद' कहत नँदरानी प्रेम लपेटी बात ॥

[११०] राग धनाश्री

यह तो भाग्य पुरुष मेरी माई ।*
मोहन कों गोदी में लिये जेंवत हैं ब्रजराई ॥
चुचकारत पोंछत अम्बुज मुख उर आनँद न समाई ।
लपटे कर लपटात थोंदपर दूध धार[2] लपटाई ॥
चिबुक केस जब गहत किलकि कै तब जसुमति मुसकाई ।
माँगत सिखरण[3] दैरी मैया बेला भरि कै लाई ॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी सोभा सहज निकाई ।
'परमानन्द' नारद मुनि तरसत घर बैठे निधिपाई ॥

देखत बदन सुकानी
देखिए—श्री परीख जी की तृतीय गृह की तीसरी कीर्तन प्रति
लार ।
सिखरण—श्रीखंड [दही केशर-शर्करायुक्त लेह्य पदार्थ विशेष—अर्थ]

[१११]

भोजन करत हैं गोपाल ।

खट रस धरे बनाय जसोदा साजे कंचन थाल ॥

करति बयार निहारत सुत मुख चंचल नयन बिसाल ।

जो भावै सोही मेरे मोहन माधुरी[1] मधुर रसाल ॥

जो सुख सनकादिक कौं[2] दुरलभ दुरि देखत ब्रज बाल ।

'परमानन्ददास' को ठाकुर चिर जीवौ नंदलाल ॥

[११२]

लाल कौं मीठी खीर जो भावै ।

वेला भरि भरि लावति जसोदा बूरो अधिक मिलावै ।

कनियाँ लिये जसोदा ठाढ़ी रुचि कर कौर बनावै ।

ग्वाल बाल बनचरन के आगे जूठे[3] हाथ दिखावै ॥

ब्रजरानीजू चहुँधा चितवत तनमन मोद बढ़ावै ।

'परमानन्ददास' को ठाकुर हँसि हँसि कंठ लगावै ॥

[११३] राग

हरि भोजन करत विनोद सों ।

करि करि कौर मुखारविंद में देति जसोदा मोद सों ॥

मधु मेवा पकवान मिठाई दूध दह्यो घृत ओद[4] सों ।

'परमानन्द' प्रभु भोजन करत हैं भोग लग्यो संखोद[5] सों ॥

---

१ लैहो बचन ।

२ मुनि

३ झूठे हो ।

४ ग्रोद = चावल [अर्थ]

५ शंखोदक = भोग के समय शंख द्वारा जल फेरना [अर्थ]

[११४]　　राग आसावरी

पांडे भोग लगावन न पावै ।
करि करि पाक जबही अर्पत हैं तब तब तू छुइ आवै ।।
मैं स्त्रद्धा करि ब्राह्मन न्योत्यौ तू जो गोपाल खिजावै ।
वह अपने ठाकुर कों[1] जिमावत तू योंही[2] छुइ आवै ।।
तू यह बात न जाने री मैया मोहि किन दोस लगावै ।
'परमानन्द' वह नयन मूँदि कै मोही कों जु बुलावै ।।

दधि मंथन

[११५]　　राग बिलावल

अहो[3] दधि मथन करे नँदरानी ।
बारे कन्हैया आर न कीजै छांड अब देहौ मँथानी ।।
बारी मेरे मोहन कर पिरायेंगे कौन चित्त मति ठानी ।
हँसि मुसकाय जननी तन[4] चितये सुधि सागर की आनी ।।
जो गुन सरसुती छंदन, गावैं नेति नेति मृदु बानी ।
'परमानन्द' जसोदा रानी सुत सनेह लपटानी ।।

[११६]　　विभास चर्चरी

गोविन्द दधि न बिलोवन देहीं ।
बार बार पाँय परत जसोदा कान्ह कलेऊ लेहीं ।।
बाँधि छुद्र घन्टिका मुदित नन्द जू की रानी ।
कंचन चीर धरि मनिगन वलय घोख कहत मृदु बानी ।।
एक एक ते होय देव दैत्य सब कमठ मन्दराचल जानी ।
देखत देव लच्छमी कम्पी जब गही गोपाल मथानी* ।।
कृस्न चन्द ब्रजराज रमापति भूतल भार उतारे ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ब्रजबसि जगत[5] उधारे ।।

---

[1] हैं ।
[2] ताहै ।
[3] हो ।
[4] तव ।
* तुलना कीजिए सूर से—जब मोहन कर गही मथानी ।
[5] जात ।

गो दोहन

[११७] राग बिलावल

माई साँवरो गोविन्द लोला।
ग्वाल ढाड़ी हँसै प्रान हरि में बसै काम की बावरी चारू बोला
आव री ग्वालिनि, मेल दे बाछरी आनि देहो दोहनी हाथ मेरे
धेनु धौरी दुहूँ प्रेम बातें कहूँ मेरो चित्त लाग्यो है रूप तेरे
बाल लीला भली सैन देकै चली आन देहौं दूध धार आय प्याऊँ
'दासपरमानन्द' नंद नन्दन केलि चोरि चित्त चारु यों मिलन पाऊँ।

[११८] राग बिलावल

तनक कनक की दोहनी देरी मैया।
तात मोहि सिखवन कह्यौ दुहन धौरी गैया।
हरि बिसमासन बैठि कै मृदु कर थन लीनों।
धार अटपटी देखि कै ब्रजपति हँसि दीनों॥
गृह-गृह तें आई सब देखन ब्रजनारी।
सकुचित सब मन हरि लियो हंसि धोख बिहारी॥
द्विज बुलाय दच्छिना दई बहु बिधि मंगल गावै।
'परमानन्द' प्रभु साँवरो सुख सिंधु बढ़ावै[१]॥

गोचारण

[११९] राग विभास

खेलन हो[२] चले ब्रजराई।
करतल बेनु लकुटिया काँधे कटि मेखला बनाई।
द्वार द्वार प्रति सखा बुलाए बछरा ढिलवो भाई॥
भोर भए अब तुम कहा सोवत हौ जागहु नंद दुहाई।
अपनी अपनी छाक लेहु तुम बहुत भाँति घृतसानी।
'परमानन्द' स्वामी की लीला या बिधि किनहु न जानी॥

१ परमानन्ददास को ठाकुर आनन्द सिंधु बढ़ावै।
२ बन

[१२०] राग बिलावल

प्रथम गोचारन चले कन्हाई ।
माथे मुकुट पीताम्बर की छबि बनमाला पहराई ॥
कुण्डल स्रवन कपोल बिराजत सुन्दरता बन आई[१] ।
घर घर तें सब छाक लेत हैं संग सखा सुखदाई ॥
आगे धेनु हाँकि सब लीनी पाछें मुरलि बजाई ।
'परमानन्द' प्रभु मनमोहन ब्रज बासिन सुरत कराई ॥

[१२१] राग सारंग

भोजन करजु उठे दोऊ भैय्या ।
हस्त पखारि सुधा अचवन करिकै बीरी लेहु कन्हैय्या ॥
मात जसोदा करत आरती पुनि पुनि लेत बलैया ।
'परमानंददास' को ठाकुर ब्रजजन केलि करैया ॥

[१२२] राग सारंग

आज अति आनंद ब्रजराय ।
धन्य दिवस बन चलत प्रथम ही कान्ह चरावन गाय ॥
अपनो पीताम्बर लकुटि मुरलिका और सिर खौरि बनाइ ।
प्रीति सहित अवलोकि गहत हैं मात पिता के पाँय ॥
गोरोचन दूध दधि माथे रोरी अच्छत लाय ।
निरखि मुख अति आनंदित गोपीजन लेत बलाय ॥
ग्वाल विमल बलैयाँ लेत परस्पर घर घर ते सब आय ।
हेरी देत बजावत महुअरि उर आनंद न समाय ॥
ब्रज जन सब मिलि धेनुन सौंपत नैन निरखि सुखपाय ।
'परमानंद' प्रभु यहि बानिक ऊपर बलि बलि बलि बलि जाय ॥

---
[१] बनिआई

[१२३] राग मालश्री

कांधै लकुटि धरि नन्द चले बन दोऊ बालक दीने आगे ।
राम कृस्न सों प्रीति निरंतर सखा पायो बड़ भागे ।।
पूरब संचित सुकृत रास फल अपनी आँखिन देख्यौ ।
मो समान अब कोऊ नाहीं जन्म सुफल करि लेख्यौ ।।
खेलत हँसत पंथ में धावत लरिकाई की बानी ।
'परमानंद' भगत सरन माधौ चारि पदारथ दानी ।।

[१२४] राग

देखत ब्रजनाथ बदन कोटि बारों ।
जलज निकट नैन मन उपमा बिचारों ।।
कुंडल ससि सूर उदित अघटन की घटना ।
कुंतल अलिमाल तापै मुरली कल रटना ।।
जलद कंठ सुन्दर पीत बसन दामिनी ।
बनमाल सक्र-चाप मोही सब भामिनी ।।
मुक्तामनि हार मण्डित तारागन पांति ।
'परमानंद' स्वामी गोपाल सब विचित्र भांति ।।

[१२५] माल

गाय चारबे कौ व्यसनु ।
राधा मुख लाय राख्यौ नैननि कौ रसनु ।।
कबहुँक घर, कबहुँक बन खेलन को जसनु[१] ।
'परमानंद' प्रभुहि भावे तेरे ए मुख हँसनु ।।

[१२६] गौ

मोहन नेक सुनाहुगे गौरी ।
बनतें आवत कुंवर कन्हैया पुहपमाल लै दौरी ।।
ग्वाल बाल के मध्य विराजत टेरत ही धूमर-धौरी ।
'परमानंद' प्रभु की छवि निरखत परि गई प्रेम ठगौरी ।।

---

१ जशन (उत्साह, आनन्द, उत्सव) फारसी प्रयोग
अथवा जतनु ।

[१२७] राग गौरी

ठाडी बूझति नैन बिसालै ।
ताहि जसोदा सिखवन लागी त्रिभुवन गुरू गोपालै ॥
बलाइ लैहौं कत घर जात पराये दूध दही की चोरी ।
ए सब ग्वालि कहति हैं मोसों मारि दोहनी फोरी ॥
जिन पतियाय मया तू इनकों[१] जुवती सुभाव न जाई ।
जो हम पोच करे काहू कों बाबा नन्द दुहाई ॥
खेलत हुते जहाँ रंग अपने झूंठे दोस लगावैं ।
'परमानंददास' यह बूझै कौन बात जिय भावें ॥

[१२८] राग सारंग

कौन बन जैहौ भैया आज ।
कहत गोपाल सुनो हो बालक करौ गमन कौ साज ॥
ऐसो चतुर कौन नन्द नन्दन जों जाने रस रीति ।
तहाँ चलो जहँ हरख खेलिये अरु उपजे मन प्रीति ॥
पूरे धेनु बिखान महुबारी छींके कंध चढ़ाये ।
रोटी भात दही भरि भाजन अरु आगे दै ग्वाल गाए ॥
ठौर ठौर कूकें दै अहसत आए जमुना तीर ।
'परमानन्द प्रभु' आनन्द रूप राम कृस्न दोऊ बीर ॥

[१२९] राग यमन

लाल तुम कैसे गाय चराईं ।
ग्वाल संग छैय्याँ में बैठे कौन विपिन में जाई ॥
कहाँ कहाँ खेले बालकलीला छुवत परस्पर धाई ।
लै काँधे हारे जीते कों दियौ ठौर पहुँचाई ॥
ठाड़े कहाँ कदम तर गिरिधर माधुरी बैनु बजाई ।
मूँदे दृग दुरि हो ग्वाल तुम दीने कहाँ बताई ।
गिरि चढि कहाँ बुलाई गैयाँ ऊँची टेर सुनाई ।
'परमानन्द' प्रभु कह्यौ कृपानिधि बूझति जसोदा माई ॥

---
[१] जिनि पतियाय मैया इनकी बातें ।

गोदोहन

[१३०] राग सा

दुहि दुहि ल्यावत धौरी गैया ।
कमल नैन कों अति भावत है, मथि मथि ल्यावत धैया ॥
हँसि हँसि ग्वाल कहत सब बातें, सुन गोकुल के रैया ।
ऐसौ स्वाद कबहूँ[1] नहिं पायौ अपनी सौंह कन्हैया ॥
मोहन अधिक भूख जो लागी छांक बाँटि दे भैय्या ।
'परमानन्ददास' कों दीजै पुनि पुनि लेत बलैया ॥

[१३१] राग आसा

साँवरौ बदन देखि लुभानी ।
चले जात फिरि चितयो मोतन तब ते संग लगानी ॥
बे वा घाट पिवावत[2] गैयां हों इततें गई पानी ।
कमल नैन उपरेना[3] फेर्यो 'परमानन्द' हि जानी ॥

[१३२] देव गन्धार तित

ठाढ़ी जसोदा कहै ।
यह ब्रज के लोग लाल के गोहन लागे रहै ॥
जाके भवन जात न कबहूं सो झूठे आनि गहै ।
एक गाँऊ इक बास बेसैबो कैसे जात निबहै ॥
तुम जिन खीजो मात जसोदा सबनि को जीवन यहै ।
'परमानन्द' आँखि जरो जाकी जू ढेठो दृष्टि चहै ॥

[१३३] राग केदार

अरी मेरो तनक सो गोपाल कहा करि जाने दधि की चोरी ।
काहे कों आवति हाथ नचावति जीभ न करही थोरी ॥
कब छींके ते माखन खायो कब दधि मटुकी फोरी ।
अंगुरिन करि कबहूं नहिं चाखत घर ही भरी कमोरी ॥

---

१ कहूँ ।
२ चरावत ।
३ दुपट्टा (अर्थ)

इतनो बात सुनी जब ग्वालिन बिहँसि चली मुख मोरी ।
'परमानन्द' नन्दरानी के सुत सों जो कछु कहै सो थोरी ॥

[१३४] राग केदारा

जसोदा चंचल तेरो पूत ।
आनंद्यो ब्रज बीथिन डोलत करै अटपटे सूत* ॥
वह्यौ दूध लै घृत आगें करि जहँ तहँ धर्यो दुराय ।
अँधियारे घर कोउ न जाने तहं पहले ही जाय ॥
गोरस के सब भाजन फोरै माखन खायौ चुराय ।
लरिकन के कर कान मरोरत तहं ते चलै रुवाय ॥
बांट देत बनचर कौतुक करत बिनोद बिचार ।
'परमानन्द प्रभु' गोपी वल्लभ भावै मदन मुरार ॥

[१३५] राग देव गान्धार तिताला

ढोटा रंचक माखन खायौ ।
काहे कों करुई होति री ग्वालिनि सब ब्रज गाजि हलायो ॥
जाकों जितनो तुम जानति हौ दूनो मेरे लेहू ।
मेरो कान्ह रहे दूबलो[१] आसिस सबै मिलि देहू* ॥
कमल नयन मेरो अंखियन तारो कुल दीपक ब्रज गेह ।
'परमानन्द' कहत नन्दरानी सुत प्रति अधिक सनेह ॥

[१३६] बिलावल तिताला

दधि मथति ग्वालि गरबीली री ।
रुनक भुनक कर कंगन बाजे बांह हलावति ढीली री ॥
कृस्न देव दधि माखन मांगत नाहिन देत हठीली री ।
भरी गुमान विलोवन लागी अपुने रंग रंगीली री ॥
हंसि बोल्यो नन्दलाल लाड़िलो कछु एक बात कहीली री ।
'परमानन्द' नन्दनन्दन कों[२] सरबसु दियो हैं छबीली री ॥

वर [अर्थ]
त्सल्य की यह उत्कृष्ट भावना 'सूरसागर' में क्वचित् ही मिलती हैं ।
दुकेलो ।
प्रतिदेखिकै ।

[१३७] बिलावल ति

प्रात समै गोपी नन्दरानी।
स्रम अति उपजत तेहि औसर दधि मथत माट मथानी॥
तेहि छिन लोल के बोल बिराजत कंकन नूपुर कुनित एक रस।
रजु करखत भुज लागत छवि गावत मुदित स्याम सुन्दर जस॥
चंचल अचपल कुच हारावली बनी चलित खसित कुसुमाकर।
मनि प्रकास नहि दीप अपेच्छा सहज भाव राजत ग्वालिन घर॥
चढ़ि विमान देवता देखत गोकुल अमरावती बिसेखी।
'परमानन्द' घोख कुतूहल जहाँ तहाँ अद्‌भुत छवि पेखी॥

[१३८] सूहा बिलावल ति

बड़ भागिन गोकुल की नारि।
माखन रोटी देय नचावति पद गावति मुखलेत पसारि॥
सोभित बदन कमल दल लोचन सोभित केस मधु अनुहारि।
सोभित मकर कुण्डल छवि सोभित किंकिनी करत उचारि॥
सोभित नृत्य करत 'परमानन्द' गोपबधू बर भुजा पसारि।

[१३९]

ऐसे लरिका कतहूँ न देखे बाट सुचालि गाँउ की माँई।
माखन चोरत भाजन फोरत उलटि गगरि दै मुरि मुसकाई॥
तब हौं देन उरहनों आई कहा करों जो नाकै आई।
सुनहु जसोदा तुम ठकुरायनि तुम सों कहत मेरी बौराई॥
पाछे ठाड़े मोहन चितवत धीरें ही ते औसर लाई।
'परमानन्ददास' को ठाकुर पच्यो[२] चाहत चोरी खाई॥

[१४०] सूहा बिलावल ति

बहुतहि पचत या ढोटा पै कैसी धौंतहि लै लै आवत।
हरि हरि हरि देखोरी माई जानौ जू बात दुरावत॥
बिद्यमान दधि दूध चुरायौ फिरि फिरि मोहि बौरावत।
चतुर चोर बिद्या सम्पूरन गढ़ि गढ़ि छोल बनावत॥

---
२ पकरघो।

जो न पतियाहु सौंह ले मोसों सांची सपथ करावत ।
तेरे बक्षजात[1] जे सिव हैं तापर हाथ दिवावत ।।
बदन मोरि मुसकाइ चलीं है फिरि उरहन मिस आवत ।
'परमानन्ददास' कों ठाकुर स्याम मनोहर मन भावत ।।

[१४१] राग बिलावल

जब नन्दलाल नयन भरि देखे ।
एकटक रही संभार न तनकी मोहन सूरति[2] पेखे ।।
स्याम बरन पीताम्बर काछे अरु चन्दन की खोर ।
कटि किंकिनि कलराव मनोहर सकल तियन चित चोर ।।
कुण्डल झलक परत गंडनि पर जाइ अचानक निकसे भोर ।
स्रीमुख कमल मन्द मृदु मुसकनि लेत करखि मन नंद किसोर ।।
मुक्ता माल राजति उर ऊपर चितए सखी जबै इह ओर ।
'परमानन्द' निरखि सोभा ब्रज बनिता डारति तृन तोरि ।।

[१४२] राग कान्हरा

आवत हैं गोकुल के लोचन ।
नंद किसोर जसोदा नन्दन मदन गोपाल बिरह दुख मोचन ।
गोप बृन्द में ऐसे सोभत ज्यों नच्छत्र मँह पूरन चन्द ।
बने जु धातु गुंजामनि सेली भेरव बन्यौ हरि आनन्द कन्द ।।
बर्हा प्रसून कंठ मनिमाला अद्भुत रूप नटवर कांछे ।
कुँण्डल लोल कपोल बिराजत मोहन बेनु बजावत आछे ।।
भक्त भ्रमर पावन जस गावत इहि बिधि ब्रज प्रवेस हरि कीनो ।
'परमानंद प्रभु' चलत ललित गति जसुमति धाय उछंगनि लीनो ।।

[१४३] राग सारंग

बनेरी गोपाल बाल इह[3] आवत ।
माधुरी मूरति मन मोहन मन भावत ।।
कुंचित केस सुदेस बदन पर बीच बीच जल बूँद रहै ।
मानो कमल पत्र पर मोती खंजन निकट सलील गहै ।।

---

[1] स्तन द्वय [अर्थ]
[2] मूरति
[3] रस

गोपी नैंन भृंग रस लंपट उडि-उडि परत बदन मांहीं ।
'परमानन्ददास' रस लोभी अति आतुर कहँ जांही ॥

[१४४] राग गौरी

बरजति काहे तें नहीं ।
हानि होति दिन प्रति की बातें कौलौं परति सही ॥
माखन खाई दूध गहि ढोरै लेपत अंग दही ।
ता पाछे जो घर के लरिकनु भाजत छिरक मही ॥
जो कछु दुराइ धरौ दूरि कौ[1] जानत सही तही ।
कहा बसाय तुम्हारे सुत सों अब पचहारि रही ॥
चंचल चपल चोर चिन्तामनि मोहन कथा न परति कही ।
'परमानन्द' स्वामी उरहन के मिस मिलन कों ढूंढि रही ॥

माखन लीला

[१४५] राग बिलावल

जसोदा बरजत काहे न माई ।
भाजन फोरि दही सब खायौ बातें कही न जाई ॥
हौं जो गई ही खरिक आपुने जैसेंहि आंगनि में आई ।
दूध दही की कीच मची है दूरि तें देख्यौ कन्हाई ॥
तब अपने कर सौं गहि कै हौं तुम ही पै लै आई ।
'परमानन्द' भाग्य गोपी कौ प्रगट प्रेम निधि[2] पाई ॥

[१४६] राग बिलावल

ग्वालिनि तोपै ऐसौ क्यों कहि आयौ ।
मेरौ घर घर जाय स्यामधम ताही ते दोस लगायौ ॥
घर कौ माखन दूध न भावै तेरौ दह्यौ क्यों खायौ ।
वारि डारों कोटि तोसी तिरिया कौं जिन मेरौ लाल खिझायो ॥
कटुक बचन सुनि ग्वालिनि डोली[3] हरि सों नेह बढ़ायौ ।
'परमानंद प्रभु' बत-रस अटकी घर कौ काज बिसरायौ ॥

---

१ करि ।
२ फल ।
३ भोरी ।

हाने के पद

[१४७] राग बिलावल

तेरे री लाल मेरो माखन खायौ ।
भरी दुपहरी सब सूनो घर ढंढोरि अब ही उठि धायौ ॥
खोलि किबार अकेले मंदिर दूध दह्यो सब लरकन खायौ ।
छींके ते काढ़ि, खाट चढ़ि मोहन कछु खायो कछु भू ढरकायौ ॥
नित प्रति हानि कहाँ लौं सहिये यह ढोटा ऐसे ढंग लायौ ।
'परमानन्द' रानी तुम बरजो पूत अनोखो तेंहीं जायौ ॥

[१४८] राग बिलावल

भाजि गयो मेरो भाजन फोरि ।
कहा री कहूँ सुन मात जसोदा अरु माखन खायो चोरि ॥
लरिका पांच सात संग लीने रोके रहत साँकरी खोरि ।
मारग में कोउ चलन न पावत लेत हाथ तें दूध[1] मरोर ॥
समझ न परत या ढोटा की रात दिवस गोरस ढंढोर ।
आँनदे फिरत फाग सो खेलत तारी देत हँसत मुख मोर ॥
सुन्दर स्याम रंगीलो ढोटा सब ब्रज बाँध्यौ प्रेम की डोर ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर स्यानी ग्वालिन लेत बलैया अंचर छोर ॥

[१४९] राग बिलावल

लियो मेरे हाथ ते छिड़ाई ।
तावन[2] कों लावत ही माखन डार्यो है कुंमर कन्हाई ॥
बूझन लाग्यो मोही कों कौन है पाहुनो कहा तेरो नाम ।
देखियत कहूँ भलो मानस सो कहिधौं कहा तेरो गाम ॥
देखत रूप ठगी सी ठाडी मन मोहन रूप निकाई ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर प्रेम ठगौरी लाई ॥

---

[1] दोहनी हाथ मरोरि ।
[2] [पिघलाने के लिए-अर्थ]

[१५०] राग आ

माधौ जू जान दै हौं चली बाट ।
कमल नैन काहे कौं रोकत औघट जमुना घाट ॥
सखाउ देखि हैं कोऊ गहत सीस ते माट ।
तुम नाहीं डर मानत मोहन मेरे गोवर्धन बाट ॥
क्यों बिकायगो मेरो गोरस भोर करत हौ नाट ।
चन्द्रावली उझकि 'परमानन्द' निसिदिन एकहि ठाट ॥

[१५१] राग

कापर ढोटा नैन[1] नचावत कोहै तिहारे बाबा की चेरी ।
गोरस बेचन जात मधुपुरी आय अचानक बनमें घेरी ॥
सैनन दै सब सखा बुलाए बातहि बात समस्या फेरी ।
जाय पुकारौं नंदजू के आगे जिन कोऊ छुवौ मटुकिया मेरी ॥
गोकुल बसि तुम ढीठ भए हो बहुतै कान करत हौं तेरी ।
'परमानन्ददास को ठाकुर' बलि बलि जाऊँ स्यामघन केरी ॥

[१५२]

तेरी सौं सुन सुन सुनरी मैया ।
याके चरित तू नहीं जानत बोल बूझ संकरखन भैया ॥
ब्याई गाय बछरवा चाटत पीवत हौं प्रातखन घैय्या ।
याहि देख धौरी बिझुकानी मारन कों दौरी मोहि गैया ॥
द्वै सींगन के बीच परचौ मैं तहाँ रखवारो कोउ न रहैया ।
तेरो पुन्य सहाय भयो है अब उबर्यौ बाबा नंद दुहैया ॥
यह जु उखटि परी ही मोपै भाज चली कहि दैया दैया ।
'परमानन्द स्वामी' को जननी उर लगाय हँसि लेति बलैया ॥

१ नचत ।

[१५३] राग धना

भली यह खेलबे की बान ।
मदन गोपाल लाल काहू को राखत नाहिन कान ॥
सुनो जसोदा करतब सुतके पहले माँट मथान ।
ढोरि फोरि दधि डारि अजिर मँह कौन सहे नित हान ॥
अपने हाथ बन देत बनचरनकूं दूध भात घृत सान ।
जो बरजौ तो आँखि दिखावे परघर कूदि निदान ॥
ठाड़ी हँसत नंदजू की रानी मूँदि कमल मुख पानि ।
'परमानन्ददास' यह जाने बोल बूझ धों आनि ॥

[१५४] राग धनाश्री

ऐसे माई लरिकन कों आदेस[1] कीजे ।
दूर ही ते भये दरसन देखिये पाँय लागि माँग कछु लीजे ॥
अब ही हरि ढंढोरि माट सब या छिन मौन धरि बैठे ।
हौं पचिहारी कह्यौ नहीं मानत बिनती करत जातहैं ऐंठे ॥
सुनो हो जसोदा या करतब सुत के चोरी करि साध कहाये ।
जद्यपि यह गुन कमल नयन के 'परमानन्द' जिय भाये ॥

[१५५] राग सारंग

झूठे दोस गोपालै लावति ।
जहाँ जहाँ खेलै मेरो मोहन तहाँतहाँ उठि धावति ॥
कब तेरो दधि माखन खायो ऐसेई आवत हाथ नचावति ।
'परमानन्द' मदन मोहन कों ब्रज की लीला मन भावति ॥

[१५६] राग सारंग

मेरो हरि गंगा को सो पान्यौ ।
पाँच बरस को सुद्ध साँवरो तैं क्यों[2] बिसई जान्यौ ॥
नित उठि आवत हाथ नचावत कौन सहे नकबान्यौ ।
चूरी फोरत बाँह मरोरत माँट दही कौ भान्यौ ॥

---

[1] सासन
[2] ताकों

ठाड़ो हँसत नंदजू की रानी ग्वालिन बचन न मान्यौ ।
'परमानन्द' मुसकाय चली जब देख्यौ नंद धिरान्यौ[१] ॥

[१५७] राग

गोरस कहा दिखावन आई ।
जितनौक खायौ नंद जू के ढोटा बदलि लेहु मेरो माई ॥
जैसो कीनो तुमहीं कन्हैया मंदिर तें उठि धाई ।
पाँच सखी मिलि देत उराहनौं इहि तेरी कौन बड़ाई ॥
सुन्दर कान्ह छबीलो नागर यहि मिस देखन आई ।
'परमानंद स्वामी' कों मिलि कै रहसि चली मुसकाई ॥

[१५८] राग रा

माखन चोर री हौं[२] पायौ ।
जावत[३] कहाँ जान कैसे पावत बहुत दिननहिं खायौ ॥
स्रो मुख ते उघरी[४] ह्वै बतियाँ तब हँसि कंठ लगायौ ।
'परमानन्द' प्रभु प्रानजीवन धन वेद विमल जस गायौ ॥ ※

[१५९] राग

यहाँ लौं नेक चलो नँद रानी जू ।
अपने सुत के कौतुक देखो कियो दूध में पानी जू ॥
मेरे सिर की चटक चूनरी लै रस में वह सानी जू ।
हमरो तुमरो बैर कहा है फोरी दधि की मथानी जू ॥
ब्रज को बसिवो हम छाँड़दे हैं यह निस्चय करि जानौ जू ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर करें बास रजधानी जू ॥

---

१ मुसकाय चली जब देख्यौ नंद घर आन्यौ
२ मैं ।
३ जैयतु ।
४ गई है ।
※ हौं जो कहति ही होत कहा है नित उठ भाजन लगन छुपायौ ।
बहुत बार कोरे लगि देख्यौ मेरी घात न आयौ ॥
बेनी को कर गही चामटी घूँघट माँझ दिखायो ।
मत रोवो तुम सों कौन कहत है ले उछङ्ग हुलरायो ॥

राधाजू की बधाई

[१६०] राग बिहाग

धन धन लाडिली[1] के चरन ।[*]
अतिहि मृदुल सुगंध सीतल कमल के से बरन ।।
नखचन्द चारु अनूप राजत जोति जगमग करन ।
नुपूर कुनित कुंज बिहरत परम कौतिक करन ।।
नंद सुत मनमोद कारी बिरह[2] सागर तरन ।
'दास परमानंद' छिन छिन स्याम ताकी सरन ।।

[१६१] राग धनाश्री

कुंवरी परगटी गान गावत ढाढ़ी ढाढ़िन आए ।
कीरतिजू की कीरति सुनि हम बहु जाचक पहिराए ।।
हम अभिलाख कछुअ न चाहत जीवेंगे जसगाए ।
मगन भए आँगन नाचत देखि बदन मुसकाए ।।
हीरा हाटक हार अमोलक रानीजू पहिराए ।
बारि बारि कुंवरी के मुख पर सबकौं देत लुटाई ।।
आज मनोरथ बिन पूरे अनायास निधि पाई ।
'परमानंद स्वामी' की जोरी राधा सहज सुहाई ।।

[१६२] राग सारंग

रावल में बाजत कहाँ बधाई ।
प्रगट भई बृखभान गोप कें नंद सुवन सुखदाई ।।
घर घर तें आवत ब्रजनारी आनंद मंगल गावैं ।
इक कुंकुम रोरी ते मोतिन चौक पुरावैं ।।
हरखत लोग नगर के बासी भेंट बहोत बिधि लावैं ।
'परमानंद दास' को ठाकुर बानो सुनि गुन गावैं ।।

---

1. राधिका ।
* प्रस्तुत पद संप्रदाय में भाद्रपद शुक्ला १०मी के दिन गाया जाता है ।
2. सुरत ।

[१६३]

आज रावल में जय जय कार ।
प्रगट भयौ वृखभान गोपकें श्री राधा अवतार ॥
गृह गृह तें सब चली बेग कै गावत मंगल चार ।
निरतत गावत करत बधाई भीर भई अति द्वार ॥
'परमानंद' वृखभान नन्दिनी जोरी नंद कुमार[१] ॥

[१६४]

राधाजू कौ जन्म भयो सुनि माई ।
सुकल पच्छ निसि आठें घर घर होत बधाई ॥
अति सुकुमारी धरी सुभ लच्छन कीरति कन्या जाई
'परमानंद' नंदनंदन के आंगन जसुमति देत बधाई

श्री राधा जी के पलना के पद—

[१६५]

रसिकनी राधा पलना झूलें ।
देखि देखि गोपी जन फूलें ॥
रतन जटित को पलना सोहे ।
निरखि निरखि जननी मनमोहे ॥
सोभा की सागर सुकुमारी ।
उमा रमा रति वारी डारी ॥
डोरी ऐंचत भौंह मरोरैं ।
बार बार कुंवरी तृन तोरैं ॥
तिहि छिन की सोभा कछु न्यारी ।
अखिल भुवन पति हाथ संवारी ॥
मुख पर अंबर बारति मैया ।
आनंद भयो 'परमानन्द' भैया ॥

---

१ दुलार ।

[१६६] राग सारंग

श्री राधा जू को जन्म सुन्यौ[1] मेरी माई।
सकल सिंगार चली ब्रज गोपी घर घर बजत बधाई॥
अति सुकुमारि धरी सुभ लच्छिन कीरति ने यह जाई।
'परमानन्द' करी नौछावर घर घर बात लुटाई॥

[१६७] राग सारंग

आजु बधाई को बिधि नीकी।
प्रकटी सुता बृखभान गोप के परम भावती जी की॥
जिन देखत त्रिभुवन की सोभा लागत है अति फीकी।
'परमानन्द' बलि-बलि जायेरी यह सुन्दर सांवरे पिय की॥

[१६८] राग सारंग

प्रगट्यो नव[2] कुंज को सिंगार।
कीरति कूखि औतरि कन्या सुन्दरता को सार[3]॥
नख सिख रूप कहाँ लौं बरनौं कोटि मदन बलिहार।
'परमानन्द' बृखभान नन्दनी जोरी नन्ददुलार॥

[१६९] राग सारंग

सुन्दरि सुभग कुंवरी एक जाई।
कहा कहौं यह गुन रूप प्रेम को मनहु मोट भरि लाई॥
फूलि गये जित तित सब ब्रज में सुख की लहरिजु बढ़ाई।
धन लहनों बृषभान गोप को भाग दसा चलि आई॥
धन आनन्द जसोदा रानी अपने भवन खिलाई।
बृन्दावन में सखि यह प्यारो भाग अधिक सुख पाई॥
यह गिरधर कहत फिरि फिरिकै हमरे भागिन माई।
बृषभान नन्दनी प्रकटी 'परमानन्द' बलिजाई॥

---

[1] भयौ
[2] प्रगट्यो सब ब्रज को सिंगार—देखो परीख जी वाली तृतीय प्रति।
[3] ताको नार।

दानलीला के पद

[१७०] राग

रंचक चाखन दैरी वह्यौ।
अद्भुत स्वाद स्रवन सुनि मोपै नाहिन परत रह्यौ॥
ज्यों ज्यों कर अम्बुज उर[१] ढांकत त्यों-त्यों मरम लह्यौ।
नन्दकुमार हठीलौ ढोटा अंचरा धाय गह्यौ॥
हरि हठ करत 'दास परमानन्द' ए मैं बहुत सह्यौ।
इन बातनि खायौ चाहत हौ सैतन[२] जात दह्यौ॥

[१७१] राग

मटुकिया लै जु उतारि धरी।
इन मोहन मेरौ अंचरा पकर्यौ तब मैं बहुत डरी॥
मोपै दान सांवरो मांगत लीने हाथ छरी।
सोहो कों तुम गहि जु रहे हौ संग की गई सगरी॥
पैयाँ लागि करति हों बिनती दोउ कर जोरि खरी।
'परमानंद प्रभु' गोरस[३] बेचन की बिरियां जात टरी॥

[१७२] राग

गोरस बेचिबे में माति।
नंद नंदन बिन कोऊ न लैहै काहे को मथुरा जाति॥
दूध दही के दाम कहिबे तैं छुवत कहा सतराति।
'परमानंद' ग्वालिनी सयानी मोल कहत[४] मुसकाति॥

[१७३] रा

गोरस बेचत ही जु ठगी।
कहा करे आप बस नाही मनसा अनत लगी।
खेलत बीच मिले नंद नंदन कालिंदी के तीर।
चितयौ नेक कमल दल लोचन मनमोहन बल बीर॥

---

१ कुच
२ सैंत=सैंत मेत [मुफ्त—अर्थ]
३ दधि।
४ करत

और सखी बूझन लागी करत कौन कौ मोल।
'परमानन्ददास' को ठाकुर मीठे तेरे बोल ॥

[१७४] राग कान्हः

कापर ढोटा करत ठकुराई।
तुम तें घाटि कौन या ब्रज में नंदहु तें बृखभान सबाई ॥
रोकत घाट बाट मधुवन[1] को ढोरत माट करत हौ बुराई।
निकसि लैहौ बाहिर होत ही लंपट लालच किये पत जाई ॥
जान प्रवीन बड़े को ढोटा सो सुध तुम कहां बिसराई।
'परमानंददास' को ठाकुर दै आलिंगन गोपी रिझाई[2] ॥

[१७५]

यह गोरस ले रे अनौखे दानी।
चले न जाउ अपने मग ढोटा हमसौं कौन चतुराई ठानी ॥
कौन हवाल कियो हरि मेरौ फिरि फिरि कहत अटपटी बानी।
ये सब बातें दौरि कहूँगी बैठी जहाँ जसोदा रानी ॥
अन्तरगत हरि सौं मिल्यौ भावै यह नागरी सन्मुखही रिसानी।
प्रान हू बसत तेरे कमल नयनमँह जियकी जन 'परमानंद' जानी ॥

[१७६] राग कान्हरो

कापर ढोटा नयन नचावत कोहै तिहारे बबा की चेरी।
गोरस बेचन जात मधुपुरी आय अचानक बन में घेरी ॥
सैनन दै सब सखा बुलाए बातहि बात मटुकिया फोरी।
जाय पुकारौं नन्द जू के आगे जिनि कोऊ छुओ मटुकिया मेरी ॥
गोकुल बसि तुम ढीट भये हो बहुतें कान करत हौं तेरी।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर बलि बलि जाऊँ स्यामघन केरी ॥

---

[1] मगवन।
[2] आलिंगन गोपी जाई।

[१७७] राग कान्ह

काहे कौं सिथिल किए मेरे पट ।
नंद गोप सुत छांड़ि अटपटी बार बार बन में कत रोकत बट
कर लंपट परसो न कठिन कुच अधिक बिथा रहे निधरक घट
ऐसो बिरुध है खेल तुम्हारो पीर न जानत गहत पराई लट
कहूं न सुनी कबहूं नहि देखी बाट परत कालिन्दी के तट
'परमानन्द' प्रीति अन्तर की सुन्दर स्याम विनोद सुरत नट

[१७८] राग कान्हरो

पिछोंड़ी बाँह न देहों दान ।
सूधे मन तुम लेहु गुसांई राखि हमारो मान ॥
मारग रोकि रहत नन्दनन्दन[1] सब गुन रूप निधान
बदन मोरि मुसकाई भामिनी नयन बान संधान ॥
नन्दराय के कुंवर लाड़िले सबके जीवन प्रान ।
'परमानंद स्वामी' मोहन[2] हो तुम, तुम ते कौन सुजान ॥

[१७९] राग देव गंधार

कबहु न सुन्यौ दान गो रस कौ ।
तुम तो कुंवर बड़े के ढोटा पार नहि कछु[3] जस कौ ॥
रोकत हौ पर नारि विपिन में नेकु नहि जिय कसकौ ।
'परमानन्द प्रभु' मिस जु दान को है कछु औरही चसकौ ॥

[१८०] राग देवगंधा

भोर ही ठानत हो का लै[4] झगरो ।
आई गई सदा यह मारग किनहु न रोक्यौ डगरो ॥
तब मुसिकाय कही मन मोहन नन्द को लाल अचगरो ।
रहि री ग्वालिनि जोवन मदमाती लेउ छीन दधि सगरो ॥
काहे को ढोटा नैन नचावत निकट है ब्रजराज कौ नगरो ।
'परमानन्द' प्रभु यहि विधि विहरत रूप रासि गुन अगरो ॥

१ मन मोहन ।
२ नागर
३ कहूं
४ कापै

[१८१] राग बिलावल

सुनो बृजनाथ छाड़ौ लरिकाई ।
बरबस[१] प्रीति कहां ते उपजे तुम ठाकुर कित करत बरियाई ।।
कर गहि बाँह नांह अपने ज्यूं इकटक करि मारग में ठाड़ी ।
कबहुं छुवत उर[२] कबहुँ तोरत लर कबहुँ गहत कंचुकी गाढ़ी ।।
तेरे नयन रोस में भामिनि जान देहुँ तोहि नंद दुहाई ।
'परमानंद स्वामी' रति नायक प्रेम बचन कहि भलो मनाई ।।

[१८२] राग बिलावल

मैं तोसौं केतिक बार कह्यो ।
यह मारग एक सुन्दर ढोटा बरबट[३] लेत दह्यौ ।।
इत उत सघन कुंज गहबर में तकि मारग रोकि रह्यौ ।
अति कमनीय अंग छबि निरखत नेकुन परत रह्यौ ।।
लोचन सुफल होत पल निरखत बिरह न जात सह्यौ ।
'परमानंद प्रभु' सहज माधुरी मनमथ मान दह्यौ ।।

[१८३] राग बिलावल

नन्दनन्दन दान निबरत री ।
राखी रोकि दधि समेत ग्वालिनी सखा बृन्द प्रति टेरत ।।
जब उठि चलत प्रबल गोपीजन तब आगे उठि फेरत[४] ।
बांधि जठर पटपीत ललित गति करलै लकुटी फेरत ।।
काहू कै कुच भुज अंचल गहि सब दिन को मन फेरत ।
'परमानंद प्रभु' रसिक सिरोमनि मुसकत निरखत हेरत ।।

---

[१] बिनरस ।
[२] कुच ।
[३] बरबट=बलात् [अर्थ]
[४] खदेड़ना [अर्थ]

[१८४] राग बि

अब कछु नई चाल चलाई ।
तुम नंद के लाड़िले मोहन छोड़ो यह लरिकाई ।।
घाट बाट गिरि गह्बर कन्दर सदा अटक तोहि भावै ।
गोकुल भये छबीले दानी मारग चलन न पावै ।।
चोली चीर निहारत अंचल छाँडि लाल यह हांसी ।
'परमानंद प्रभु' छांड़ि अटपटी एक गाम के बासी ।।

[१८५] राग बिल

गोरस राधिका लै निकरी ।
नंद को लाल अमोलो गाहक ब्रज से निकसत पकरी ।।
उचित मोल कहि या दधि को लेहुँ मटुकिया सगरी ।
कछुक दान को कछु इक लेहों[१] कहां फिरैगी नगरी ।।
नन्दराय कौ कुंवर लाड़लो दधि के दाम कौं झगरी ।
'परमानन्द स्वामी' सों मिलि कै सरबसु दे डिगरी ।।

[१८६] राग बिला

भोर ही कान्ह करत मोसौं झगरो ।
सबन छांड़ि करत मोसों नित उठि रोकि रहत है डगरो ।।
गोरस दान सुन्यौ नहिं देख्यौ किन लिखि दियो दिखाओ कगरो ।
बिना बौहनी छुअन नहिं देहौं यह सब छीन खाउ किन सगरो ।।
चुम्बत मुख उर लावत पकरत टेव न गई छुवत ही अगरो ।
'परमानंद' सयानी ग्वालिन छाड़ौं नहीं जौ धरत नहीं पगरो ।।

[१८७] राग माल

मेरी भरी मटुकिया ले गयौ री ।
आपुन खात ग्वालहिं खवावत रीती कर मोहि दे गयौ री ।
वृन्दावन की सघन कुंज में ऊँची नीची मोसों कहि गयो री ।
'परमानन्द' ब्रज साँवरो अँगुस्ट दिखाय रस ले गयौ री ।।

---
१ · मोल को

[१८८] राग सारंग

ग्वालिनि मीठी तेरी छाछि ।
कहा दूध में मेलि जमायौं सांची कहौ किन बाछ ।।
औरें भाँति चितैवो तेरो भौंह चलत है आछि ।
ऐसो टकझक कहूँ न देख्यौ तू जो रही कछि काछि ।।
रहसि कान्ह कर कुच गहि परसत तू जो परति है पाछि ।
'परमानन्द' गोपाल आलिंगी गोप बधू हरिनाछि ।।

[१८९] राग सारंग

मानो याके[1] बबा की चेरो ।
गारी देत संक नहिं मानत आवत मारग घेरी ।।
कब लगि लाज पास की कीजैं कौन गुसाँइन तेरी ।
'परमानन्द प्रभु' प्रेम अन्तरगत परसन के मिस हेरी ।।

[१९०] राग सारंग

लालन ऐसी बातें छाड़ौं ।
मदन गुपाल छबीली ढोटा नित उठि मारग खाँड़ौ ।।
अनोख दानी अबही भये हौ मारग रोकत आन ।
प्रातही ते इहाँई होत ठाड़े उगन न पावै भान ।।
चंद्रावलि[2] कहे सुनो मन मोहन यहजु समै है और ।
'परमानन्द प्रभु' जानि देहु तुम नन्द सुअन सिरमौर ।।

[१९१] राग सारंग

मोहन तुम जो बड़े के ढोटा ।
कौन बूझियो रसिक सिरोमनि वन में जु करत झंझोटा ।।
आवत जानि बहू बेटिन कौं औघट जमुना घाट ।
मटुकी फोरत बाँह मरोरत चलन न पावैं बाट ।।

---
[1] याको ।
[2] चन्दवदनि ।

जौ यह बात जसोदा सुनि है बड़े गोप उपनं
एक पूत सो निपट लड़ैतो करत अटपटे फंद
सुनत बात मन में सुख उपज्यौ भावै हरि की केलि
'परमानन्ददास' की जीवनि बाढ़ो नन्द की बेलि

[१६२]

नेक मटुकिया धरौ जो उतारि।
बैठि प्रेम की बातें कीजे सुन चन्द्रावलि नारि॥
फेरि यहाँ यह संग बनैगो ऐसे कानन मांझ।
संग लरिकाई कौ यह रस चलिहै दिवस अथाहे साँझ॥
यह जोवन धन संग कौन के लाड़ दिवस द्वै चार।
'परमानन्ददास' यह नागर खेल करै मनुहार॥

[१६३]

न जेहौं माई बेचन हौ जो दह्यौ।
नंद गोप कौ कुंवर लाड़िलो बन में डाटि रह्यौ।
यह सब भेद सखि अपनी सौं चन्द्रावलि कह्यौ।
माँगत दान अटपटी बातें अञ्चल रबकि गह्यौ॥
रावरे जोई उराहनो देहौं अब लगि बहुतै सह्यौ।
'परमानन्ददास' कहें सुनि भामिनि बहुतहि पुन्य लह्यौ॥

[१६४]

लाल हो किन ऐसे ढंग लायो।
डगर छांड़ि उठि चतुर गुसाँई चाहत गारि दिवायौ॥
को तुम्हरे गृह भयो अचगरो गोरस दान निबेर्यो।
तौ किन चले नन्द भलौ माने इक ब्रज बास बसेरो॥
दारुन कंस बसत है मथुरा ताहू की संक न मानै।
नंद गोप कौ कुंवर लड़ैतो आप बहुत करि जानै॥
बातें करत प्रेम रस बाढ़्यौ नयन रहे अरुझाई।
'परमानन्ददास' यह ग्वालिनि गही कौन बिधि जाई॥

[१९५] राग सारंग

न गहो कान्ह कोमल मेरी बहियां ।
सुन्दर स्याम छबीले ढोटा हो नहीं आऊँ या बन महीयां ।।
हौं बलि जाऊँ चरन कमल की जात हुती अपने घर महीयां[१] ।
होत अबार बार मोहि लागै छाड़हुँ कौन टेव तुम महीयां ।।
ये बृजबास बड़े के ढोटा कहि न सकत तुम सों कछु यहींयां ।
'परमानंद' प्रभु कालिह निबेरो बैठिहु नेकु कदम की छैयां ।।

[१९६] राग सारंग

दान मांगत कुंवर कन्हाई ।
बहुत बेर चोरी दधि बेच्यो अब कैसेहु जान न पाई ।।
जासौं राति लरी मृगनैनी नहीं सयानी बात दिखाई ।
लेहुं निबेरि आज सब दिन कौ जान न देहुँ बृजराज दुहाई ।।
मोहन लाल गोवरधन धारी हरि नागर बातन अरुझाई ।
'परमानंद प्रभु' बतरस अटकी दान लियो अरु डगर बताई ।।

[१९७] राग सारंग

दधि लै आऊँगी उठि भोर ।
तुम तो दुहि बन बछरा चरावत नागर नंद किसोर ।।
जानि देहु बड़ी बार भई है घन मिलि दामिनी घोर ।
जौ न पत्याउँ तो गहनों राखो उरि मनि कंचन मोर ।।
तुम गोविंद सब गुनन कहावत मानो इतनो निहोर ।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन अटके नैन की कोर ।।

[१९८] राग सारंग

देख्यो री कहुँ नंद किसोर ।
स्याम बरन अरु पीत पिछौरा अंचल ढरकत गौर ।।
बरबस दान दही कौ मांगत बृन्दावन की ठौर ।
कहीयो जाय रायजू के आगे करिहैं औरसों और ।।
बरजि जसोदा अपुने ढोटा कों अंचरा के किये कोर ।
'परमानंद' प्रीति को गाहक ए त्रिभुवन सिरमौर ।।

---
[१] कहियाँ

[१९९] राग

तुम कौन हो किन ठाड़ी रहो ।
तुम्ह ऐसी सौं कहा काज है हम कोउ हैं तुम डगर गहो
काम नृपत वृखभान नन्दिनी दियो दान को बाँधि कहो
ऐते राज काज में दियो दूध दही को दान न हो ।
दान हमारो सब दिन लागत तुमहू जानि कहो[१] ।
'परमानन्द' गोपाल हठीलो दान लियो अरु डगरो गहो ॥

[२००] राग

ग्वाल रे तू अनोखो दानी ।
चले जाउ ढोटा अपने मग कौन यह चतुराई ठानी ॥
कौन हवाल[२] किये हरि मेरे फिरि-फिरि कहत अटपटी बानी ।
तेरे[३] बाबा ते बहोरि कहौंगी बैठी जहाँ जसोदा रानी ।
अन्तरगति हरि सों मिलियो भावै यह नागरि मुखहि रिसानी ।
प्रान बसत हैं कमल नैन में जियकी तो 'परमानन्द' जानी ॥

श्री वामन जी के पद

[२०१] राग

वामन आयो बलि पै माँगन ।
आये अनूप रूप कहा कहिये ठाड़ो पौर[४] के आँगन ॥
पढ़त बेद धुनि कहत सुकंठन गावत मधुरे रागन ।
सुनत राव मन नीको लागत बालक गनियत जागन ॥
सुनि बलि राजा मगन भये अति कहाँ ते आये भागन ।
विद्या अधिक अगाध अंबु निधि कोउ न पावत थागन ॥
लिये बोलि होत जहँ जग्यन लिये कमंडल हाथन ॥
'परमानंद' चकृत बलि राजा कोऊ नहीं संग न साथन[५] ॥

---

१ करत हो
२ दशा [अर्थ] फारसी प्रयोग ।
पाठ भेद—सैनन में सब सखा बुलाये ।
३ ते बातें सिग बहोरि ।
४ भोर को ।
५ साधन ।

[२०२] रागधनाश्री

अहो बलि ! द्वारे ठाड़े वामन ।
चार्यो वेद पढ़त मुख पाठी अति सुमंद सुर गावन ॥
बानी सुनि बलि बूझन आये अहो देव कह्यौ आवन ।
तीन पेंड़ वसुधा हम माँगें परन कुटी एक छावन ॥
अहो विप्र कहा तुम माँगो अनेक रतन देउ गामन ।
'परमानन्द' प्रभु चरन बढ़ायो लाग्यो पीठन पावन ॥

[२०३] राग सारंग

बलि राजा को समर्पन साँचो ।
बहुत कह्यौ गुरु सुक्र देवता मन दृढ़ आप नहीं काँच्यो ॥
जग्य करत है जाके कारन सो प्रभु आपुहि जाँच्यो ।
'परमानंद' प्रसन्न भये हरि जो जनकौं जानत है साँच्यौ ॥

[२०४] राग सारंग

कस्यप पिता अदिति माता प्रगटे बामन रूप ।
भादों मास सुभग सुदी द्वादसी लीनों रूप अनूप ॥
सुर तैंतीसौ हरखन लागे होहि हमारे काम ।
बटु सुरूप धरि[1] दरसन दीयो आये बलि के धाम ॥
तब हँसि राजा कह्यो विप्रसों कहौ कहा है काम ।
सुन राजा हौं अधिक न माँगू रहिबे कौ एक ठाम ॥
तब तुलसी दल लीनो कर में सुक्र करी है घात ।
'परमानंददास' को ठाकुर जानत है सब बात ॥

जयादशमी के पद

[२०५] राग सारंग

बिजय सुदिन आनन्द अधिक छवि मोहन बसन[2] बिराजत ।
सीस पाग रही बाम भाग पर लटकि जवारे छाजत ॥
तिलक तरल द्वै रेख भाल पर कुंडल लजत न द्वै कानन ।
मुख की सोभा कहाँ लौं बरनौं मगन होत मन[3] मानन ॥

---

[1] धर
[2] सुग
[3] मुनि

कटि पट छुद्र घंटिका मनिमय सोहत जोहत मन मोहत ।
'परमानन्द' निरख नंदरानी लेत बलैया दोऊ हथ ॥

[२०६] राग

सुदिन सुमंगल जानि जसोदालाल को पहिरावत बागे ।
अंग अंग भूखन ललित मनोहर लटकनि बारे पागे ॥
ब्रज सुन्दरि निरखि मन हरखत मगन होत मन फूलत ।
रूप रासि रस रसिक लाडिलौ देखे तन मन लूलत ॥
मैया देखत लेत बलैया मुख चुबंत सचुपावत ।
'परमानन्ददास' मन हरखत सुमिरि सुमिरि गुन गावत ॥

[२०७] राग स

दशहरे के पद

सरद ऋतु सुभ जानि अनूपम दसमी को दिन आयोरी ।
परम मंगल दिन आज ब्रज में सब मन हरखत आयोरी ॥
केसर सौंधी घोरि जननी प्रथम लाल अन्हवायोरी ।
नाना बिधि के भूखन अभरन अंग सिंगार बनायोरी ॥
पाघ पिछौरा और उबटना बागो बिचित्र धरायोरी ।
'परमानन्द प्रभु' बिजयादसमी ब्रज जन मंगल गायोरी ॥

[२०८] राग सारं

धरत जवारा श्री गोविंद ।
आस्विन मास सुभग दसमी सुकल पच्छ धरो सुभ कन्द ॥
केसर सौंधी घोरि जसोदा प्रथम न्हवाये कान्ह गोविन्द ।
नाना बिधि सिंगार पाग बनी जरकसी बागो पहरन छंद ॥
कहत जसोदा सुनो मेरे लाला जोई जोई भावै तिहारे मन ।
सोई सोई भोजन करो दोऊ भैया गावत गुन तहँ ' ।

[२०९] राग सारंग

जवारे पहिरे श्री गिरिवर धारी ।
जुवती जन मन ताप निवारत आनन्द मंगलकारी ॥
सुंदर लाल भाल ललित तन देखि जननी कर वारी ।
मन मोहन के रसिक रूप पर 'परमानन्द' बलिहारी ॥

ली के पद

[२१०] राग हमीर

याँ ते माई भवन छांड़ि बन जैये ।
आँखि-रस कन-रस बत-रस सब रस नंद नंदपै पैये ॥
कर पल्लव कर कंध बाँहु धरि संग मिलि गुन गैये ।
रास बिलास बिनोद अनूपम माधौ के मन भैये ॥
यह सुख सखीरी कहत नहिं आवै देखे ही दुख बिसरैये ।
'परमानन्द स्वामी' को संगम भाग बड़े ते पैये ॥

[२११] राग सारंग

मेरो मन गह्यौ माई मुरली कौ नाद ।
आसन पौन ध्यान नहिं जानौ कौन करै अब बाद बिबाद ॥
मुकति देहु संन्यासिन कौं हरि कामिनि देहु कामकी रास ।
धरमिन देहु धरम कौ मारग मो मन रहै पद-अंबुज पास ॥
जो कोऊ कहै जोति सब यामें सपनेहु छियौ न तिहारो जोग ।
'परमानन्द' स्याम रंग राती सबै सहौं मिलि इक अंग लोग ॥

[२१२] राग गूजरी

वो मुख देख्यौ हो [मोहि] भावै ।
मदन गोपाल जगत कौ ठाकुर बन तें जब घर आवै ॥
लोचन लोल नासिका सुंदर कुंडल ललित कपोल ।
दसन कुन्द बिम्बाधर राते मधु ते मीठे बोल ॥
कुंचित केस पोत रज मण्डित जनु मोरन की पाँत ।
कमल कोस ते कढि ढिग बैठे पाँडुर बरन सुजात ॥

चंदक चारु मुकट सिर सोहत बिच बिच मनु गुंजा।
गोपी मोहन अभिनव मूरत प्रगट प्रेम के पुंजा॥
कंठ कंठमनि स्याम मनोहर पीतांबर बनमाल।
'परमानन्द' स्रवन मनि कुंडल कूजत बेनु रसाल॥

[२१३] राग टे

मोहि मिलनि भावै जदुबीर की।
सरद निसा पूरन ससि उदै करि खेलनि जमुना तीर की॥
हरि हम कों, हम हरि कों छिरकत पैसि[1] दोलनि नीर की।
हँसि हरि खेंचि लेत ऊँडे[2] जल अंकमाल भुज भीर[3] की॥
जबै निकसि होत जल तें ठाड़े निरखि अँगोछनि चीर की।
'परमानन्द' स्वामी रति नागर बलि बलि स्याम सरीर की॥

[२१४] राग परज ति

जित देखो तित कृष्ण मनोहर दूजौ दृष्टि ना परेरी।
चित्त सुहावनी छवि अति सुन्दर रोम रोम रस ही भरेरी॥
सिव विरंचि जेहि ढूंढत फिरै सो मन मेरे अरेरी[4]।
'परमानंद' लह्यौ सुख दरसन चित कारज सब ही सरेरी॥

रास समय के पद *

[२१५] राग सा

कर गहि अधर धरी मुरली।
देखहु परमेस्वर की लीला ब्रज बनितानु को मन चुरली॥
जाकौ नाद सुनत गृह छाँड्यो प्रचुर भयो तन मदन बली।
जिहि सनेह सुत पति बिसराये हा हरि हा हरि करत चली॥
बिहँसत बदन प्रफुलित लोचन रबि उद्योत जनु कमल कली।
'परमानन्द' प्रीति पद अंबुज कृष्न समागम बात भली॥

---

*उपर्युक्त पद रास-क्रीड़ा सम्बन्धी है।

१ प्रवेश [अर्थ—अवधी प्रयोग]
२ गहरे [अर्थ]
३ डरी हुई [अर्थ]
४ खरेरी—पाठान्तर।

[२१६] राग टोड़ी

रास मंडल में बन्यौ माधौ गति मैं गति उपजावै हो ।
स्याम सुभग तन पर दच्छिन कर पूजत चरन सरोजै हो ॥
अबला वृन्द बिलोकत हरि मुख नैन बिकार मनोजै हो ।
नील पीत पट चलत चारु नट रसना नूपर कूजैहो ॥
कनक कुंभ कुच बीच पसोना मानों हर मोतिन पूजै हो ।
हेमलता तमाल अवलंबित सीस मल्लिका फूली हो ॥
कुंचित केस बीच अरुझाने जनु अलि माला भूली हो ।
सरद विमल निस चंद विराजित क्रीडत जमुना कूलै हो ॥
'परमानन्द स्वामी' कौतूहल देखत सुरनर भूलै हो ॥

[२१७] राग गौरी

मुरली को बजावन हारो कहिधौं माई कहाँ गयौ ।
नैंक बदन दिखाय मो कहे बिरह न जात सह्यौ ॥
सबही गोपिन के प्रीति एक रस हृदय सनेह गह्यौ ।
ऐसी भगति नंद नंदन की पुन्यन पुंज लह्यौ ॥
आजु गहरु लाग्यो गो चारन बासर तौ निबह्यौ ।
रजनी अधिक गई 'परमानन्द' लोचन नीर बह्यौ ॥

[२१८] राग गौरी

मोहन मोहनी पढ़ि मेली ।
देखत ही तन दसा भुलानी को घर जाइ सहेली ॥
काके मात तात अरु भ्राता को पति नेह नवेली ।
काकी लोक लाज डर कुल ब्रत को बन भ्रमति अकेली ॥
ताते कहति मूल मति तोसौं एक संग मिलि खेली ।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहन स्रुति मरजादा पेली ।

[२१९] राग सारंग

जकि रही सुनि मुरली की टेर ।
इततैं हौं निकसी पानी सिस तबहि भइ गाइन की बेर ॥
मोर चंद्रिका धरे स्याम घन चपल नयन की हेर ।
'परमानन्द प्रभु' मिलेरी खरिक मेंह यातें[१] भई अबेर ॥

---
[१] आवत

[२२०] राग सा

मैं मन मोल गोपालहिं दीनौं ।
अम्बुज बदन लाल गिरिधर कौ रूप नैन निरखन कौं लीनौं ।।
इन रखिलियौ अपनी रुचि सौं उनहिं तुला धरि कर दीनौं[१] ।
वे लै चले दुराइ जतन करि इनहिं चुवै पलकनि मग छीनौं ।।
अब वे पलटि न देत आपते इनहिं कहे यातै कछु हीनौं ।
'परमानन्द प्रभु' नन्द नन्दन सों नौतन नेह बिधाता कीनौं ।।

[२२१] राग सारं

हों तो या बेनऊ की चेरी ।
नंद नंदन के अधरनि लागति स्रवन सुनत सुखकेरी ।।
राति दिवस मन उहाँही रहत है बाढ़ी प्रीति घनेरी ।
'परमानंद' गुपालहिं भावै लाख बार हित मेरी ।।

[२२२] राग सारंग

मैं हरि की मुरली बन पाई ।
सुन जसुमति संग छाँड़ि आपनों कुंवर जगाय देन हौं आई ।।
सुनि तिय बचन बिहँसि उठि बैठे अन्तरजामी कुंवर कन्हाई ।
मुरली के संग हती मेरी पहुँची दै राधे बृषभान दुहाई ।।
मैं तिहार पोंची नहीं देखी चलो संग देऊँ ठौर बताई ।
बाढ़ी प्रीति मदन मोहन सों घर बैठे जसुमति बोहौराई ।।
पायो परम भावतो जीको दोउ पढ़े एक चतुराई ।
'परमानन्ददास' जाहि बूझों जिन यह केलि जनमभर गाई ।।

[२२३] राग टोड़ी

निरतत मंडल मध्य नन्दलाल ।
मोर मुकट मुरली पीताम्बर अरु गुंजा बनमाल ।।
ताल मृदंग संगीत बजत हैं तत थेई बोलत बाल ।
उरप तिरप तान लेत नट नागर गंधर्व गुनी रसाल ।।
बाम भाग बृषभान नन्दिनी गजगति[२] मंद मराल ।
'परमानन्द' प्रभु की छवि निरखत मेटत उर के साल ।।

१ कीनों
२ संग सखी लिये बाल

[२२४] राग असावरी

भलो है स्याम की मुसुकावनि ।
कर पल्लव गहि त्रिभंग बेनु धरि मीठी है गावनि ।।
कुण्डल चलित कपोल ललित मनि मण्डल सोहै ।
कुंचित केस सुदेस गुंजा मनि मोरपंख मन मोहै
उर बन माल बिचित्र बिराजति जनु घन बीच इन्द्र धनु भासै[१] ।।
गिर गम्भीर सुनत सखी व्याकुल देखत रूप मदन जनु त्रासै ।
बालक वृन्द नच्छत्र माल मँह मानहुँ पूरन चन्द ।।
रजनी मुख हरि न मिल्यो सखि बलि बलि परमानन्द ।

[२२५] राग जंगला

मंडल जोर सबै एकत्र भये निरतत रसिक सिरोमनी ।
मुकुट धरे सिर पीत पट कटि तट बाँधे तान लेत बनो ठनी ।।
इक इक हरि कीनी ब्रज बनिता अरु सोहै मनो गनी ।
चढ़ि विमान सुर जुवति कहें परस्पर गिरवरधर पियूष धनी ।।
गोप वधू बालक मिलि गावत मध्य निरत करत बलि मोहन ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर सब मिल गावत धन धन ।।

[२२६] राग मालव

जाऊँगी वृन्दावन भेटोंगी गोपालै ।
देखौंगी नैन भरि स्याम तमालै ।।
कालिंदी तट चारत धेनु ।
संग सखा बजावत मदु बेनु ।।
मोर मुकट गुंजा अवतंस ।
दसन बसन कूजत कल हंस ।।
'परमानन्द' प्रभु त्रिभुवन पाल ।
लीला सागर गिरधर लाल ।।

---

[१] है ।

[२२७] राग मा

आई गोपी पाँयन परन ।
सोई करो जैसे संग न छूटे राखौ स्याम सरन ॥
जब तुम बेनु बजाय बुलाई अब जिय कल करत निठुराई ।
तुम्हारे भजत पाँय किहि लागे किन यह बुद्धि उपाई ॥
चित नहि चलत चरन गति थाकी मन न जात गृह पास ।
'परमानन्द स्वामी' उदार तुम छोड़ो बचन उदास ॥

[२२८] राग मा

रास बिलास गहे कर पल्लव इक इक भुजा ग्रीवा मेली ।
द्वै द्वै गोपी बिच बिच माधौ निरतत संग सहेली ॥
टूट परी मोतिन की माला ढूंढ़त फिरत सकल गुवाली ।
सरद विमल नभ चन्द विराजत निरतत नन्द किसोरा ।
'परमानन्द प्रभु' बदन सुधानिधि गोपी नैन चकोरा ॥

[२२९] राग ए

ब्रज वनिता मधि रसिक राधिका[1] बनी सरद की राति हो ।
निरतत ततथेई गिरधर नागर गौर स्याम अंग काँति हो ॥
इक इक गोपी बिच बिच माधो बनी अनूपम भाँति हो ।
जै जै सबद उचारत सुर मुनि बरसत कुसुम न अघाति हो ॥
निरखत क्यों ससि आय सीस पर क्यों हू न होत प्रभात हो ।
'परमानन्द' मिलै यहि औसर बनी है आज की बात हो ॥

[२३०] राग के

रास रच्यौ बन कुंवर किसोरी ।
मंडल विमल सुभग वृन्दावन पुलिन स्यामघन घोरी ।
बाजत बेनु रबाब किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनि सोरी ॥
ततथेई ततथेई सब्द उघटत पिय भले बिहारी बिहरत जोरी ।
बरहा मुकुट चरन तट आवत धरे भुजन में भामिनि भोरी ॥
आलिंगन चुबंन परिरंभन 'परमानन्द' डारत तृन तोरी ॥

---

१ साधिका ।

[२३१] राग केदारा

स मंडल मध्य मंडित मदन मोहन अधिक सोहत,
लाड़िली रूपनिधान।
त कमल चरन चारु नृत्यत आछी भाँति मुख हास भ्रू विलास,
लेत नैननि ही में मान ॥
त बजावत दोऊ रीझि परस्पर सचुपावत उरप तिरप होड़न
बिकट तान।
मानन्द' प्रभु किसोर ओर निरखत ललितादिक वारति
निज तन मन प्रान ॥

[२३२] राग विलावल

आली री रास मण्डल मध्य निरखत
मदन मोहन अधिक प्यार लाड़िली रूप निधान।
चरन चारु हँसत मंद, मिलवत गति,
भाँति भाँति भ्रुव विलास मंद हास लेत नैन ही में मान ॥
दोऊ मिलि राग अलापत गावत,
होड़ा होड़ी उघटत दै करतारी तान ॥
'परमानन्द' निरखत गोपी जन,
वारत हैं निज तन मन प्रान ॥

[२३३] राग सारंग

गोपाल लाल सों नीकें खेलि।
बिकल भई संभार न तनकी सुन्दरि छूटे बार सकेलि ॥
टूटत हार कंचुकी फाटत फूटत चुरी खिसत सिर फूल।
चंदन मिटत सरस उर चंदन देखत मदन महीपति भूल ॥
बाहु कंध परिरंभन चुम्बन महा महोच्छब रास विलास।
सुर बिमान सब कौतुक भूले कृष्ण केलि 'परमानन्ददास' ॥

[२३४] राग सारंग

अबके जो लाल मिले अचरा गहि झक झोरौं री।
काहे तुम संग छाड़ि गए संग लागि डिगरों री॥
जुवतिन कौ यह सुभाव मान करतहि सोभा।
नागर नन्दलाल कुंवर काहे चित ओभा॥
बाँधौं कुच भुजन बिच नैन बान मारौं।
'परमानंद' प्रेम लराई जीतौं के हारौं॥

[२३५] राग सारंग

माई री डार डार पात पात बूझत बनराजी।
हरि को पथ कोउ न कहै सबनि मौन साजी॥
बसुधा जड़ रूप धर्यो मुखहू नहीं बोलै।
हरि को पद परस भयो संग लागि डोलै॥
'परमानंद स्वामी' गोपाल निरभै भये माई।
हमरो गुन दोस जानि कीनी चतुराई॥*

[२३६] राग सारंग

पूछत है खग मृग द्रुम बेली।
हमें तजि गये री गोपाल अकेली॥
अहो चंपक मालती तमाला।
तुम्है परसि गये नंद लाला॥
ज्यों गजराज बिना गजकरनी।
कृष्ण सार बिनु व्याकुल हरिनी॥
'परमानंद' प्रभु मिलहु न आई।
तुम दरसन बिन हंस उड़ाई॥

---

* प्रस्तुत पद रास क्रीड़ा से भगवान के अन्तर्धान होने के समय का है।

[२३७] राग स

साँवरे मन हर्यौ हमारौ कमल नयन ब्रज राई हो।
चित्त चुरायौ माखन चोरा।
ना जानों कहाँ नंद किसोरा॥
बाल बिनोद कुमार कन्हाई।
'परमानंद' स्वामी सुखदाई॥

[२३८] राग स

ग्वालिनि अनमनी सी ठाड़ी।
दारून पीर बिरह की बाढ़ी मदन गोपाल अकेली छाँड़ी॥
तैंही रसिकिनि रही सयानी जिहि सनेह प्रभु बन लै आयो।
नैंक छुड़ाइ कछु कियो माधौं सौं तुरतहि कियो आपुनो पायो॥
चलि सखि जाइ ढूंढहि बन बन चरन कमल के अंक निन्यारे।
धुजा बज्र अंकुस जव रेखा कहाँ दुरहिंगे कान्हर प्यारे॥
लोचन सजल प्रेम अति आतुर सूखे अधर चंद मुख गो घटि।
'परमानंद' बिरहिनी हरि की, पिउ पिउ करत अनाथ रही लटि॥

[२३९] राग स

अब क्यों बन बन फिरत बही।
तब काहे न गोपाल लाल रस छिनु इक संग रही॥
पूरब संचित सुकृत रासि फल स्रीपति बाँह गही।
तू ग्वालिनि जोवन मदमाती गरब की बात कही॥
कहा पछिताइ होई सबहि के बिरहा अनल दही।
'परमानंद' अब कासौं खेलौं हरि बिन सोच सही॥

[२४०] राग स

मदन मार मारि गये मोहन मूरति कोऊ।
कमल नैन स्याम सुन्दर भावत है सोऊ॥
सपने में डहकि गये दै आलिंगन गाढ़े।
जागौं तौ दुखित नयन जल प्रवाह बाढ़े॥
गति विलास मधुर हास ताकी हौं चेरी।
सरबसु ले अनत गये ऐसी भई गति मेरी॥
कैसे करि प्रगट मिलौं कैसे कै देखौं।
'परमानन्द' भाग दसा इतनो फल लेखौं॥

[२४१] राग विलाव

सरद राति गोपाल लीला रही है नैननि लागि।
अबही जो ब्रजनाथ मिलवहिं हरहिं मनसिज आगि॥
भोगी भवन भुजंग सीतल बाहु दंड बिसाल।
हरखि कै तन ताप मोचत कामिनी प्रतिपाल॥
कर कमल सीतल धरत उर पर हरत मन की पीर।
'दास परमानंद' प्रभु हरित तरनि तनया तीर॥

[२४२] राग कान्हरे

जिहि ते रस रहै रसिक कुँवर सौं सोई सयानी करहु बसीठी।
यह अपराध पर्यो अनजानत लाडकली कछु बात बिऊठी॥
काधारोहन माँगि सखी री नंद नंदन सौं मैं कीनी ढीठी।
जुवती जाति दोस को भाजन समुझत नहि कछु करुई मीठी॥
अब अभिमान करौं नहि कबहूँ तेरे हाथ देउँ लिखि चीठी।
'परमानंद' प्रभु आनि मिलावहु कमल नयन की महिमा दीठी॥

[२४३] राग सारंग

राधा भाग सों रस रीति बढ़ी।*
सादर करि भेटी नंद-नंदन दूने चाउ चढ़ी॥
बृंदावन में क्रीड़त दोऊ जैसे कुंजर क्रीडत करिनी।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन ताहू को मनहरिनी॥

---

* युगल रस वर्णन।

[२४४] राग सारंग

साँची प्रीति भई इक ठौर ।
मृग नैनी कमल दल लोचन लाल स्याम राधा तन गौर ।।
तुम सिर सोहत पाट की डोरी हरि सिर रुचिर चन्द्रिका मोर ।
तुम रसिकिनि वे रसिक सिरोमनि तुम ग्वालिन वे माखन चोर ।।
तुम करिनी वे गज बल नायक तुम मालति वे भोगी भौंर ।
'परमानंद' नंद नंदन कौं राधा सी गोरी नहिं और ।।

[२४५] राग सारंग

अलकलड़ी मोहन की जोरी ।
वे रस पुंज नंद जू की जीवनि यह दुलहिन ब्रखभान किसोरी ।।
वे कुंचित कच मधुप बिसेखित यह सुबेस ग्रथित सिर डोरी ।
वे अंबुज मुख यह बिधु बदनी वे कोमल कर उरज कठोरी ।।
वे गज मत्त प्रबल ब्रज नायक यह सारंग रिपु कृस कटि थोरी ।
वे ब्रन्दाबन ससि 'परमानंद' अहनिसि नागरि नैन चकोरी ।।

[२४६] राग सारं

आजु बनी दंपति बर जोरी ।
साँवल गौर बरन रूप निधि नंद किसोर ब्रजभान किसोरी ।।
एक सीस पचरंग चूनरी एक सीस अदभुत पट पोरी ।
मृगमद तिलक एक के माँथे एक माँथे सोहैं मृदु रोरी ।।
नख सिख उभय भाँति भूषन छबि रितु बसंत खेलत मिलि होरी ।
अतिसै रंग बढ्यो 'परमानंद' प्रीति परस्पर नाहिन थोरी ।।

[२४७] राग के

गोविन्द ।
सरद[1] रजनी उदित पून्यौ चंद ॥
विचित्र[2] चित्रित कोटि कोटिक बंद ।
बिलास बिलसत दंपती सुख[3] कंद ॥
अंग लेपन परस्पर[4] आनंद ।
ब्यार ढोरै सजनी 'परमानंद' ॥

[२४८] गोरी तित

आवत मदन गोपाल ।
हँसावत किलकत संग मुदित ब्रजबाल ॥
चंग मुख चलत विविध सुर ताल ।
रव सों मिलि रनित किंकिनी-जाल ॥
निकट बंसीबट मन्द समीर सुढाल ।
सरद ससि क्रीड़त नंद को लाल ॥
कनक पीत पट उर लम्बित वन माल ।
रसिक सिरोमनि चंचल नैन बिसाल ॥

[२४९] राग कल्य

त्रिभंगी ।
बजावत करत कुलाहल बालक संगी ।
बनमाला बन्यौ टिपारो लाल सुरंगी ।
भूलो सुनि बन मुरली नाद कुरंगी ॥
हरषत बाजत ढोल दमामा जंगी ।
नागर बिनोद सुरत रस रंगी ॥

मदन
कमल
सपने
जागौ त
गति दि
सरबसु है
कैसे क
'परमानन्
सरद रा
अबही जो
भोगी भ
हरखि त्रै
कर कमल
'दास परम
जिहि ते रस
यह अपराध
काधाँरोहन
जुवती जाति
अब अभिमान
'परमानंद' प्रभु
राधा भाग सों
सादर करि भैंट
वृंदावन में क्रीड़त
'परमानंद
• वर्गस

[२५०] आसावरी

आजु नीको बन्यौ राग आसावरी ।
मदन गोपाल बेनु बजावत मोहन नाद सुनत भई बावरी ।।
बछरा खीर पिवत थन छाँड़्यौ दंतन तृन खंडित नहिं गावरी ।
अचल भए सरिता मृग पंछी खेवट चकित चलत नहि नावरी ।।
कमल नयन घनस्याम मनोहर सब बिधि अकथ कथा है रावरी ।
'परमानंद स्वामी' रति नाइक यह मुरली रस-रूप सुभावरी ।।

तेरस के पद—

[२५१] राग बिलावल

धन तेरस रानी धन धोवति ।[१]
गर्ग बुलाइ वेद बिधि पूजत ठौर ठौर घृत दीप संजोवति ।।
धूप दीप नैवेद भोग धरि स्याम सुन्दर एक टक मुख जोवति ।
'परमानंद' त्यौहार मनावति सब ब्रज पुष्टि मारग धन बोवति ।।*

चतुर्दशी के पद—

[२५२] राग देव गांधार

दूध सौ सनान करो मन मोहन छोटी दिवारी काल मनाये ।
करो सिंगार लाल तन बागो कुल्हे जरकसी सीस धराये ।।
जैसी स्याम प्रति रंग प्यारी मिलि तैसेही दम्पति परम सुख पाये ।
भाव समागम है प्यारी कौ ज्यों निरधन के धन पाये ।।
वह छबि देखि देखि ब्रज जनही देत असीस आपनी मन भाये ।
चिरजीवौ दुलहिनी लाल दोउ 'परमानन्द दास' बलि जाये ।।

---

[१] ...ोवति
* प्रस्तुत पद से परमानन्द दास जी के पुष्टिमार्गीय होने का प्रमाण मिलता है ।

[२४७] राग के

पौढ़े रंग महल गोविन्द।
राधिका संग सरद[१] रजनी उदित पून्यौ चंद ।।
विविध चित्र विचित्र[२] चित्रित कोटि कोटिक बंद।
निरखि निरखि बिलास बिलसत दंपती सुख[३] कंद ।।
मलय चंदन अंग लेपन परस्पर[४] आनंद।
कुसुम बीजना ब्यार ढोरै सजनी 'परमानंद' ।।

[२४८] गोरी तिता

बने बन आवत मदन गोपाल।
निरतत हँसत हँसावत किलकत संग मुदित ब्रजबाल ।।
बेनु मुरझ उपचंग चंग मुख चलत विविध सुर ताल।
बाजे अनेक बेनु रव सों मिलि रनित किंकिनी-जाल ।।
यमुना तट के निकट बंसीबट मन्द समीर सुढाल।
राका रजनी विमल सरद ससि क्रीड़त नंद को लाल ।।
स्याम सघन तन कनक पीत पट उर लम्बित बन माल।
'परमानंद' प्रभु रसिक सिरोमनि चंचल नैन बिसाल ।।

[२४९] राग कल्य

आवत मदन गोपाल त्रिभंगी।
निरतत गावत बेनु बजावत करत कुलाहल बालक संगी।
कटि पीताम्बर उर बनमाला बन्यौ टिपारो लाल सुरंगी।
बचन रसाल सुरतिऔ भूली सुनि बन मुरली नाद कुरंगी ।।
बरषत कुसुम देव मुनि हरषत बाजत ढोल दमामा जंगी।
'परमानंद' स्वामी नट नागर बिनोद सुरत रस रंगी ।।

१—पुलिन स्याम घनघोर।
२—अनेक।
३—रस।
४—परस अति।

[२५०] आसावरी

आजु नीकौ बन्यौ राग आसावरी ।
मदन गोपाल बेनु बजावत मोहन नाद सुनत भई बावरी ।।
बछरा खीर पिबत थन छाँड़्यौ दंतन तृन खंडित नहिं गावरी ।
अचल भए सरिता मृग पंछी खेवट चकित चलत नहिं नावरी ।।
कमल नयन घनस्याम मनोहर सब बिधि अकथ कथा है रावरी ।
'परमानंद स्वामी' रति नाइक यह मुरली रस-रूप सुभावरी ।।

तेरस के पद—

[२५१] राग बिलावल

धन तेरस रानी धन धोवति ।[१]
गर्ग बुलाइ वेद बिधि पूजत ठौर ठौर घृत दीप संजोवति ।।
धूप दीप नैवेद भोग धरि स्याम सुन्दर एक टक मुख जोवति ।
'परमानंद' त्यौहार मनावति सब ब्रज पुष्टि मारग धन बोवति ।।*

चतुर्दशी के पद—

[२५२] राग देव गांधार

दूध सौ सनान करो मन मोहन छोटी दिवारी काल मनाये ।
करो सिंगार लाल तन बागो कुल्हे जरकसी सीस धराये ।।
जैसी स्याम प्रति रंग प्यारी मिलि तैसेही दम्पति परम सुख पाये ।
भाव समागम है प्यारी कौ ज्यों निरधन के धन पाये ।।
वह छबि देखि देखि ब्रज जनही देत असीस आपनी मन भाये ।
चिरजीवौ दुलहिनी लाल दोउ 'परमानन्द दास' बलि जाये ।।

---

[१] ...ोवति

* प्रस्तुत पद से परमानन्द दास जी के पुष्टिमार्गीय होने का प्रमाण मिलता है ।

[२५३] राग देव गा

आज दिवारी मंगल चार ।
ब्रज जुवति जन मंगल गावत चौक पुरावत नंद कुमार ।
मधु मेवा पकवान मिठाई भरि भरि लीने कंचन थार ।
'परमानन्द दास' को ठाकुर पहिरे आभूखन सिंगार ।।

गाय खिलायवे के पद

[२५४] राग देव गां

किलक हँसे गिरधर ब्रज राई ।
भाज्यौ सुबल लिये गोद बछरुवा पाछे धौरी धाई ।।
मधु मंगल लै मोर पखौवा दौरे आय अहेराई ।
तोक ताक तकि मोहन के ढिग भली विधि धेनु खिलाई ।।
खोल भवन भूषन पहरे सब पंखा भली भलाई[1] ।
लिये लपेट लाल गहने में सब ब्रज देखन आई ।।
स्याम जलद गम्भीर गरब सों मोहन टेर सुनाई ।
वो वापर वो वापर गैया सोभा कही न जाई ।।
सोने सींग घंटा अरु कठुला पीठ पत्र समुदाई ।
'परमानंद' आनंद भरि खेलत मुरली तबहिं बजाई ।।

[२५५] राग देव गां

ब्रजपुर बाजत सबही के घर ढोल दमामा भेरी ।
श्री गोबर्धन की पूजा कों कहत सबन सों टेरी ।।
अन्नकूट बहु भाँति बनावत रचि पकवानन की ढेरी ।
नन्दराय पूजत पर्वत कों लाओ गायन घेरी ।।
धूमरि गाय बुलाय ऊपर कौं लाल उपरना फेरी ।
सुबल सुबाहु कूक दै दौरौ नाँहि लगाओ बेरी ।।
डाढ़मेली धूमर की बछियाँ लावो[2] पूंछ छछेरी ।
देखत 'परमानन्द' सबन को गाँयन लीयो है झकझोरी ।।

---

१ मनाई
२ लाँबी

[२५६] राग देव गंधार

तुम्हरे खरिक बताई हो वृषभान हमारी गैयाँ।
चञ्चल नयन चहुँधा चितवत सकर्षन को भैया॥
संध्या समय बाग ते बिछुरी अर्द्धराति सुधि पैया।
या बिन सोयें रह्यौ न परत है यों कहे कुंवर कन्हैया॥
सुन प्रिय बचन किसोरी अटा चढ़ि जालरंध्र ह्वै झाँकी।
'परमानन्द' प्रभु करषि लियो चित चंद्रबदनि भ्रुव बाँको॥

[२५७] राग देवगंधार

नीकी खेली गोपाल की गैया।
कूकें देत ग्वाल सब ठाड़े यह जु दिवारी[1] नीकी मैया।
नन्दादिक देखत हैं ठाड़े यह जु पाहुनो[2] की पैया॥
बरस द्यौसलों कुसल कुलाहल नाचौ गावौ करौ बधैया॥
धौरी धेनु सिंगारी मोहन बछरे वृषभ सिंगारे।
'परमानन्द' प्रभु राई दामोदर गोधन के रखवारे॥

[२५८] राग स्याम

स्याम खरिक के द्वार करावत गायन को सिंगार।
नाना भाँति[3] सींग मंडित किये ग्रीवा मेले हार॥
घंटा कंठ मोतिन को[4] पटियाँ पीठिन की[5] आधै औधार।
किंकिन नूपुर चरन बिराजत बाजत चलत सुढार॥
यह विधि सब गाय सिंगारी[6] सोभा बड़ी अपार।
'परमानन्द' धेनु[7] खिलावत पहिरावत सबै गुवार॥

---

१ हा हा जु दिवारी
२ परवनी की पैया
३ रंग
४ मुरज के कठुला
५ पीठिन को अब छार
६ व्रज धेनु संवारी
७ नंद

[२५६] राग देवगांधा

सब गायन में धूमर खेली ।
स्रवन पूँछ उचकाई सूधि ह्वै ग्वाल भजावत फिरत अकेली ॥
पकरि लई गोपाल आप ही कंठ बनावत सेली ।
चुम्बत मुख आटो भरि भेटी टेर कहत लाओ गुर भेली ॥
आप गोपाल खवाय खिलावत सब गायन को हेली ।
'परमानन्द' देखे बलि आवें जब धौरी की बछिया झेली ॥

[२६०] राग देवगांधा

बिफर गई धूमर अरु कारी ।
कूकत ग्वाल बछरा ग्वालिन बदन पिछोरी डारी ॥
तब तो हूंक हूंक सन्मुख ह्वै भली भाँति सँभारी ।
पूँछ उठाय कर दौरी दोऊ कुँवर भरे अंकवारी ॥
भीर खिरक के अटा अटारी ठाड़ी हैं ब्रज नारी ।
'परमानन्द' देखे ही बलि आवें नवल लाल गिरधारी ॥

[२६१] राग देवगांध

आज कुहूकी रात माधौ दीप मालिका मंगलचार ।
खेलौ धूल सहित संकर्षन मोहन मूरति नंदकुमार ॥
कहत जसोदा सुनो मन मोहन चन्दन लेप सरीर करो ।
पान फूल चोवा दिव्य अम्बर मारमिला[1] लै कंठ धरो ॥
गो क्रीड़न पुनि काल्ह होयगी नंदादिक देखेंगे आय ।
'परमानन्ददास' संग लीने खिरक खिलावत धौरी गाय ॥

[२६२] राग देवगां

आज अमावस दीप मालिका बड़ी परबिनी है गोपाल ।
घर घर गोपी मंगल गावें सुरभी वृषभ सिगारो लाल ॥
कहत जसोदा सुनो मन मोहन अपने तात को आग्या लेहु ।
बारौं दीपक बहुत लाड़िले करो उजियारो आपुन गेह ॥
हँसि ब्रजनाथ कहत माता सों धौरी धेनु सिंगारों जाय ।
'परमानंददास' को ठाकुर जाहि भावत है निसदिन गाय ॥

---

१ आभूषण विशेष

री के पद

[२६३] राग कान्हरो

गिरधर हटरी भली बनाई ।
दीपावलि हीरा मनि राजत देखि हरख होत अति माई ॥
भाँति अनेक पकवान बनाये अति नौतन व्यंजन सुखदाई ।
सुन्दर भूखन पहरे सुन्दरि सौदा करन लाल सों आई ॥
सावधान ह्वै सौदा कीजे जो दीजै तो तौल पुराई ।
राखो चित चंचल नहिं कीजे ग्वालिन हंसि मुसकाई ॥
कैसे बोली बोलति ग्वालिन कहत जसोदा माई ।
'परमानन्द' हँसी नन्द घरनी सबै बात में पाई ॥

[२६४] राग सारंग

दीपदान दीपावलि देखो हीरा दीप खंभ नग राजत ।
जगमग जोति रही चहूँ दिसिते निविड तिमिर अतिभाजत ॥
बैठे लाल हटरिया बेचत मधु मेवा पकवान मिठाई ।
देखि देखि सोभा ब्रज सुन्दरि सौदा लेन लाल सों आई ॥
मृदु मुसकाय कहत मोहन सों घटि जिन तोलौ लाल ।
'परमानन्द' प्रभु नंद नंदन विहँसे और सब ब्रज की बाल ॥

र्धन लीला के पद

[२६५] राग सारंग

आवहु रे आवहु रे ग्वालो या परबत की छहियाँ ।
गावहु नाचहु करहु कुलाहल जिन डरपहु मन महियाँ ॥
जिनि तुम्हरो पकवान जो खायो अब सोई रच्छा करि है ।
'परमानन्द दास' को ठाकुर गोवर्धन कर धरि है ॥

[२६६] राग

अद्भुत तेरी गति बारे कन्हैया ।
तुम जो तनिक गोवर्धन धार्यौ एक ही हाथ लियो कैसे भैया ।
जमुना बैठि गह्यौ पुनि काली रहे सब लोक दिखैया ।
केसी तृनावर्त तैं मारे और पूतना हली जदुरैया ।
बच्छ बाल अघासुर लीला तुम ही भए ता ठौर नन्हैया ।
'परमानंद' प्रभु बहुतक ऐसो अपनो मरम कह्यौ नंद दुहैया ।।

[२६७] राग

सब मिल पूछें गोवर्धन क्यों धर्यौ ।*
कहो कृष्ण ऐसो डर काको[१] क्यों मघवा पायन पर्यो ।
सोई मन्त्र हमहि सिखावो हम करें तुम्हारी सेवा ।
'परमानन्द' ऐसो ठाकुर तजि कित आराधत देवा[२] ।।

[२६८] राग

कैसो माई अचरज उपजै भारो ।
पर्वत लियो उठाय अंक लै सात बरस को बारो ।।
सात द्यौस निसि इकटक ही याने बाम पानि पर धार्यो ।
अति सुकुमार कुँवर नंद कैसे बोझ सहार्यो ।।
बरखे मेघ महा प्रलय के तिनते घोष उबार्यो ।
गोधन ग्वाल गोप सब राखे सुरपति गरब प्रहार्यो ।।
भगत हेत अवतार लेत प्रभु प्रकट होत जुग[३] चार्यो ।
'परमानन्द' प्रभु की बलि जैये जिन गोवर्धन धार्यो ।।

---

* बूझन लागे गोप गोवर्धन क्यों धार्यौ ।

१ कान्ह काको कछु डर है ।

२ कौन उपासे देवा ।

३ प्रकट होतु जुग चारयो ।

[२६९] राग नट

महाकाय गोवर्धन पर्वत एक ही हाथ उठाय लियो ।
देवराज को गर्ब हर्यो हरि अभय दान ग्वालन[१] कों दीयो ॥
यह[२] बालक लीला अवतारी कही नन्द जू ग्वालिन आगे ।
सेवा[३] करी सनेह बिचारी कबहु बयार न ताती लागे ॥
तोर्यौ सकट पूतना मारी तृनावर्त दानव संहार्यो ।
स्त्री जमुना[४] जल निरबिस कीनों काली नाग बाहर[५] निकार्यो ॥
अर्जुन बृच्छ छिनक में तोरे आपुन दाम ऊखल बंधाये ।
'परमानन्ददास'[६] को ठाकुर जाकों गरग मुनि गाये ॥

[२७०] राग अड़ानों

मति गिरि ! गिरै गोपाल के करते ।
अरे भैया ग्वाल लकुटिया टेकौ अपने अपने कर के बलते ॥
सात द्यौस मूसलधार बरख्यौ बूंद न परी एक जलधरतै ।
गोपी ग्वाल नंद सुराखे बरसि बरसि हार्यौ अम्बर तें ॥
अन्तरिच्छ जल जर्यो सिखर पर नन्द नंदनकी कोप अनलतें ।
'परमानन्द' प्रभु राखि लियो ब्रज अमरापति आयो पायनपरतें ॥

[२७१] राग नट

धन यह कूखि जनम जहँ लीनो गिरि गोवर्धन धारी ।
लरिका कहा बहुत सोत जाये जौ न होय उपकारी ॥
एक सो लाख बराबर गिनिये करै जो कुल रखवारी ।
अति आनन्द कहत गोपीजन जन मन करम बचन बिचारी ॥
इन्द्र कोप कीनो ब्रज ऊपर मघवा गरब निवारी ।
'परमानन्द दास' कौ ठाकुर गो बृन्दाबन चारी ॥

---

१. गोपाले दीनो ।
२. गर्ग बचन कहे सो साँचो यह बालक लीला अवतारी ।
कहे नन्द ग्वालन के आगे सेवा करहु सनेह बिचारी ॥
४. कालिन्दी ।
५. बिदेस
६. परमानन्द स्वामी मुसकाने किये भगत मन भाये ।

गोवर्धन लीला

[२७२]

छैल छबीले लाल कहत नंद रायसों ।
घर घर मंगल होत कहा है आजु तुम्हारे ॥
बहु बिधि करत रसोई मध हूं गयो सकारे ।
मोहि देखि सब कोई कह्यौ यहां जिन आवो लाल ॥
देव जग्य हम करत हैं करि पकवान रसाल ।
यह बिस्मय चित्त मोहि कौन को करत पुजाई ।
याको फल है कहा कहो तुम ब्रजपति राई ॥
नाम कहा या देव कौ कौन लोक को राज ।
इतनों बलि यह तात हमारो करत कहा है काज ॥
नंद हँसे मुसकाय कान्ह सों कहत सुनाई ।
इन्द्र पाक हम करत सदा तुमरी कुसलाई ।
ताल तलैया सब भरैं बहुतृन उपजैं भूमि ।
वृच्छ हरित सब होत है फूल लता रहे भूमि ॥
अमरावति को राज करत है निसिदिन कुसलाई ।
उरबसी को नृत्य होत है याते अधिकाई ॥
देव रिषि स्तुति करें सब कोउ मानत आन ।
याते हम सब पूजहीं बरसो बरस निदान ॥
तब हरि कियो बिचार मतो एक नयो उपायो ।
इनमें माया फेरि करौं आपनों मन भायो ॥
सुनों तात एक बात हमारी मानौ जोई ।
गिरवर पूजा कीजिये इनते सब सुख होई ॥
वे प्रभु प्रत्यच्छ देव भूलि क्यों बुद्धि बिचारो ।
बैकुण्ठ इनके माहि देव सब इनते न्यारो ॥
गाय गोप हम जात हैं इनको करत परनाम ।
गोवर्धन यह नाम है प्रकटे पूरन काम ॥

ब्रह्म रुद्र सनकादिक सबै इनकों सिरनावैं ।
इनकी महिमा अखिल लोक निर्मल गुन गावैं ॥
ऐसे प्रभुको छाँड़ि के सक्रादि कों देत हो भोग ।
अनेक विघन इन टारिये इनकों पूजन जोग ॥
यहै बात बिस्वास रायजू के मन आई ।
बड़े गोप सब कहत सुनो हरि कुंवर कन्हाई ॥
गरग हम सों कह्यो जेहैं वासुदेव अवतार ।
सकट पूतना इन हने बक आदि किये संहार ॥
सबहिन के मन आय कियो इनको मन भायो ।
सब ब्रज में बात सुनाय गोवर्धन पूजन आयो ॥
इनको सब मिल पूजिये ब्रज में होत कल्यान ।
यह निसिचय सब दिन कियौ गिरि को कियो सनमान ॥
सब सामिग्री सकट मांझ सबहिन जु धराई ।
अपने सकट जुराय चली रोहिनी जसोदामाई ॥
राम कृष्न को पास लै प्रफुलित मन आनंद ।
बड़े गोप सब संग ले बृषभान बुलाये नन्द ॥
सुन्दर गावत गीत चली ब्रजनारि सुहाय ।
बहु विधि सौ बाजें बजे दिये निसान घुराय ॥
ग्वाल गोप गो बच्छ लै चल्यो सकल ब्रज संग ।
ब्रजबासी दरसन भयो गिरिवर गिरिधर अंग ॥
सबन नवायो सीस भये मन मुदित बिचारे ।
किहिं विधि पूजन करें पूछि पुरोहित उपचारे ॥
हम नहि समझैं महेर जू पूछो लाल बुलाय ।
लाल कह्यो पूजन करो बलि उपहार मँगाय ॥
गोवर्धन पै दीप दान कियो मन भायो ।
चहुँ दिसि जगमग ज्योति कुहू निसि भयो सुहायो ॥
परिकम्मा सब कोउ चले दाहिन दियो गिरिराय ।
गीत नाद उद्घोष सों मगन भये ब्रज राय ॥

प्रात समें सबसौं मिले लै आए नन्द राय।
उमग्यौ आनंद सिन्धु कृष्न बलदाऊ माय॥
बड़े गोप आये सबै वृषभान गोप संग लाय।
विप्र बुलाये नन्द जू पूजन कौं गिरिराय॥
पूजन को आरम्भ कियो षोडस उपचारें।
धौरी दूध अन्हवाय बहुरि यों गंगा जल डारें॥
केसर चंदन चरचहीं उबटन कियो बनाय।
मानसी गंगा नीर सों स्नान कराये नंद राय॥
कुंकुम अच्छत तिलक दियो माला पहिराय।
पीताम्बर उरहार गोवर्धन तब ही उढ़ाय॥
कुनवारो आगे धरचौ धूप दीप तिहि बार।
सुख सागर सबहिन भयो उमगे करि बलिहार॥
करवाय आचमन सुगंध बीराजु धराये।
बार बार करि आरतौ गीत मंगल जु गवाये॥
ग्वाल बुलाये नन्द जू कुनवारो दियौ बाँट।
तिलक दिये थापे दिये माथे डोरा गाँठ॥
कान्ह कह्यौ सब ग्वाल बुलाय गाय खिलावौ।
धौरी धूमरि गाय सब बछरन संग लावौ॥
हूँकि हूँकि गायें सबै सम्मुख आई धाय।
खेलन को उत्साह भई धौरी आगे आय॥
सेली बाँधे सीस कर तबै लकुटी लीन्हीं।
गायन सम्मुख आय लाल जू चकृत कीन्हीं॥
गायन के अनुकरन ते गोकरन[1] धारे सीस।
गोप भेष अद्भुत बन्यौ ज जै गोकुल ईस॥
अपनी गाय खिलावै कहियो तुम सबै खिलावो।
बछरन आगे लाय तोदरों[2] बहुरि बजावो॥

---

१ ग्वालों का शृङ्गार विशेष जो वे दीपावली पर सिर पर धारण करते
२ वाद्य विशेष।

धेनु खिलाई जो सखी गुवालन कियो जुहार ।
नए बसन भूषन दये सबनि मान त्योहार ।।
अन्नकूट धर्यौ भौन सो काहे कौन बखाने ।
बहु विधि के पकवान विबिध करि सम्मुख आने ।।
पेड़ा बरफी आदि लै सकल मिठाई जात ।
भाँति भाँति मेवा धरे तर मेवा सब भाँत ।।
चकुली पूवा महिल साठा घर घर तें आये ।
भोग धरे नन्दराय सबन के मनुज बढ़ाये ।।
अरु काँजी धरी बनाय कै बरा भिजोये छाछ ।
बहुत माँट आगे धरे फल जु धरे भरि गाँछ ।।
पायस धरी अरु खीर धरी धौरि सुखदाई ।
ओदन सेव सजाये धरी मन काजु[1] मिलाई ।।
बूरा डारचौ अति घनो तामें बहुत भुकराय ।
सैंया बरी मीठी घनो घृत नवनीत सिकाय ।।
फोग केरा द्राच्छा किये बिल सारू फेरो ।
सिखरन सजोई धरी अति मीठी सौ तेरी ।।
बासौंदो अति सुगंध कौ केसर रंग मिलाय ।
दूध औटि मीठो धर्यो मिसरी बनी छनाय ।।
माखन मिसरी मिलाय दही मीठो जु धरायो ।
तिन ढंग सिखरन छान मेलि बूरो मन भायो ।।
साक रायता सबै धरे सन्धाले गिने न जायँ ।
कचरियाँ सुकवन की करी भुंजेना बहु भाय ।।
तेहि आगे हलदी को चौक पूर्यौ पदम सँवारे ।
मीठो धर्यौ बनाय बहुत कीन्हौ बिस्तारे ।।
ओदन तिहि मध्य प्रेम सौं गिरि कौ कर्यौ सम्मान ।
मध्य चक्र बाँए धर्यो गूंजा शिखर समान ।।

---

[1] ब्याजु

चार भाँति की दार मूंग ठाड़े जु बनाये ।
घृत नवनीत मँगाय मूग मिलै भात सनाये ॥
पापर कहए तेल में तरे संवार बनाय ।
उरद बड़ो तिल बड़ो ठवरा धरे भुँजवाय ॥
सिखरन दही भात जीरा जु मिलायो ।
बड़ो बैंगन को पोरो भात अति सुख सुहायो ॥
मीठो खाटो भात लै आगे धर्यो बनाय ।
बरी मूंगरी टीकरा चीला चकता लाय ॥
सकरकंद मीठो शाक रुचिर धर्यो बनाई ।
अरबी रतालू जिमींकंद इमली जु मिलाई ॥
तीन कूँड़ा औटाय के चना बरी को कीन ।
कढ़ी करी बहु भाँति की भोजन करत प्रवीन ॥
बैंगन भुरता शाक कई बहु भाँति बनाय ।
और भुँजेना करि धरे अगनित गिने न जाय ॥
यहि विधि पूर्यो मोद सों बरनत बरन्यो न जाय ।
जमुना जल के माट लै बाम भाग पधराय ॥
धूप दीप करि भोग धर्यो मन अधिक बढ़ाय ।
तुलसी माल पहिराय नंद केसर चरचाई ॥
संखोदक कीनों तबै अति प्रसन्न ब्रज राज ।
हाथ जोड़ बिनती करी मान लेहु गिरि आज ॥
गिरवर रूप धर्यो जु स्याम भक्तन मन हारी ।
ब्रजजन निरखें आय किये तन मन बलिहारी ॥
सबन कह्यो हरखे सबै उमँग उर न समाई ।
धन धन सुवन नंदजू को यह सुख देख्यो जाई ॥
किंचित् छाक बनाय ग्वारि राख्यो घर माँहीं ।
सकुच रही मन माँझ सोच अतिसय चित जाही ॥
आरति जानी वाहि को लीनो भोग मंगाय ।
सब देखत वाहि लियो खायो सराहि सराहि ॥

जमुना जल झारी जु लाय अंचवन जु करायो।
मुख पोंछन के काज वस्त्र सब ही जु उठायो॥
बीरी लाये संवारि कै देत बनाय बनाय।
आप अरोगत मुख भरे उगार कौं भक्तन लियो आय॥
यह उच्छव सुख देख बीन में नारद गायो।
व्रज जन मन उल्लास अंग अंग न समायो॥
जसुमति कीन्हो आरतो बार बार सुख पाय।
चरनन मस्तक धारिकै के कुसल मनायो माय॥
राई लोन उतारि बहु नौछावर कीन्ही।
मागध सूत बुलाय सबै मुठिया भरि दीन्ही॥
आग्या माँगि सब चले अपुने गृह कों जात।
राम कृष्ण बन्दन कर्यो चले माय संग तात॥
समो गयो सब चूकि इन्द्र मन बहुत रिसायो।
दीनों दूत पठाय नंद व्रज खबर मंगायो॥
उन सम्मुख आयसु कियो सासति कह्यौ सुनाय।
परबत को पूजन कियो दीने भोग लुटाय॥
कोप कियो व्रज माँह प्रलय के मेघ छुड़ाये।
बरसो जाय निसंक[1] देहो व्रजै बहाये॥
महा घोर बरसा भई बहत प्रचंड समीर।
कह्यो गोप व्रज राज सों अब कैसे रहै धीर॥
गिरिवर सम्मुख चाहि[2] कान्ह जु तबही उठायो॥
श्रम न कछू चित माँहि छत्रबल ऊपर आयौ॥
अँदेसो सबहिन भयो टेकि लकुटिया आय।
बेनु रंध्रन पूरि के गिरि को दयो उछलाय॥
मानों सप्त सुरन सों फूंकि कै थिरकरि राख्यो।
गोपी जन गृह काज करहु आनन्द सों भाख्यौ॥

---
[1] निश्चिन्त (पाठ भेद)
[2] देख कर (अर्थ)

[६७]

सात द्यौस लौं बरसियो मूसलधार प्रमान।
तबहिं यह निस्चय भयौ परब्रह्म भगवान॥
अपराध पर्यौचित जानि संग सुरभी लै आयौ।
गंगा जल अभिषेक कियौ आनन्द बढ़ायौ॥
मुकुट चरनन पर धर्यो लोटत मघवा धरि ध्यान॥
पीठ आप अपनों कियो यह ब्रज मेरो जान॥
गिरिवर धरणी पै धरि आप मैया पै आये।
मात तात पाँयन परे दोउन सिर नाए॥
ग्वाल गोप सबहिन मिले कंठ लगे अँकवार।
हरख हरख सब यों कह्यो चिरजीवौ नंद कुमार॥
रानीजू गोद बैठाय चूमि मुख हियौ सिरायो।
प्रेम समुद्र बाढ्यौ बहू उमग्यो न समायो॥
कान्ह जो मेरे एक हैं बाँधौ हाथ पिराय।
सात द्यौस पर्वत धर्यौ कमला पति बैकुंठराय॥
सखा भये मन मुदित दई ब्रजराज दुहाई।
जै जै सबद उच्चारत हमारो देव कन्हाई॥
तिहारो ऐसो पूत है बिघन नसै बहु कूर।
गोविन्द इनको नाम है सोरह कला भरपूर॥
भूषन बसन मँगाय बारि गुवालन कों दीने।
अति उदार नंदराय दान बहुतक से कीने॥
आसिस दई विप्रन कह्यौ जीवौ सुत ब्रजराज।
मदन मोहन ब्रज लाडिलौ 'परमानन्द' सिरताज॥

[२७३]

बार बार हरि सिखवन लागे बोलत अमृत बानी।
सुनोहो एक उपदेस हमारो चारि पदारथ दानी॥
मेरो कह्यौ बेगि अब कीजै दूध भात घृत सानी।
गोवर्धन कौ पूजन कीजै गोधन के सुख दानी॥
यह परतीत नंदजु के आई कान्ह कही सोई मानी।
'परमानन्द' प्रभु मान भंगकरि झूँठो कियौ पानी॥

[२७४] राग सारंग

घरी एक छाँडो तात बिहार ।
राम कृष्न तुम दोउ भैया आवो बैठो करो सिंगार ॥
जसुमति कहत है आजु अमावस दीप मालिका मंगल नाम ।
घर घर बालक सबै सिंगारें सुनो स्यामघन राम ॥
खेलेंगी गाय ग्वाल सब नाचें गोपी गावें गीत ।
'परमानन्द दास' यह मंगल वेद पुरान पुनीत ॥

[२७५] राग सारंग

गोवर्धन पूजत परम उदार ।
गोपवृन्द मोहन की सोभा बाढ़ी परम अपार ॥
खटरस बिंजन भोग सैल कौं धरत विविध उपहार ।
पूजा करि पाँय लागि के परदच्छिना देत दिवावत ग्वार ॥
चहुँ ओर गोपी कंचन तन, मानों गिरि पर्यौ हार ।
'परमानन्द' प्रभु की छबि निरखत रह्यौ बिथकि तहँ मार ॥

[२७६] राग सारंग

गोवर्धन पूजिहैं हम आई ।
राखो भाग नन्द मघवा कौ करिहै कहा रिसाई ॥
आनन्द मगन ग्वाल चले सब गोरस माँटि भराई ।
सखन सहित अति राम कन्हैया खिरक सिंगारत जाई ॥
दीप[१] मालिका महामहोच्छव ग्वालन लेहु बुलाई ।
'परमानन्द प्रभु' लै दधि ओदन बैठि रहे सब खाई ॥

[२७७] राग सारंग

नन्द गोवर्धन पूजो आज ।
जाते गोप गुवाल गोपिका सुखी सबन को राज ॥
जाकौं रुचि-रुचि बलिहि बनावत कहा सक्र सों काज ।
गिरि के बल बैठे अपने घर कोटि इन्द्र पर गाज ॥
मेरो कह्यौ मान अब लीजे भर भर सकटन साज ।
'परमानन्द' आन के अर्पत वृथा करत कित नाज[२] ॥

---

[१] पुन धारि लियो गिरि मूरति अंतर प्रीतिहु पाई ।
[२] अभिमान अथवा गौरव [फारसी प्रयोग अर्थ]

[२७८] राग

गोधन पूजें गोधन गावें ।
गोधन के सेवक संतत हम गोधन ही कों माथों नावें ॥
गोधन मात पिता गुरु गोधन गोधन देव जाहि नित ध्यावें ।
गोधन कामधेनु कल्पतरु गोधन पै मांगे सोई पावें ॥
गोधन खिरक खोरि[1] गिरि गह्वर रखवारो घर बन जहँ धावें ।
'परमानन्द' भावतो गोधन गोधन को हमहूं पुनि भावें ॥

[२७९] राग

हमारो देव गोवर्धन रानो ।
जाकी छत्र छाँह हम बैठे ताकौं तजि और को मानो ॥
नीको तृन सुन्दर जल नीको नीको गोधन रहत अघानो ।
नीको सब ब्रज होत सुखारो सुरपति कोप कहा पहचानो ॥
खीर खाँड घृत भोजन मेवा ओदन सबल अनूपम आनो ।
'परमानन्द' गोवर्धन उच्छव अन्नकोट अलौकिक जानों ॥

[२८०] राग

गोवर्धन पूजि कै घर आये ।
जननी जसोदा करत आरती मोतिन चौक पुराये ॥
मंगल कलस बिराजित द्वारे वंदनवारि बनाये ।
'परमानन्द' गिरिधर गिरि पूज्यौ भये भोजन मन भाये ॥

[२८१] राग बि

गोवर्धन नख पर धर्यो मेरे बारे कन्हैया ।
दधि अच्छत फल फूल लै भुज अरचत मैया ॥
जुरि आईं सब घोख की नारी औरे जु अढैया[2] ।
ग्वाल बाल पाँयन परे गोपी लेत बलैया ॥
बलदाऊ फूल्यौ फिरै जग जीत्यौ रे भैया ॥
'परमानन्द' आनन्द में ब्रज बजत बधैया ॥

---

१ गली [अर्थ]
२ टेक अथवा सहारा लगाने वाले [अर्थ]

[२८२] राग सारंग

बरषन देरे बरषन दै हमारो गोकुल नाथ सहाय ।
एकहि हाथ नंद के नंदन परवत लियो उठाय ।।
मोहि भरोसो कमलनैन को बार न बाँको जाय ।
महाबली घनस्याम मनोहर समरथ जादोंराय ।।
सात दिवस जल बरसि सिरानो मघवा चल्यो खिसाय ।
'परमानन्द स्वामी' के गोपा निकसे बेनु बजाय ।।

[२८३] राग बिलावल

हमें सरन तुम्हारी राखौ जीउ ।
गोपी ग्वाल पुकारत हरि पै जुरि जुरि बादर गरजत पीउ ।।
इन्द्र कोप कीनौ हम ऊपर मेघ समूह पठाये ।
मूसलधार घन बरषन लागे रिपु समाज कै धाये ।।
जिनि डराऊ हौं नाथ तुम्हारो हँसि-हँसि कहत मुरारी ।
अनायास छानों[१] लेउ परवत कर धरि लियो उपारी ।।
सात दिवस अपनौ सो कीनौं मघवा गयो खिसाई ।
'परमानन्द स्वामी' के गोपा बसे निसान बजाई ।।

इन्द्र मान भंग के पद

[२८४] राग बिलावल

चिरजीवौ लाल गोवर्धन धारी ।
सात द्यौस जल वृष्टि निवारी या छोटा पर बारी ।।
देवराज परतिग्या मेटी गोप भेख लीला अवतारी ।
नल कूबर मनिग्रीव उबारे बालक दसा पूतना मारी ।।
देत असीस सकल गोपी जन राज करो वृन्दावन चारी ।
'परमानन्द दास' को ठाकुर अनुदिन आरति हरत हमारी ।।

---

[१] छाया आश्रय [अर्थ]

[२८५] राग बिला

गोपी ग्वाल पुकारन लागे सरन तिहारी राखो जू ।
बादर जुरि जुरि गाजन लागे भली होय सो भाखौ जू ।।
इन्द्र कोप हम ऊपर कीनौ मेघ समूह पठाये जू ।
मूसलधार बरखत सेला पर रिपु समान उठि धाये जू ।।
जिन डरपो हों नाथ तिहारो हँसि हँसि कहत मुरारी जू ।
अनायास छत्र जो छायो पर्वत लियो उखारी जू ।।
सातद्यौस अपनो सो कीनो मघवा रह्यौ खिस्याई जू ।
'परमानन्द' कहौं गोपी जन कैसे बेनु बजाई जू ।।

[२८६] राग बिर

गोवर्धन धरनी धर्‌यो मेरे बारे कन्हैया ।
दधि अच्छत फल फूल लैलै भुज पूजत मैया ।।
बिप्र बोलि बरनी करी दीनी बहु गैया ।
ग्वाल बाल पायन परे गोपी लेत बलैया ।।
नंद मुदित मन फूलहिं कोरति जुग जुग भैया ।
'परमानंद' ब्रज राखि लियो खेलत लरकैया ।।

[२८७] राग धन

माधो जू राखो अपनी ओट ।
वे देखो गोवर्धन ऊपर उठे हैं मेघ के कोट ।।
तुम जो सक्र की पूजा मेटी बैर कियो उन मोट[१] ।
नाहिन नाथ महातम जान्यो भयौ है खरेते खोट ।।
सात द्यौस जल बरसि सिरानो अचयो एकही घोट ।[२]
लियो उठाय गरूवो गिरि करपर कीनों निपट निघोट[३] ।।
गिरि धार्‌यो तृनावर्त पार्‌यो[४] जियो नंद को ढोट ।।
'परमानन्द प्रभु' इन्द्र खिसयानो मुकुट चरन तर लोट ।।

---

१ बड़ा; बहुत [अर्थ]
२ घूँट ।
३ हल्का
४ मार्‌यौ

[२८८] राग धनाश्री

महाबल कीनो हे ब्रजनाथ ।
इत मुरली उत गोपिन सों रति इत गोवर्धन हाथ ॥
उत बालक पय पान करावत इत सुरभी तृन खात ।
उतहि चरत बछरा अपने रस ग्वाल बजावत पात ॥
कोप्यो इन्द्र महाप्रलय को भर लायो दिन सात ॥
'परमानंद प्रभु' राखि लियो ब्रज मेटि इन्द्र की घात ॥

[२८९] राग धनाश्री

अब न छाँडो चरण कमल महिमा मैं जानी ।
सुरपति मेरो नाम धर्यो लोक लोक अभिमानी ॥
अबलौं मैं नहीं जानत ठाकुर है कोई ।
गोपी ग्वाल राखि लिये सब मेरी पति खोई ॥
ऐरावत कामधेनु अरु गंगाजल आनी ।
हरि को अभिषेक कियो जय जय सुर बानी ॥
बारंबार परनाम करत गोवर्धन धारी ।
'परमानंद' गोप भेष [महँ] लीला अवतारी ॥

पाष्टमी के पद

[२९०] राग सारंग

गोपाल माई कानन चले सवारे ।
छींके कांधे बांधि दधि ओदन गोधन के रखवारे ॥
प्रात समय गोरंभन सुनि कै गोपन पूरे सिंग ।
बजावत पत्र कमल दल लोचन जानो उठि चले भृंग ॥
करतल वेनु लकुटिया लीने मोर पंख सिर सोहै ।
नटवर भेष बन्यो नंदनंदन देखत सुर नर मोहै ॥
खग मृग तरु पंछी सचुपायो गोप वधू बिलिखानी ।
बिछुरत कृष्ण प्रेम की वेदन कछु परमानंद जानी ॥

[२६१] राग

मैया री मैं गाय चरावन जैहौं ।
तू कहि महर नंद बाबा सौं बड़ो भयो न डरैहौं ॥
श्रीदामा आदि सखा सब और हलधर संगै लैहौं ।
दह्यो भात कांवरि भरि लैहौं भूख लगे तब खैहौं ॥
बंसीबट की सीतल छैयां खेलत मैं सुख पैहौं ।
'परमानन्ददास' संग खेलों गाय जमुना जल न्हैहौं* ॥

[२६२] राग

ब्रज जन फूले अंग न मात ।
आज कहूँ गए गौ चारन आग्या दीनी तात
मंगल कलस अलंकृत गोपी जसुमति गृह उठि आई प्रात
साज सिंगार पहिरि पट भूषन सुन्दर स्यामल गात
गाय सिंगारि ग्वाल लै आये भई भामती बात
'परमानन्द' कहत नंदरानी बालक दूर न जात ।

[२६३] राग

मैया री मैं कैसी गाय चराई ।
बूझि देखि बलभद्र ददा सौं कैसी मैं टेरि बुलाई ॥
बिडरि चली सघन बन महियाँ हेरो दै ठहराई ।
ग्वालन के लरिका पचिहारे वे सब मेरी दाँई ॥
भलो भलो कहि महरि हँसत है फूली अंग न माई[१] ।
'परमानंद प्रभु' बीर बचन सुनि जसुमति देत बधाई ॥

---

* 'परमानंद' प्रभु तृसा लगे पै जमुना जलहि अचैहौं । [पाठभेद]

१ मात

[२९४] राग सारंग

मैया हौं न चरैहौं गाय ।
सबरे ग्वाल घिरावत मोपै दूखत मेरे पांय ॥
जउ हौं घेरन जात नहीं कितनी बेर चराय ।
माहि न पत्याउ बूझि बलदाऊ कौं अपनी सौंह दिवाय ॥
हौं जानत मेरे कुंवर कन्हैया लेत हिरदय लगाय ।
'परमानंददास' कौ जीवन ग्वालन पर जसुमतिजु रिसाय ॥

[२९५] राग सारंग

चले हरि बछरा चरावन माई ।
टेरे[१] पहिलें तोक स्रीदामा लीने संग लगाई ॥
कहत गोपाल सुनत सब बृन्दावन में जैये ।
मधुमेवा पकवान मिठाई भूख लगें तब खैये ॥
खेलत हँसत करत कोलाहल आये यमुना तीर ।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर राम कृस्न दोऊ बीर ॥

[२९६] राग बिलावल

सोहत लाल लकुटी कर राती ।
सूथन कटि चोलना असन रंग पीताम्बर की गाती ॥
ऐसे गोप सबै बनि आए जो सब स्याम संगाती ।
प्रथम गोपाल चले जु बच्छ लै असीस पढ़त द्विज जाती ॥
निकट निहारत रोहिनी जसोदा आनंद उपज्यो छाती ।
'परमानंद' नन्द आनंदित ह्वै दान देत बहु भांती ॥

१ रे रे तोक [परमानन्ददास लीला में तोक सखा हैं अतः इसे आत्म संकेत की सुन्दर पद्धति मानी जा सकती है—सम्पादक]

[२९७] रा.

मेरी भरी मटुकिया लै गयोरी ।
कछु खायो कछु ग्वालन खवायो रीती करि मोहि दै गयो
बृन्दावन की कुंज गलिन में ऊँचो नीचो मोते कहि गय
'परमानन्द' ब्रज बासी सांवरो अँगूठा दिखाय रस लैगयो

[२९८]

हो[१] प्यारी लागे ब्रज डगर ।
लुकि लुकि खेलत आंख मचौनी चरन पहारी उपर ॥
सात पांच मिल खेलन निकसी कोकिलाबन की डगर ।
'परमानन्द प्रभु' की छबि निरखत मोहि रहो ब्रज सगर ॥

[२९९] रा

चले बन गोचारन सब गोप ।
प्रात समै सर कमल खण्ड तें मानों मधुपन के ओप ॥
स्याम पीत पट राम नीलपट जानु काछे[२] सिसु पुंज ।
महुवर बेनु बखान बांसुरी जनु साजे अलि गुंज ॥
तिन में नंद नंदन की सोभा ज्यों उडुगन मँह चन्द ।
'परमानन्द' जसोदा गृह प्रकटे आनन्दकन्द ॥

[३००] रा

नीके नीके गोपाल माई चलत देखियत नीके ।
मध्य गोपाल मंडली बल मोहन कांधे धर लिये छींके ॥
बछरा हांक किये सब आगे सेली आप बनाये ।
मानों कमल सरोवर तजि के मधुप उनींदे आये ॥
बृन्दावन प्रवेस अघ मर्दन बालक लीला भावै ।
प्रेम समुद्र लोक त्रय पावन जन 'परमानन्द' गावै ॥

१ मोहि
२ पाछे

प्रबोधिनी के पद

[३०१] राग बिलावल

लाल कौ सिंगार करावत मैया ।
करि उबटनो अन्हवावें रुचि सों हरि हलधर दोऊ भैया ।।
हँसुली हेम हमेल अरु दुलरी बन माला उर पहरैया ।
'परमानन्ददास' को जीवन जसुमति लेत बलैया ।।

[३०२] राग कान्हरो

जागे जग जीवन जग नायक ।
कियो प्रबोध देवगन जबहीं उठे जगत सुखदायक ।।
जा प्रभु की प्रभुताई भारी सिव ब्रह्मादिक पायक ।
कमला दासी पांय पलोटै निपुन निगम से गायक ।।
जहाँ जहाँ भीर परी भक्तन कौं तहँ तहँ होत सहायक ।
'परमानन्द प्रभु' भक्त बछल हरि जिनके मन बच कायक ।।

[३०३] राग कान्हरो

देव दिवारी सुभ एकादसी हरि प्रबोध कीजे हो आज ।
निद्रा तजो उठो हे गोविन्द सकल बिस्व हित काज ।।
घर घर मंगल होत सबन के ठौर ठौर गावत ब्रज नारी ।।
'परमानन्ददास' को ठाकुर भक्त हेत लीला अवतारी ।।

[३०४] राग कान्हरो

देव जगावत जसोदा रानी बहु उपहार पूजा कै करिकै ।
इच्छु दण्ड मंडप पोहपन के चौक चहुं दिसि दीवा धरिकै ।।
ताल पखावज भेरि संख धुनि गावत निसि मिलि जागरन करिकै ।
धूप दीप करि भोग लगावत दै पोहपाबलि अंजलि भरिकै ।।
घृत पकवान रुचिर परम रुचि बिजन सगरे सुधरे सरकै ।
'परमानन्द' जगदीस बिराजैं गोकुलनाथ सुमरि पद हरिकै ।।

[३०५] राग कान्ह

आनन्द आज कुँज के दुवार ।
सखी सकल मिलि मंगल गावत नयनन निरखत नंद दुलार ।
नव नव बसन नवल नव भूषन पौढ़ाये सब सुभग सिंगार
मंडप मध्य बैठि मन मोहन संग लिये श्री राधा नार ।।
दीपमालिका रची चहुँ दिसि जगमगात अंग जोति अपार ।
वारि आरती जुगल रूप पर 'परमानन्ददास' बलिहार ।

[३०६] राग बिलाव

आज ललन की होति सगाई ।
आवोरी गोपीजन मिलिकै गावो मंगलचार बधाई ।।
चोटी चुपुरि गुहों सुत तेरी छाँड़ो चंचलताई ।
वृषभान गोप टीका दै पठयौ सुन्दर जाति कन्हाई ।।
जो तुमकों या भाँति देखिकें करै कहा बड़ाई ।
पहरि बसन आभूषन सुन्दर उनको देउँ दिखाई ।।
नख सिख अंग सिंगार महर मनि मोतिन की माला पहराई ।
बैठे आप रतन चौकी पर नर नारिन की भीर सुहाई ।।
विप्र प्रवीन तिलक कर मस्तक अच्छत चांप लियो अपनाई ।
बाजत ढोल भेरि और महुवर नौबत धुनि घनघोर बजाई ।।
फूली फिरत जसोदा रानी वारि कुँवर पर बसन लुटाई ।
'परमानन्द' नंद के आँगन अमर गन पोहोपन की झर लाई ।।

[३०७] राग सारं

ब्याह की बात चलावत मैया ।
बरसाने वृषभान्द गोप कें लाल की भई सगैया ।।
ग्वाल बाल सब बरात चलेंगे और चलें बल भैया ।
'परमानन्द' नंद के आनन्द हंसि हँसि लेत बलैया ।।

[३०८] राग सारंग

छाँड़ो मेरे लाल अजहूँ लरकाई ।
यहै काल देखिकें तोकों ब्याह की बात चलावन आई ।।
डरि हैं सास सुसर चोरी तें सुन हँसि हैं दुल्हैया सुहाई ।
उबटि न्हवाय गूँथि चुटीया बल देख भलो बर करिहैं बड़ाई ।।
मात बचन सुन बिहँसि बोले दे भई बड़ी बेर कालि तोताँई ।
जब सोवै, काल तब ह्वै है नयन मूँदत, पौढ़े कन्हाई ।।
उठि कह्यौ भोर भयो अँगुली दै मुदित मन लखि आतुरताई ।
बिहँसे गोपाल जान 'परमानन्द' सकुच चले जननी उरभाई।

[३०९] राग सारंग

ब्याह की बात चलावन आये ।
अपने अपने गाम तें ग्वालिनि कहि कहि दूत पठाये ।।
नन्द महर मिलि समधानो कीनों देख जसोदा आनंद आये ।
कब देखोंगो दुलह दुलहनी अपने कुल के देव मनाये ।।
यह सुनिकैं हरषे संकर्षण प्रभु कहुंक प्रभुता जनाये ।
'परमानन्द' मैया सौपति छिन भूषन बसन बनाये ।।

[३१०] राग सारंग

पुरवो साध नन्द मेरे मन की ।
करो ब्याह देखों इन आँखिन दुलहिनी अपने ललन की ।।
ब्रजपुर माँहि बिचारो कन्या काहू गोप सजन की ।
रूप अनूप सकल गुन सुन्दर जोरी सामल तन की ।।
कब देखोंगी मौर धरें सिर ऊपर पनरथ ढाँप बदन की ।
अति उतंग नीली घोरी चढ़ि और छवि चंवर ढुरन की ।।
राई लौन उतार दुहूकर लगे दृष्टि न दुरजन की ।
'परमानंद' करे न्योछावर सोभा रूप सदन की ।।

[३११] राग सारंग

बिनती सुनहु जसोदा रानी ।
अकसमात हमारी गैयां तुम्हरे सुत पतियानी ।।
आज[1] सांझ बन तें चरिआई हरि बिछुरत अकुलानी ।
कैसेहि भाँति न देति दुहाई[2] केतिक रैन बिहानी ।।
मैं चलि आइ जमाइ दियौ अब दूध बृथा भयौ जानी ।
कैसें कै बोली नन्दराय सों इतनी कहति सँकानी ।।
री तू बेगि जाय लै मदन गोपालै नन्द घरनि सुख मानी ।
'परमानन्द' प्रभु चले संग उठि कापे परत बखानी ।।

ब्याह के पद

[३१२] राग सूहा व आसावरी

मैया मोहि ऐसी दुलहिन भावै ।
जैसी यह काहू की डिठौनियाँ रुनक झुनक घर आवे ।।
कर पकवान रसाल रसोई अपने कर लै मोहि जिमावे ।
कर अंचल पट ओट बाबा कों ठाड़ी ब्यार ढुरावै ।।
मोहि उठाय गोद बैठारै कर मनुहार मनावै ।
अहो मेरे लाल कहो बाबा सों तेरौ ब्याह करावै ।।
नंदराय नंदरानी हिल-मिल सुख समुद्र बढ़ावै ।
'परमानन्द' प्रभु की बातें सुन आनंद उर न समावै ।।

प्रस्तुत पद राधा माधव के प्रथम और प्रगाढ़ स्नेह का परिचायक है ।
—संपादक

१ अब कु

२ दुही नही जाती [अर्थ]

[३१३] राग सारंग

अपने लाल को ब्याह करूंगो बड़े गोप की बेटी।
जासों हमरो जतिया चारो भोजन भेटा भेटी।।
मात जसोदा लाड़ लड़ावे अंग सिंगार करावे।
कस्तूरी को तिलक बनावें चन्दन पीत चढ़ावे।।
कह री मैया कब लावेगो मोकू है दुलहिनीया नीकी।
परोस परोस के मोहि खवावे रोटी चुपरी घी की।।
सब सखा बरात चलेंगे हौंऽब चढ़िगो घोरी।
'जन परमानन्द' पान खवावे बीरा राखे भर झोरी।।

[३१४] राग नट

सजनी री गावो मंगलचार।
चिरजीवो वृषभान नंदिनी दुल्है नन्दकुमार।।
मोहन के सिर मुकुट बिराजत राधा के उर हार।
नीलाम्बर पीताम्बर की छबि सोभा अमित अपार।।
मंडप छायो देखि बरसाने बैठे नंद उदार।
भामर लेत प्रिया और प्रीतम तन मन दीजे वार।।
यह जोरी अविचल स्री बृन्दावन क्रीडत करत विहार।
'परमानन्द' मनोरथ पूरन भक्तन प्रान आधार।।

[३१५] राग कान्हरो

सोहै सीस सुहावनो दिन दूल्हे तेरे।
मनि मोतिन को सेहरा सोहै बसियो मन मेरे।।
मुख पून्यो को चन्दा है मुक्ताहल तारे।
उनके नयन चकोर है सब देखन हारे।।
पाग बने प्यारी परम आगरी बन आई।
रूप नागरी गोपी ए सब देखन आई।।
दुलहनि रैन सुहाग की दूलह वर पायो।
नंदलाल को सेहरा 'परमानन्द' प्रभु गायो।।

[३१६] राग कान्ह

मांगे सुवासिन द्वार रुकाई ।
झगरत अरत करत कौतूहल चिरजीवो तेरा कुंवर कन्हाई ।
चिरजीवो वृषभान नन्दिनी रूप सील गुन सागर माई ।
निरख निरख मुख जीऊँ सजनी यहै नेग कह संपत जाई ।।
दीनी चूनरि धौरी पियरी और तिनकौं सारी पहिराई ।
फिर सबहिन को महर जसोदा मेवा गोद भराई ।।
आरती कर लिये रतन चौक में बैठारे सुन्दर सुखदाई ।
'परमानंद' आनन्द नन्द के भाग बड़े घर नवनिधि आई ।।

[३१७] राग कान्ह

आज बने सखी नंद कुमार ।
वाम भाग वृषभान नंदिनी ललितादिक गावैं सिंघ द्वार ।।
कंचन थार लिये कर मुक्ताफल अरु फूलन के हार ।
रोरी केसर तिलक बिराजत करत आरती हरख अपार ।।
यह जोरी अविचल श्री वृन्दावन देत असीस सकल ब्रज नार ।
कुंज महल में राजत दोऊ 'परमानन्ददास' बलिहार ।।

[३१८] राग केद

कुंज भवन में मंगलचार *
नव दुलहिन वृषभान नन्दिनी दूल्हे श्री वृजराज कुमार ।।
नव नव पुष्प कुंज के तोरन नव पल्लव की बन्दनवार ।
चौकी रची कदम खंडी महँ सघन लता मंडप बिस्तार ।।
करत वेद धुनि विप्र मधुप गन कोकिल पिय गावत अनुहार ।
दीने भूरि 'दास परमानंद' प्रेम भक्ति रतनन के हार ।।

* प्रस्तुत पद परमानंददास जी के नाम से प्राचीन प्रतियों में मिलता है किन्तु परीक्षक को इसके विषय में संदेह है । देखो—कौ० सं० पृ० ११५ —संपादक

भोगी संक्रान्ति के पद

[३१९] राग मालकोस

भोगी के दिन अभ्यंग स्नान करि साज सिंगार स्याम सुभगतन ।
पुनि फूलितिलवा भोग धरिकैं परम सुंदर आरोगावत सब निजजन ।।
श्री घनस्याम मनोहर मूरत करत बिहार नित ब्रज बृन्दावन ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर करत रंग निस दिन ।।

मकर संक्रान्ति के पद

[३२०] राग आसावरी

भोगी भोग करत सब रस को ।
नन्द नन्दन जसोदा कौ जीवन गोपी जन पति सरबस को ।।
तिल भरि संग तजत नहीं निज जन गान करत मनमोहन जस को ।
तिल तिल भोग धरत मन भावत 'परमानंद' सुख लै यह रस को ।।

[३२१] राग आसावरी

भयो नंदराय के घर खिच ।*
सब गोकुल के लरकन के संग बैठे हैं आये बिच ।।
परोसि थार धरे लै आगे सद माखन घी खिच[1] ।
'परमानंद 'प्रभु भोजन कीनौ अति रुचि मांग्यो इछ ।।

[३२२] राग भूपाली

आज भूख अति लागी रे बाबा ।**
भोजन भयौ अघानो नीकौ तृपति होय रुचि आगी ।
अचवन कों यमुनोदक लैके आई परम सुहागी ।
भोजन भन्त सीत अति 'परमानंद' दीजिये मेरी आँगी ।।

---

* यह पद मकर संक्रान्ति के दिन राजभोग के समय गाया जाता है । संपा०

१ छछ ।

** यह पद संक्रान्ति की संध्या का है ।

[३२३] राग सारंग

गहै रहै भामिनी की बाँह ।
मदन गोपाल चतुर चिंतामनि जानत हो मन[1] माँह ।।
ठाढ़े बात करत राधा सौं, तहाँ जसोदा आई ।
झूठो मिस करि रोवन लागे इन मेरी गैद चुराई ।।
कौन टेव तेरे ढोटा की बरजत काहे न माई ।
या गोकुल में स्याम मनोहर उलटी चाल चलाई ।।
सुनि सुत बचन तबै स्यामा के महरि चली मुसकाई ।
'परमानन्द' अटपटी हरि की सबै बात मन भाई ।।

[३२४] राग सारंग

देखो कौन मन राखि सकै री ।
वह मुसकान बहै चारु बिलोकनि अवलोकत दोऊ नैन छकैरी ।।
जिनको अनुभव कबहूँ नाहिन ते घर बैठे न्यास बकैरी ।
जिन न सुनि मुरली वहै कानन ते पसु पच्छी मृग न भकैरी ।।
'परमानंददास' प्रभु यहै अवस्था जे हरि आप निरख अटकैरी ।
बिनु देखे अब रह्यो न परै हो सुन्दर बदन कुटिल अलकैरी ।।

[३२५] राग बिहाग

सुन्दर नंद नंदन जो पाऊँ ।
द्वार कपाट बनाय जतन के नीके माखन दूध खवाऊँ ।।
अति विचित्र सुन्दर मुख निरखों करि मनुहार बनाऊँ ।
'परमानन्द' प्रभु या जाडे कौ देस निकासो दिवाऊँ ।।

---

१ मन ।

[३२६] राग बिहाग

माई मोहें मोहन लागै प्यारो ।
जब देखों तब नैनन निरखों इन अँखियन कौ तारो ॥
कंपित तन[१] सीत अति धूजत थरथरात तन भारो ।
'परमानन्द' प्रभु या जाड़े कौ कीजिये मुँह कारो ॥

[३२७]

मदन मन कीनो री मतवारो ।
नागर नवल प्रेम रस बस कीनों नंद दुलारौ ॥
कैधों प्रीतम पराये भवन मँह करत हैं नित ढारौ ।
आजु रैनि अकेली साई सीत दहत तन भारौ ॥
प्रथम कियो कर जोरि मिलन हित पायो प्रान पियारौ ।
'परमानन्द' प्रभु या जाडे को दीजै देस निकारौ ॥

[३२८] राग मालकोस

मदन मन कीनो री मतवारो ।
नागरी नवल प्रेम रस बस कीनो नंद दुलारो ॥
कैधो प्रीतम पराये भवन में करत रहत नित ढारो ।
आजु रैन अकेली सोयी सीत दहत तन भारो ॥
प्रथम कियो बर जोरी मिलन हित पायो प्रान पियारो ।
परमानन्द' प्रभु या जाड़े कौं दीजे देस निकारो ॥

---

१ शीत का व्यतीत होना इन पदों मे ध्वनित होता है । प्रस्तुत पद से श्री परीख जी परमानन्ददास जी की शारीरिक स्थूलता का अनुमान लगाते हैं : इससे कवि के आत्म परिचय की ओर भी संकेत मिलता है । —सम्पादक

[३२९] राग [illegible]

सिखवत केलिक रात गई।
चंद उदै अरु दीसन लाग्यौ तू नहीं और भई।
सुनि हो मुगध कह्यौ नहिं मानत जानी हिरदे कई॥
'परमानंद प्रभु' कौ तू नहिं मिलवत तो प्रतिकूल दई।

[३३०] राग बि[illegible]

रति रन जीतेइ आवत मदन फौज रस लूटे।
सिथिल अंग मुख स्रमित जल मोतिन हार लट टूटे।
पेच पाग के रसिक पगे सब कटि पट फेंट बँधे अध छूटे॥
लटकत केस जुलफ घुंघरारी बोलत सबद हलाहल कूटे।
कौन जिमा ऐसी तुम पाई जहँ भये अधरस छूटे
'परमानन्द' स्याम जिय सकुचे प्यारी फंद परी उर
के भेद सब खूटे॥

बसंत पंचमी

[३३१]

आज मदन महोच्छव राधा।
मदन गोपाल बसन्त खेलत है नागर रूप अगाधा॥
तिथि बुधवार पंचमी मंगल रितु कुसुमाकर आई।
जगत विमोहन मकरध्वज की जहाँ तहाँ फिरि दुहाई॥
मन्मथ राज सिंघासन बैठे तिलक पितामह दीनों।
छत्र चँवर तूनीर संख धुनि विकट चाप कर लीनों॥
चली सखी तहाँ खेलन जैये हरि उपजावत प्रीति।
'परमानन्द दास' को ठाकुर जानत है सब रीति॥

[३३२] राग देवगांधार

ार के पद

आज माई मोहन खेलत होरी।
नौतन बेसु[1] काछि ठाडे भये संग राधिका गोरी ॥
अपने धाम आई देखन कों जुरि[2] जुरि नवल किसोरी।
चोवा चंदन और कुंकमा मुख मांडत लै लै रोरी ॥
छुटी लाज तब तन न संभारत[3] अति विचित्र बनी जोरी।
मच्यौ खेल रंग भयौ भारी या उपमा कौ को री ॥
देत असीस सकल[4] ब्रज बनिता अंग अंग सब मोरी।
'परमानन्द' प्रभु प्यारी की छवि पर गिरधर देत अंकोरी ॥

[३३३] राग जैतश्री

नंद कुंवर खेलत राधा संग यमुना पुलिन सरस रंग होरी।
नव घनश्याम मनोहर राजत स्याम सुभग तन दामिनी गोरी ॥
केसरि के रंग कलसभरे बहु संग सखा हलधर की जोरी।
हाथन लिये कनक पिचकाई छिरकी ब्रज की नवल किसोरी ॥
चारु अबीर उड़ावत नाचत कटिसों बांधि गुलाल की झोरी।
मगन भई क्रोड़त सब सुन्दरी प्रेम समुद्र तरंग झकोरी ॥
बाजत चंग मृदंग अघोटी पटह झांझ झालर सिर घोरी।
ताल रबाब मुरलिका बीना मधुर सबद उघटत धुनि थोरी।
अति अनुराग बढ्यो तिहि औसर कुल लज्जा मरजादा तोरी ॥
मदन गुपाल लाल संग बिहरत देह दसा भूली भई बौरी।
एक कहत फैंटा फगुवा को एक करत ठाड़ोजु ठठोरी।
एकजु आँखि आंजि कें भाजी एक बिलोकि हँसी मुख मोरी ॥

---

[1] भेष।
[2] श्री वृखभान किशोरी।
[3] सभारयो।
[4] चली।

[२३३]

एकन लई छिनाय मुरलिका एक देति गारी मोहन कों सौरी
एक फुलेल अरगजा चोवा कुंकुम रस गगरी सिर ढोरी।
बिबिध भांति फूल्यो वृन्दावन कूजत कीर षटपद पिक मोरी
निरखत नेह भरी अँखियाँसों ज्यों निसचंद चकोरी॥
थके देव किन्नर मुनिगन सब मन्मथ निज मन गयौ लज्यौरी
'परमानन्ददास' या सुखकों जाचत विमल मुक्तिपद छोरी।

[२३४] राग जैत श्री

रितु वसंत के आगमन प्रचुर मदन कौ ओर।
राधा गोरी सुन्दरी सुन्दर नन्द किसोर॥
केलि रस झूमकरारे झूमकरा॥ टेक
झुंडन मिलि गावत चली झूमत नंद के द्वार।
नृत्त करें ब्रज सुन्दरी मोहि लियौ मन मार॥ केलिरस०
विपिन गली सुन्दर बनी ललित लवंगन मेलि।
अम्ब मनोहर मौरियौ करन केतुकी बेलि॥ केलिरस०
गोकुल ग्राम सुहावनों वृन्दावन सों ठौर।
खेलहि ग्वालिन ग्वारिया रसिक कान्ह सिरमौर॥ केलिरस०
इक गोरी इक साँवरी एक चंद बदनी सोहै बाल।
एकन कुंडल जगमगे एकन तिलक सुभाल॥ केलिरस०
एकन चोली अध खुली एक रही बंद छूटि।
एक अलकावलि उर धरे एक रही लटछूटि॥ केलिरस०
एकन चीर जो सखि भरे एकन लटकत लूम।
एक अधर रस घूंट ही एक रही कंठ झूम॥ केलिरस०
ताल पखावज बाजे ही बीना बेनु रसाल।
महुवरी चंग जो बाँसुरी बजावत गिरधर लाल॥ केलिरस०
चोबा चंदन कुंकमा उठत गुलाल अबीर।
सुर नर मुनिमन मानियों व्योम विमानन भीर॥ केलिरस०
सुरत समागम रमि रहो मनहु महाराज मंत।
'परमानन्द' प्रभु स्रीपति रसिक राधिका कंत॥ केलिरस०

[३३५] राग काफी

तुम आवो री तुम आवो ।
मोहन जू कौं गारी सुनावौ ।।
हरि कारो री हरि कारो ।
यह है बापन बिच वारौ ।।
हरि नटवा री हरि नटवा ।
राधा जू के आगे लटुवा ।।
हरि मधुकर री हरि मधुकर ।
रस चाखत डोलत घर घर ।।
हरि खंजन री हरि खंजन ।
राधा जू के मन कौ रंजन ।।
हरि रंजन री हरि रंजन ।
ललिता लै आई अंजन ।।
हरि नागर री हरि नागर ।
जाकौ बाबा नंद उजागर ।।
हम जानें री हम जानें ।
राधा गहि मोहन आने ।।
मुख माँडौ री मुख माँडौ ।
हरि हाहा खाय तौ छाँडौ ।।
हम भेरे हैं री हम भेरे ।
काहू ते नैंक न डरे हैं ।।
हरि होरी हो हरि होरी ।
स्यामा जू केसरि ढोरी ।।
हरि भावै री हरि भावै ।
राधा मन मोद बढ़ावै ।।
रंग भीनों री रंग भीनों ।
राधा मोहन बस कीनों ।।

हरि प्यारो री हरि प्यारो ।
राधा नयन को तारो ॥
हम लैहैं री हम लैहैं ।
फगुवा लै गारी न देहैं ॥
यह जस 'परमानन्द' गावै ।
कछु रहसि बधाई पावै ॥

त्सर उत्सव

[३३६] राग सारंग

चैत्रमास संवत्सर परिवा बरस प्रवेस भयौ है आज।
कुंज महल बैठे पिय प्यारी लाल तन हेरैं नौतन साज॥
आपु ही कुसुमहार गुहि लीने क्रीड़ा करत लाल मन भावत।
बीरी देत 'दास परमानंद' हरखि निरखि जस गावत॥

रामनौमी की बधाई के पद

[३३७] राग बिलाबल

नौमी के दिन नौबत बाजे कौसल्या सुत जायौ।
सात घरी दिन उदित भयो है सब सखियन मंगल गायौ॥
कांप्यो सिंधु कंगूरा ढरियो लंका आगम जनायो।
सब लंका में सोक[1] पर्यो है रामदेव[2] गृह आयो॥
दसरथ मन आनन्द भयो है बंस हमारे गृह आयो।
विप्र बुलाय साधना कीनी अभै[3] भंडार लुटायो॥
कंचन के बहु कलस बनाये मोतिन चौक पुराये।
घरी एक निगम सोच हिय भाख्यौ रामचंद्र गृह आये॥
गृह गृहते सब सखीं बुलाईं आनंद मंगल गाये।
दसरथ राय दोऊ आँगन में आदर करि बैठाये॥
दसरथ उठ बजार पधारे सारी सुरंग बसायो॥
जो जाके जैसो मन भायो तैसो ताहि पहरायो॥
पाट पटंबर खासा झीनों जैसौ नाहिं मन भायौ।
'परमानन्ददास' कहां लौं बरनौं तीन लोक जस छायो॥

---

[1] सोर
[2] राजदेव
[3] अछे

[३३८] राग

माई प्रकट भये हैं राम।
हत्या तीन गई दशरथ की सुनत मनोहर नाम।।
बन्दीजन सब कौतुक भूले राघव जनम निधान।
हरखे लोग सबै भुवपुर के जुवतीजन करत हैं गान।।
जय जयकार भयो बसुधा पर संतन मन अभिराम।
'परमानन्द दास' बलिहारी चरन कमल बिस्राम।।

[३३९] राग

आज अयोध्या मंगल चार।
मंगल कलस माल अरु तोरन बंदीजन गावत सब द्वार।।
दसरथ कौसल्या कैकेई बैठे आये मंदिर के द्वार।
रघुपति भरत सत्रुघन लछमन बैठे चारों धीर उदार।।
इक नाचत इक करत कोलाहल पायन नूपुर की झनकार।
'परमानन्ददास' मन मोहन प्रगटे असुर संघार।।

[३४०]. राग स

आज सखी रघुनन्दन जाये।
सुन्दर रूप नयन भर देखौं गावत मंगलचार बधाये।।
परम कौतूहल नगर अयोध्या घर घर मोतिन चौक पुराये।
द्वार द्वार मारग गरियारे तोरन कंचन कलस धराये।।
पूरन सकल सनातन कहियत जे हरि वेद पुरानन गाये।
महाभाग्य राजा दसरथ कौ जिहिंघर रघुपति जनमही आये।।
बृह्मघोष मिलि करत बेद धुनि जय जय दुंदभि बजाये।
गुनि गंधर्व चारन जस बोले भुवन चतुर्दस आनन्द पाये।।
पान फूल फल चोबाचंदन बहु उपहार लोग लै आये।
'परमानन्द' प्रभु मनमोहन कौं कौसल्या जननी गोद खिलाये।

[३४१] राग सारंग

हमारे मदन गोपाल हैं राम ।
धनुष बान बिमल बेनुकर पीत बसन और तन घनस्याम ।।
अपनी भुज जिन जलनिधि बाँध्यौ रास रच्यौ जिन कोटिक काम
दससिर हति जिन असुर संघारे गोवर्धन राख्यौ कर बाम ।।
वे रघुवर यह जदुवर मोहन लीला ललित विमल बहुनाम ।
'परमानन्द' प्रभु भेद रहित हरि संतन मिलि गावत गुन ग्राम ।।

[३४२] राग सारंग

आज अयोध्या प्रगटे राम ।
दसरथ बंस उदै कुल दीपक सिव बिरंचि मुनि भयौ बिस्राम ।।
घर घर तोरन बंदन माला मोतिन चौक पुर्यौ निजधाम ।
'परमानन्ददास' तेहि अवसर बन्दी जन के पूरन[१] काम ।।

नौमी पलना के पद

[३४३] राग बिलावल

श्री रघुनाथ पालना झूलें कौसल्या गुन गावें ।
बल अवतार देव मुनि वंदित राजिव लोचन भावें ।।
राजा दसरथ पलना गढ़ायो नव चंदन को साज ।
हीरा जटित पाटकी डोरी रत्न जराये बाग ।।
ऐते चरन कमल कर अति नील जलद तन सौहै ।
मृगमद तिलक अलक घुंघरारी मृदुल हास मन मोहै ।।
घर घर उत्सव चारू अयोध्या राघव जनम निवास ।
गावत सुनत लोक त्रै पावन बलि 'परमानन्ददास' ।।

---

[१] पूरत

श्री आचार्य जी की बधाई

[पलना के पद]

[३४४] राग आ

स्री बल्लभ लाल खेलत मध्य आँगन ।
पहले प्रगट नंद जसोदा गोपिन कों रस देतन ।
अब भे प्रकट स्री लक्ष्मण नन्दन स्री भागवत रस प्रकटन ।
'परमानन्द दास' प्रभु की छबि सुख कबिजन नहीं कहतन ।।

श्री नृसिंह चतुर्दशी के पद

[३४५] राग बिल

गोविंद तिहारो स्वरूप निगम नेति नेति गावैं ।
भगत हेत स्याम सुन्दर देह धरें आवैं ।।
योगी मुनि ग्यानी ध्यानी सुपने नहीं पावैं ।
नंद घरनि बाँधि बाँधि कपि ज्यौं लै नचावैं ।।
गोपी जन प्रेम आतुर संग लागी बालैं बोलैं ।
मुरली के नाद सुनत गृह तजि बनडोलैं ।।
स्रुतिसुमृति बेद पुरान कहत मुनि बिचारी ।
'परमानन्द' प्रेम कथा सबहिन ते न्यारी ।।

[३४६] राग बिलावल

यह ब्रत माधौ प्रथम लियौ ।
जो मेरे भगतन को दुखवै ताकौं फारौं नखन हियौ ।
जो भगतन सों बैर करत है परमेसुरसों बैर करे ।
रखवारी कौं चक्र सुदर्सन मेरौ सदा फिरे ।।
पराधीन हूं अपने भगत को जा कारन अवतार धर्यो ।
यहजु कही हरि मुनिजन आगें अभिमानी को गर्व हर्यो ।।
भजते भजौं तजौं नहिं कबहूँ पारथप्रति स्रीपति यों भाखी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर अखिल भुवन सब साखी ।।

[३४७] राग कान्हरो

जाकों तुम अंगीकार कियो ।
तिन के कोटि बिघन हरि टारे अभयदान[1] भगतन दियो ॥
बहु सनमान[2] दियो प्रहलादै सबही निसंक जियो ।
निकसे खंभ फारके[3] नरहरि आपुन राखि लियो ॥
दुर्बासा अंबरीष सतायौ सो पुनि सरन गयो ।
परतिग्या राखी मन[4] मोहन पुनि उनही पै पठयो[5] ॥
मृतक भये हरि सबै जिवाये दृष्टिहू अमृत पियौ ।
'परमानन्द' भक्त बस केसव उपमा कौन बियौ ॥

[३४८] राग कान्हरो

हरि राखै ताहि डर काको ।
महापुरुष समरथ कमलापति नरहरी से ईस है, जाको ॥
अनेक साधना करि करि देखीं निस्फल भई खिस्याय रह्यौ ।
ता बालक कौ बार न बाँकौ हरि की सरन प्रह्लाद गयो ॥
हिरनकसिपु को उदर बिदार्यो अभयराज प्रहलादै दीनों ।
'परमानंद' दयाल दयानिधि अपने भगत कौ नीकौ कीनों ॥

---

१ प्रताप ।

२ सासना ।

३ मध्य ।

४ मदन ।

५ पठै दियो ।

[३४६] राग कान्हरो

श्री नरसिंह भगत भयभंजन जनरंजन मन सुखकारी।
भूत प्रेत पिसाच डाकिनी जंत्र भव भय हारी॥
सबै मंत्रते अधिक नाम जन रहत निरंतर उरधारी।
निज जन सबद सुनत आनंदित गिरि गये गर्भ दनुज नारी॥
कोटिक काल दुरासद बिघनहि महाकाल को काल सँघारी।
श्री नरसिंह चरन पंकज रज 'जन परमानन्द' बलिहारी॥

[३५०] राग कान्हरो

जय जय श्री नरसिंह हरी।
जय जगदीस भगत भय मोचन खंभ फारि प्रकटे करुना करी॥
हिरनकसिपुकों नखन विदार्यो तिलक दियो प्रह्लाद अभयसिर।
'परमानंददास' को ठाकुर नाम लेत सब पाप जात जर॥

———

दात् स्वामिनी जी के आसक्ति वचन

[३५१] राग सारंग

तुमहि जु चाहति काननि डोली ।
देखि गोपाल अवस्था मेरी स्रम जल भीजी चोली ।।
हौं अपने गृह काज करत ही वेनु व्याज कत बोली ।
तुम अटपटे मनोहर नागर हम अहीर मति भोरी ।।
ऐसी बहुरि करहु जिन बलि जाऊँ अरु ओडति हौं ओली ।
'परमानन्द' प्रभु प्रेम जानि कै तमकि कंचुकी खोली ।।

[३५२] राग आसावरी

गोपाल तेरी मुरली हौं मारी ।
सबद बान बेधी उर अंतर नंद किसोर मुरारी ।।
कहति राधिका सुनि मन[१] मोहन तुम्हरी दासिन चेरी ।
रूप निधान स्याम घन सुन्दर या बंदसि परवारी ।।
रह्यौ न परै कनक मंदिर में आई बनहु सवारी ।।
'परमानन्द स्वामी' सुख कारन सही लोक की गारी ।।

[३५३] राग केदारा

गोविन्द ग्वालिन ठगौरी लाई ।
बंसी बट जमुना के तट मुरली मधुर बजाई ।।
रह्यौ न परै देखे बिनु मोहन अलप कलप सम जाई ।
निस दिन गोहन लागी डोलै लाज सबै बिसराई ।।
उठत बैठत सोवत जागत जपत कन्हाई कन्हाई ।
'परमानन्द स्वामी' मिलवै कौं और न कछू सुहाई ।।

---
[१] जग

[३५४] राग सारंग

आजु तुम ह्यांई रहो कान्हर प्यारे ।
निसि अंधियारी भवन दूरि है चल न सकत पाँ हारे ।।
तोरि पत्र की सेज बिछाऊँ या तरवर की छांह ।
नंद के लाल तुम से निकट देहुँगी उसीसे बाँह ।।
संग के सखा सब घर कौ बिदा करो हम तुम रहेंगे दोऊ
'परमानन्द प्रभु'मन राधा भावै अनख करो मतिकोऊ ।।

[३५५] राग बिलावल

तैं मेरी लाज गंवाई हौ बिखनौते ढोटा ।
देह बिदेही ह्वै गई मिटो घूंघट की ओटा ।।
कमल नयन तुम कुँवर हो हलधर ते छोटा ।
छैल छबीले रूप पै मैं भई लोटकपोटा ।।
स्री गोपाल तुम चतुर हौ हम मति की बोटा ।
'परमानंद' सोई जानि है जाहि प्रेम की चोटा ।।

[३५६] राग गौरी

पिय मुख देखत ही पै रहिये ।
नैननि कौ सुख कहत न आवै जा कारन सब सहिये ।।
सुनहु गोपाल लाल पाँइ लागों भलो पोच ले बहिये ।
हौं आसक्त भई या रूपै बड़े भाग तैं लहिये ।।
तुम बहु नायक चतुर सिरोमनि मेरो बाँह दृढ़ गहिये ।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन तुम ही निरबहिये ।।

[३५७] राग कानरो

तिहारे बदन के हौं रूप राची ।
आऊ गोपाल खेलौ मेरे आँगन इहि मिस लाल प्रीति कर साँची ।।
अब के दुराये क्यों दुरति है प्रगट भई सब गोकुल माँची ।
घर घर घोत मथन सबहिन के अकेलो मात जसोदा बाँची ।।
ऐसी करि सुन्दर ब्रजनायक मरकत मनि कंचन ज्यों पांची ।
'परमानंद प्रभु' लोग हँसन दे हौंतो दृढ़ नाहिन मति कांची ।।

[३५८] राग कान्हरो

माधौ भली जु करति मेरे द्वारे कै पाऊँ धारत ।
साँझ संवारे देखत हौं हीयो भरि प्रीति के भूखे मेरे लोचन आरत ।।
बोलत यामैं नागरता नित प्रति उठि चित लगति विचारत ।
यह जु भली गृहपति नहीं जानत प्रीतम मिलन हित गोसुत चारत ।
कुनित बेनु सुनि खग मृग मोहे मुनि मनसा समाधि टारत ।
'परमानन्द प्रभु' चलत ललित गति बासर जात ब्रजताप निवारत ।

[३५९] राग कान्हरो

हौं रीझी तेरे दोऊ नैन ।
थकित भई हौं चल न सकति मारग एको गैन ।।
चलत छबीलो देखत छबीलो कमल छबीले बैन ।
'परमानंद प्रभु' गिरवर लाल छबीलो बोल छबीली सैन ।।

[३६०] राग सारंग

मदन गोपाल बलैये लेहौं ।
बृन्दा बिपिन तरनि तनया तट चलि ब्रजनाथ आलिगन देहौं ।।
सघन निकुंज सुखद रति आलय नव कुसुमनि की सेज बिछैहौं ।
त्रिगुन समीर पंथ पग बिहरत मिलि तुम संग सुरति सुख पैहों ।।
अपनी चौंप ते जब बोलहुगे तब गृह छाँडि अकेली ऐहों ।
'परमानंद' प्रभु चारु बदन को उचित उगार मुदित ह्वै खैहों ।।

[३६१] राग कानरो

कहति है राधिका अहीरि ।
आजु गोपाल हमारे आवहु न्योति जिवाऊँ खीरि ।।
बहुत प्रीति अंतर गति मेरे नैन ओट दुख पाऊँ ।
जानति हौं पिय कुंवर छैल कौ संग मिले जसुगाऊँ ।।
तुम्हरो कोऊ बिलगु नहीं मानै लरिकाई की बात ।
'परमानंद प्रभु' नित उठि आवहु भवन हमारे प्रात ।।

[३६२] राग सारंग

गुवालनि न्याय तजे गृह वास ।
कैसे धीरज रहे लाल मति देखहु कृष्न मुख हास ।।
मेघ स्याम तन नख सिख सुन्दर पहिरे पिंगल बास ।
चलत ललित गति जगत बिमोहन जानु दै सोमैके लास ।।
अंग अंग प्रति सखी ठगौरी काम विनोद बिलास ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर नागरि छाँड़ौ यह उपहास ।।

[३६३] राग सारंग

सुन्दर मुख की हौं बलि बलि जाऊँ ।
लावन निधि गुन निधि सोभा निधि देखि देखि जीवत सब गाऊँ ।
अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटत रस रुचिर ठाऊँ ।।
तामैं मृदु मुसिकानि हरत मन न्याय कहत कवि मोहन नाऊँ ।।
सखा अंस पर बाम बाहू धरै यह छवि की बिनु मोल बिकाऊँ ।
'परमानन्द' नंदनंदन कौ निरखि निरखि उर नैन सिराऊँ ।।

[३६४] राग कान्हरा

गोविंद प्रीति के बस कीनो ।
अन्तरगत ते स्याम मनोहर अनत जान नहिं दीनो ।।
नहि सहि सकत बिछुरनो पल भरि भलौ नेम लैं लीनो ।
'परमानन्द प्रभु' मोहन मूरति चरन कमल चित दीनो ।।

[३६५] राग धनाश्री

गुवालिनी ठाड़ीए मथति दह्यौ ।
या भेदै कोऊ नाहिन जानति नीके मरम लह्यौ ।।
उलटी रई मथनिया टेढ़ी बिनहि नेत कर चंचल ।
निरखि चंद मुख लोन्यो काढ़ति थकित नैन के अंचल ।।
सबै बिपरीत भई तिहि औसर मन गिरिधर हरि लीनो ।
'परमानंद' संभार न तन की यहै प्रीति को चीन्हो ।।

[३६६] राग सारंग

राधा माधौ सों रति बाढ़ी ।※
चितवति तहाँ जहां नंद नंदन सब तौ लियो मन काढी ।।
एक ओस जमुना मज्जन करि निकसि तीर भई ठाड़ी ।
मुकवति बार बार कर सिर धरि बनी है कंचुकी गाढ़ी ।।
स्याम नवल कनक चपंक तन नागरि मनसिज ठाड़ी ।
चाहति मिल्यो प्रान प्यारे कों 'परमानन्द' गुन आढ़ी ।।

[३६७] राग सारंग

अतिरति स्याम सुन्दर सों बाढ़ी ।
देखि सरूप गोपाल लाल कौ रही ठगी सी ठाढ़ी ।।
घर नहिं जाइ पंथ नहिं रेंगति चलनि बलनि गति थाकी ।
हरि ज्यों हरि को मगु जोवति काम मुगुधमति ताकी ।।
नैनहि नैन मिले मन अरुझ्यो यह नागरि वह नागर ।
'परमानंद' बीच ही बन में बात जु भई उजागर ।।

[३६८] राग कान्हरो

नव रंग कंचुकी तन गाढ़ी ।
नव रंग सुरंग चूनरी ओढ़े चंद्रबधू सी ठाढ़ी ।।
नवरंग मदन गोपाल लाल सौं प्रीति निरंतर बाढ़ी ।
स्याम तमाल लाल उर लपटी कनक लता सी आढ़ी ।।
सब अंग सुन्दर नवल किसोरी कोक कला गुन पाढ़ी ।
'परमानंद स्वामी' की जीवनि रस सागर मथि काढ़ी ।।

※ प्रस्तुत पदों में चरम आसक्ति की अवस्था द्रष्टव्य है । —संपादक

[३६९] राग कान्हरो

राधा रसिक गोपालहिं भावै ।
सब गुन निपुन नवल अंग सुंदरि प्रेम मुदित कोकिल सुर गावै
पहिर कसुंभी कटाव की चोली चंद्र बधू सी ठाढ़ी सोहै
सावन मास भूमि हरियारी मृग नयनी देखत मन मोहै
उपमा कहा देन को लाइक के हरि के बाही मृग लोचनि
'परमानंद प्रभु' प्रान बल्लभ चितवनि चारु काम सर मोचन

[३७०] राग कान्हरो

राधा माधौ बिनु क्यों रहै ।
एक स्याम सुन्दर के कारन और सबनि की निंदन सहै ।।
प्रथम भयो अनुराग दृष्टि ते इन मोहन मन हरयो ।
पिय के पाछे लागी डोलें बधुबरग सौं बैर बस्यो ।।
मन क्रम बचन और गति नाहीं बेद लोक की लाज तजी ।
'परमानंद' तब ते सुख पायौ जब ते यह अम्भोज भजी ।।

[३७१] राग कान्हरो

राधे बैठी तिलक संवारति ।
मृगनयनी कुसुमायुध के उर सुभग नंद सुत रूप विचारति ।।
दरपन हाथ सिंगार बनावत बासर जाम जुगति यों डारति ।
अन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सौं प्रथम समागम केलि संभारति ।।
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत लाल गोवर्धन धारी ।
'परमानंद स्वामी' के संगम रति रस मगन मुदित ब्रजनारी ।।

…यता सूचक पद

[३७२] राग सारंग

मोहन लई बातन लाई ।*
खेलन मिस आऊँ तेरे राखि दूध जमाई ॥
कनक बरन सुढार सुन्दर देखि मुरत मुसिकाई ।
रूप राधे स्याम सुन्दर नैन रहे अरुझाई ॥
गुपुत प्रीति जिन प्रगट कीजै लाल रहो अरगाई ।
'दास परमानंद' संग है नातर परती पांई[1] ॥

[३७३] राग कान्हरो

आवत हुती साँकरी खोरि ।
दोऊ हाथ पसार रहे हरि हौं बाल लजाइ रही मुख मोरि ॥
बालक सों अब कहा कहूँ सखी लीनो दोहनो हाथ मरोरि ।
ऐसो चपल हठीलो ढोटा भाज्यो बहुरि मटुकिया फोरि ॥
कहि प्रकार अटपटी बतियां अंगिया हार लियो मेरो तोरि ।
ताको साखि 'दास परमानन्द' इक टुक लाल लहै लखि कोरि ॥

[३७४] राग नट

चंद में देखो मोर मुकुट कौ ।*
टेढ़ी बातन छाँड़ि देहु अब सगरी यहाँ सों सटकौ ॥
देखें लोग चबाव करि है यह मेरे मन खटकौ ॥
जाने सास ननद बैरिन सब, बन में आजु न भटकौ ।
मोको पिय मिलेंगे तब ही मिस जमुना जल घट कौ ॥
मिले आपुन को झोड़[1] करैंगो प्रान है नागर नटकौ ॥
घर घर डोलत ग्वाल लरकरा नाहिन काहू के बटकौ ।
'परमानंद' लागी ना छूटै लाज कुँआँ में पटकौ ॥

---

* प्रस्तुत पद सख्यता सूचक है । —संपादक
'दास परमानन्द' संग लैचलु नांतर परति पाँइ ।
* प्रस्तुत पद में किशोर लीला के साथ बाल भाव की झलक है । —संपादक
१ छोड़

[३७५] राग सा॰

री अबला तेरे बलहि न और ।
बीधे मदन गोपाल महागज कुटिल कटाच्छ नयन की कोर
जमुना तीर तमाल लताबन फिरत निरंकुस नन्द किसोर
भौंह बिलास पास बस कीने मोहन अगह गहे ते जोर
ले राखे कुच बीच निरंतर प्रेम सृंखला सुदृढ़ की डोर
यहै उचित होय ब्रज सुन्दर 'परमानन्द' चपल चित चोर

[३७६] राग सा॰

आजु तेरी चूनरी अधिक बनी ।
बारंबार सराहत राधा परम गुनी ।।
जे भूषन पहिरत सो तैं सोहत चोली चारु तनी ।
मदन गोपाल लाल तैं मोहे जे त्रैलोक मनी ।।
अंग अंग बरनों कहा भामिनि राजत खुभी अनी ।
'परमानन्द स्वामी' की जीवनि जुवतिन रतन गनी । *

[३७७] राग बसन्त

बदन छबि मानौ चंद बियौ ।
मदन गोपाल लाल प्यारे को क्यों न जुड़ाइ हियो ।।
साथ रह्यौ स्रवो नैननि तें तब मुनि तप न कियो ।
जुग को आदि निचोड़ प्रेम जल बिधि जसु तिलक दियो ।।
अबलगि राखि दुराइ सबनि तैं खग नर सुरनि छियो ।
पूरन सकल प्रगट 'परमानंद' जग जस गाय जियो ।।

[३७८] राग बसन्त

आवति आनंद कंद दुलारी ।
बिधु बदनी मृग नयनी राधा दामोदर की प्यारी ।।
जाके रूप कहत नहिं आवै गुन विचित्र सुकुमारी ।
मानो कछु परचौ घन आखरि बिधना रच्यो संवारी ।।
प्रीति परस्पर ग्रंथि न छूटे ब्रजजन रहे बिचारी ।
'परमानंददास' बलिहारी मानो साँचे ढारी ।।

---

* प्रस्तुत पदों में स्वामिनी जी का स्वरूप वर्णन दृष्टव्य है । —संपादक

[३७६] राग बसंत

चलि राधे तोहि स्याम बुलावें ।
यह सुनि देखि बेनु मधुरे सुर तेरो नाम हि लैलै गावें ॥
देखौ बृन्दावन की सोभा ठौर ठौर द्रुम फूलें ।
कोकिल नाद सुनत मन आनन्द मिथुन बिहंगम झूलें ॥
उन्मद जोवन मदन कुलाहल यह औसर है नीको ।
'परमानन्द प्रभु' प्रथम समागम मिल्यो भावतो जीको ॥

[३८०] राग बसंत

खेलत मदन गोपाल बसंत ।
नागर नवल रसिक चूड़ामनि सब बिधि राधिका कंत ॥
नैन नैन प्रति चारु बिलोकी बदन बदन प्रति सुन्दर हास ।
अंग-अंग प्रति प्रीति निरंतर रति आगम सजाई विलास ॥
बाजत ताल मृदंग अघोरी डफ बांसुरी कोलाहल केलि ।
'परमानंद स्वामी' के संग मिलि नाचत गावत रंगरेलि ॥

[३८१] राग बसंत

खेलि खेलिहौ लडैती राधे हरि के संग बसंत ।
मदन गोपाल मनोहर मूरति मिल्यो भावतो कंत ॥
कौन पुन्य तप को फल भामिनि चरन कमल अनुराग ।
कमल नैन कमला को बल्लभ तोकूं मिल्यो सुहाग ॥
यह कालिन्दी यह बृन्दावन यह तरुवर की पाँति ।
'परमानंद स्वामी' संग क्रीडत द्यौस न जानै राति ॥

[३८२] राग बसंत

सहज प्रीति गोपालै भावै ।
मुख देखे सुख होय सखीरी प्रीतम नैनसों नैन मिलावैं ॥
सहज प्रीति कमल भौर मानै सहज प्रीति कमोदिनी चंद ।
सहज प्रीति कोकिला बंसते सहज प्रीति राधा नंद नंद ॥
सहज प्रीति चातक और स्वाँति सहज धरनी जल धारै ।
मन क्रम बचन 'दास परमानन्द' सहज प्रीति कृष्ण अवतारै ॥

[३८३] राग बसंत

राधे देखि बन के चैन ।
भृंग कोकिल सबद सुनि सुनि प्रमुदित नैन ॥
जहाँ बहत मन्द सुगन्ध सीतल भामिनी सुखसेन ।
कौन पुन्य अगाध को फल तू जो बिलसत ऐन[१] ॥
लाल गिरिधर मिल्यौ चाहत मोहन मधुरे बैन ।
'दास परमानंद' प्रभु हरि चारु पंकज नैन ॥

[३८४] राग बसंत

फिर फिर पछिताइगी हो राधा ।
कित तू कित हरि कित यह औसर करत प्रेम रस बाधा ॥
बहुरि गोपाल भेष कब धरिहैं कब इन कुंजन बसिहैं ।
यह जड़ता तेरे जिय उपजी चतुर नारि सुनि हंसिहैं ॥
रसिक गोपाल सुनत सुख उपजै आगम निगम पुकारैं ।
'परमानन्द स्वामी' पै आवत को यह नीति बिचारैं ॥

[३८५] राग बसंत

सुनि प्यारी कहैं लाल बिहारी खेलन चलो खेलैं ।
चन्दन बंदन और अरगजा कुंकुम रस लै पेलैं ॥
लिये अबीर अरगजा कुमकुम कुंज कुंज में खेलैं ।
तुम हमकौं हम तुमकौं छिरकैं रंग परस्पर झेलैं ॥
अंतरसुख मन ही मन हम जानैं मुसुकि छबीली छेलैं ।
'परमानंद' रसिक रस जानत बाढ़त रस की रेलैं ॥

१ ठीक ठीक, पूर्ण [अर्थ]

[३८६] राग सारंग

हरिजू के आवन की बलिहारी
बासर गति देखत हौ ठाढ़ी[१] प्रेम मुदित ब्रजनारी।
रितु बसन्त कुसुमित बन देखियत[२] मधुप बृन्द जस गावैं।
जे मुनि आय रहत बृन्दावन स्याम मनोहर भावैं।
नीको भेष बन्यौ[३] मन मोहन राजत[४] मनि उर हार।
मोर पच्छ सिर मुकुट बिराजत नंद कुमार उदार॥
घोष प्रबेस कियौ है संगमिलि[५] गोरज मंडित देह।
'परमानंद स्वामी' हित कारन जसुमति नंद सनेह॥

[३८७] राग वसंत

अब जनि मोहि मारो नंदनंदन हौं व्याकुल भई भारी।
कहत ही रहत, कह्यौ नहिं मानत देखे नये खिलारी॥
कालिह गुलाल पर्यो आँखिन मँह अजहूँ भई नहि सारी।
'परमानंद' नन्द के आँगन खेलत ब्रज की नारी॥

[३८८] राग सारंग

खेलत गिरिधर रंगमँगे रंग।
गोप सखा बनि बनि आए हैं हरि हलधर के संग॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ मुरली मुरज उपंग।
अपनी अपनी फेंटन भरि भरि लिये गुलाल सुरंग॥
पिचकाई नीके करि छिरकत गावत तान तरंग।
उत आई ब्रज बनिता बनि बनि मुक्ताहल भरि मंग[६]॥

१—ठाढ़ी हैं देखति
२—राजत
३—भेषनि चित्र
४—गुंजा
५—इह विधि
६—मांग [अर्थ]

अचरा उरसि फेंट कंचुकी कसि राजत उरज उतं
चोवा चंदन बन्दन[1] मलि मलि भरत भामते अंग
किसोर किसोरी दोऊ मिलि बिहरत इत रति उतहि अनं
'परमानंद' दोऊ मिलि बिलसत केलि कला जु निसंग

स्वामिनी जी की उत्कृष्टता

[२८९] राग

अराधन राधिका को नीको ।
जाके संग मिलि हरि खेलत जो ठाकुर सबही को ॥
पूरब नेम लियौ जो साँचो नंद नंदन पति करिहौं ।
देव लोक तजि धातृ आज्ञा गोकुल में अवतरिहौं ॥
जो वृषभान प्रबल गोपन में चंद बदनि तहँ आई ।
देखत रूप अनूप मनोहर मदन गोपालहिं भाई ॥
बाल दसा तें प्रीति निरंतर क्रीड़ित गोकुल बासा ।
गौर स्याम तन यह जोरी पर बलि 'परमानंद दासा' ॥+

[२९०] राग र

बैठे लाल कालिन्दी के तीरा ।
ले राधे मोहन पठयो है यह प्रसाद को बीरा※ ॥
सुनि री समाचार स्रीमुख के जे कहै स्याम सरीरा ।
प्यारी तेरे कारन चुनि राखे हैं जे निरमोलक हीरा ॥
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन पहिरे पीताम्बर चीरा ।
'परमानंद दास' को ठाकुर नैन लोल मति धीरा ॥

१—वदन

+ प्रस्तुत पद में कवि ने स्वामिनी जी के माहात्म्य की ओर संकेत दिया है ।

※ प्रसाद में बीड़ा देने की पद्धति संप्रदाय में बहुत प्रचलित है ।

[३९१] राग सारंग

मोहन मुख देखन आउ री।
जहाँ स्याम सुन्दर खेलत हैं अबहिं मिलन को दाउरी ॥
सघन कुंज बहुत द्रुम फूले विधिना रची या ठाँउरी।
नौतन दल लै कर परसत है नीको कियो बनाउरी ॥
दूती-वचन सुनत सुख लागत धाइ गहे तब पाउँ री।
'परमानंद' प्रभु दरसन देहैं आनन्द मंगल गाउरी ॥

[३९२] राग सारंग

मान तौ तासों कीजे जो होइ मन विषई।
मोहन कमल नयन की महिमा कै बिरिया मैं तुम सों कही ॥
उठि चलि बेग गहरू[1] कत लावति निसा जात है घूटी[2]।
उडुपति ज्योति मलिन भई भामिन अरू पोरी यह फूटी ॥
दूती वचन कहे जब सनमुख मन में ग्वालिन मुसिकानी।
'परमानंद स्वामी' की प्यारी रवकि कंठ लपटानी ॥

[३९३] राग सारंग

नंदलाल को बंदिस[3] नीकी।
देखत वह जोति अति नीकी जाके रूप काम दुति फीकी ॥
चितवनि नीकी बोलनि नीकी गावनि नीकी गति मति नीकी।
सब बिधि नीको कमल नयन की तैसीए हसनि हरन मन पीकी ॥
कौन कौन अंग करौं निरूपन सरद चंद सीतलता तनकी।
मिलि राधिके प्रेम रस सागर 'परमानन्द स्वामी' के मनकी ॥

---

[1] प्रवधी प्रयोग
[2] समाप्त होना
[3] अर्थ— गठन, रचना फारसी प्रयोग

[३६४] रा

सुनतउ जिय धरि मुरि मुसिकानी।
कौन स्याम नंद सुत कैसो अनगढ़ छोली बानी॥
कछु अनुराग हृदय को जनायौ अलक लड़ैती मति ठानी
ले स्याम नैन भरि राखी अंजन रेख सयानी॥
जिय को बातनि प्रगट जनावति चौप रहत क्यों छानी[१]
'परमानन्द' प्यारी चितबनि लखि हियहिं समानो॥

[३६५] राग

राधा माधौ कुंज बुलावै।
सुनि सुंदरि मुरली की घोरैं तेरो नाउं लैलैं गावै॥
कौन सुकृत फल तेरो बदन सुधाकर भावै।
कमला को पति पावन लीला लोचन प्रगट दिखावै॥
अब चल मुगधि बिलंब न कीजै चरन कमल रस लीजै।
ऐसी प्रीति करै जो भामिन ताको सरबसु दीजै॥
सरद निसा सखी पूरन चंदा खेल बनेगौ भाई।
या सुख की परमित परमानन्द मोपै बरनी न जाई॥

[३६६] राग

चलि सखी मदन गोपाल बुलावै।
तेरोई नियाव[२] लैले बेनु बजावै॥
यह संकेत बद्यो बन महियां।
सघन कदंब मनोहर तहियां[३]॥
मिलन परम सुख अदभुत लीला।
'परमानंद' प्रभु भावन सीला॥

१—अर्थ—गुप्त
२—नाम
३—छहियाँ

[३९७] राग सारंग

चलि लै मिलउँ मदन गोपालहिं ।
भले ठौर बैठे मन मोहन कूजत बेनु रसालहिं ।।
चतुर सखी माधौ जी की पठई सिखवत है ब्रज बालहिं ।
मान मनायो पाँ लागति हौं और बात जिन चालहिं ।।
मात पिता बन्धु अरु गुरु जन लाज छाँड़ि भजि लालहिं ।
'परमानंद' प्रभु भलो मांनिहै चित्त दैबो बनमालहिं ।।

[३९८] राग सारंग

चलिरी ग्वालि बोलत ताहि हरे ।
एते जतन नवति नाहीं, कौन दूती तेरे कान भरे ।।
हौं पठई मनुहारि बहुत करि तेरे कारन कुंज खरे ।
ऐसी कृपा प्रीति में देखी ना जानें कवन गुन हृदय धरे ।।
वे कमला पति मोहन ठाकुर हाथ तुम्हारे गरे परे ।
'परमानन्द प्रभु' सरबसु दाता जाही के भाग ताही के ढरे ।।

[३९९] राग सारंग

छाँड़ि न देत झूठे अति अभिमान ।
मिलि रस रीति प्रीति करि हरि सों सुंदर[१] हैं भगवान ।।
यह जोबन धन द्यौस च्यारि को पलटत रंग सो पान ।
बहुरि कहां यह अवसर मिलि है गोप भेष को ठान ।।
बार बार दूतिका सिखवै करहि अधर रसपान ।
'परमानंद स्वामी' सुख सागर सब गुन रूप निधान ।।

---

[१] ...नत रहैं

[४००] राग बसं

कालिन्दी तीर कलोल लोल।
मधुर तू माधौ मधुर बोल॥
सुन्दर गावत बेनु गीत।
बन माला रची है पुनीत॥
सखा संग बल भाइ साथ।
आनन्द कन्द बैकुंठ नाथ॥
देवकी नंदन जनम बाद।
माया मानुष तन देवराज॥
'परमानंद स्वामी' दयाल।
भव भंजन भय हरन काल॥

[४०१] राग बसंत

राधा माधौ संग खेलैं।
बार बार लपटात स्याम तन कनक बाँह पिय के गल मेलैं॥
चोवा चंदन साथ कुमकुमा बहुत सुगंध अबीर।
कुसुम माल राजत उर अंतर प्रहसित जादौबीर॥
मदन महोछव फाग मनोहर रति रस फागुन मास।
गोपबधू गावत नाना रंग बलि 'परमानंददास'॥

[४०२] राग बिहागरे

मनावत हार परी मेरी माई।
तू चट[१] ते मट होति[२] नहि राधे उन मोहि लैन पठाई।
राजकुमारी होय सो जाने कै गुरु सीख[३] सिखाई॥
नंद नंदन को छाँडि महातम अपनी रार बढ़ाई॥
ठोड़ी हाथ दे चली दूतिका, तिरछी भौंह चढ़ाई।
'परमानन्द प्रभु' काहूँ गी दुल्हैया, तौ बाबा की जाई॥

१ चस ते मस
२ हौं हरि
३ होप

[४०३] राग गौरी

ग्वालिन बीच ठाढ़ी नंद की पौरी[१] ।
बेर बेर इति उत फिरि आवति बिजिया खाय भई बौरी ॥
सुंदर स्याम सलोने से ढोटा उन दधि लैन कह्योरी ।
हम कों कह गए नैंक खड़ी रहि आपुन बैठ रह्यो री ॥
नौलख धेनु नंद बाबा घर तेरो ही लैन कह्यो री ।
जोबन माती फिरत ग्वालिनी तैं मेरे लाल ठगियो री ॥
इतनी सुनत निकस आये मोहन दधि को मोल कह्योरी ।
'परमानंद स्वामी' रूप लुभाने यह दधि भलो बिक्यो री ॥

तापनोदन

[४०४] राग टोडी

हरि को भलौ मनाइये ।
मांन छाड़ि उठि चन्द्रबदनी उहाँ लौ चलि आइये ॥
निबड कदंब छाँह तहाँ सीतल किसलय सेज बिछाइये ।
एकौ घरी जु ता बिन रहिये सो कत वृथा गँवाइये ॥
दान नेम ब्रत सोइ कीजे जिहि गोपाल पति पाइये ।
'परमानंद स्वामी' सौ मिलि के मानस दुख बिसराइये ॥

[४०५] राग आसावरी

कमल नयन बोलत रूप निधान ।
बेग चलहि राधिका मुगध मति उदय करन चहत भान ॥
सुनहि कृसोदरि निसा कृसा भई कृस न भयो यह तेरो मान ।
प्राची दिसा सब अरुण देखियत तैं न दियो अनुराग कौ दान ।
चरनायुध वर बोलन लागे तै नहिं मौन तजो मति मूढ़ ।
फिरि पाछे पछितैहैं मिलन कों नंद कुमार नागर गुन गूढ़ ॥
इतनी बात सुनी जब स्रवननि गहै दूती के चरन अरु बांह ।
'परमानंद स्वामी' पै लै चलि जो बोलौ प्यारे निज नांह ॥

---
[१] ...ौरी

[४०६] राग ललित

राधे जू हारावली टूटी ।
उरज कमल दल माल अरगजो वाम कपोल अलक लट छूटी ॥
बर उर उरज करज कर अंकित बाँह जुगल बलयाबलि फूटी ।
कंचुकी चीर बिबिध रंग रंगति गिरिधर अधर माधुरी घूटी ॥
आलस बलित नैन अनियारे अरुन उनींदे रजनी घूटी ।
'परमानंद' प्रभु सुरत[1] सने रस मदन नृपति की सेना लूटी ॥

[४०७] राग ललित

भली बनी वृषभान नंदिनी प्रात समै रन जीते आवैं ।
नूपुर मधुप अलक लट छूटी मधुर चाल मद गजहि लजावैं ॥
नागर छैल रसिकिनी नागरि सुरति हिंडोरे झूलै गावैं ।
वे दोउ सुघर केलि रस मंडित तहँ सत मदन ठौर नहीं पावैं ॥
पिय की नख मनि उरहि बिराजति बिन सूतै ही माल बनावै ।
'परमानंद' रूपनिधि नागरि बदन कांति रबि जोति छिपावै ॥

[४०८] राग सारंग

बाँह डुलावति आवति राधा ।
बदन कमल झाँपति न उघारति रह्यो है तिलक मिटि आधा ॥
गिरिधर लाल कुंवर नंद नंदन ते जु प्रेम करि लाधा ।
रहसि मिली प्रान प्यारे कौं रह्यो न एको साधा ॥
काजर अधर मिल्यो नैननि कौं मिटी काँम की बाधा ।
'परमानंद' स्वामी रति नागर तेरो पुन्य अगाधा ॥

१—समय

[४०९] राग सारंग

रस पायो मदन गोपाल कौ ।
सुनि सुंदरि तोहि नीकौ लाग्यो या मोहन अवतार कौ ॥
कंठ बाहू धरि अधर पान दै प्रमुदित हसत बिहार कौ ।
गाढ आलिंगन दै दैं मिलबो बीच न राखत हार कौ ॥
लोकपाल पावन जसु गावति भक्तन प्रान अधार कौ ।
सेस अंक तजि गोकुल आये देखौ चरित उदार कौ ॥
बेनु बजावत नाचत गावत यह बिनोद सुख सार कौ ।
'परमानंद दास' को जीवन रास परिग्रह दार कौ ॥

[४१०] राग बिलावल

यह पट पीत कहाँ तैं पायो ।
इतनिक प्रीति गुपत मोहन की तैं राधे त्रैलोक सुनायो ॥
ना याको मोल न याको गाहक न लियो मोल न घर उपजायो ।
एक बार खेलत बृन्दावन बहुत जतन करि मोहि उढायो ॥
सुमरत भजत बसत उर अन्तर इहि मिस कर लालन समुझायो ।
प्रीति की रीति चतुर सोई जानै 'परमानंद' प्रभु यों बोहोरायो ॥

[४११] राग सारंग

यह हरि के उर को गज मोती ।
चन्द्रावली कहाँ तैं पायो दूरि करत दिनमनि की जोती ॥
ढीठ भई पहिरैं तन डोलति बूझै ते कहा कहा उत्तर देहैं ।
भूलि भवन जिन जाहु नंद के निरखि छिड़ाइ जसोदा लैहैं ॥
अजहू तौ नृप कंस जीवतु है मैं बधि कैं पलटै है पायो ।
जौ न पत्याहु तो सपथ दे बुझहू 'परमानंद' ता दिन संग आयो ॥

[४१२] राग सारंग

सोहत नव कुंजन छबि भारी।
अद्भुत रूप तमाल सों लिपटी, कनक बेलि सुकमारी॥
बदन सरोज डहडहे लोचन निरखत छबि सुखकारी।
'परमानन्द' प्रभु मत्त मधुप हैं बृषभांन सुता फुलवारी॥

[४१३] राग कान्हरौ

मानिनी ऐसो मान न कीजे।
ये जोवन अंजलि को जल ज्यों जब गुपाल माँगे तब दीजे॥
दिन दिन घटे रेनहिं सुंदरि, जैसे कला चन्द की छीजे।
पूरब पुन्न, सुकृत फल तेरो, क्यों न रूप नैन भरि पीजे॥
चरन कमल की सपथि करत हों ऐसो जीवन दिन दस जीजे।
'परमानंद' स्वामी सों मिलकें अपनों जनम सफल करि लीजे॥

[४१४] राग धनाश्री

कहा करौं मेरी माई नंद लड़ैते मेरो मन चोरयो।
स्याम सरीर कमल दल लोचन चितवत चले कछू मुख मोरयौ॥
हौं अपने आँगन ठाड़ो ही तब ही हरि निकसि ह्वै आए[1]।
नैंक दृष्टि दीनी उन ऊपर कर मुख मूँदि चले मुसिकाए॥
तबतै मोहि घर की सुधि भूली जब तैं मेरे नैननि लाई।
'परमानन्द' काम करत बरजै कबहि मिलै कब देखौं जाई॥

१— तब इतै हरि निकसि ह्वै आए।

[४१५] राग आसावरी

सखी हौं अटकी इहि ठौर री ।
देखि कमल मुख स्याम सुन्दर को नैनाँउ भए भौंर री ॥
मोहि गृह ब्यौहार करत नहिं आवै स्रवन सुनें कलगीत री ।
अपनी ओर बेध हौं लीनी सुबल सुदामा मीत री ॥
अरी मैं लोकबेद कौ मारग छाँड़्यौ मातपिता की लाज री ।
सबै अंग सुध गई 'परमानन्द' भए राम के राज री ॥

[४१६] राग आसावरी

कमल दल नैना ।
चितवनि चारु चतुर चिंतामनि मृदु मधु माधौ बैना ॥
कहा करौं घर गयौ न भावै चलनि बलनि गति थाकी ।
स्याम सुंदर रहसि दासी कीनी लखि न परै गति ताकी ॥
कछु उपदेस सहचरी मोसौ कहाँ जाऊँ कहाँ पाऊँ ।
'परमानन्द दास' को ठाकुर जहाँ लै नैन मिलाऊँ ॥

[४१७] राग आसावरी

कैसे छूटे बेद सगाई ।
कोऊ निंदौ कोऊ बंदौ अबतौ यह बनि आई ॥
मोहन मदन मनोहर मूरति सकल काम सुखदाई ।
देखत रूप अनूप स्याम को नैननि परै जुड़ाई ॥
लोक बेद की लाज तजी मैं जिन कोई बरजौ माई ।
'परमानन्द' स्वामी पै जैहौं मिलिहौं ढोल बजाई ॥

[४१८] राग *

यातें दिन आवति इहि ओर ।
बदन कमल मधुकर ज्यों अटक्यो रस लुब्ध्यौ मन मोर ।
खरिक दुहावन जाति सखिन संग दिष्टि परे तिहि ठौर
अवलोकत तन सुधि बुधि बिसरी नैनन कर्‌यो चितचोर ।
पतिगृह काज सबै बिसरायें नंदनंदन हूत के छोर
'परमानन्द' मिल्यौ चाहति हौं गिरवरधर सिर मौर

[४१९] राग सारंग-ि

कोटिऊ तें कठिन भृकुटि की ओट ।
सर हू तें सरस शब्द की चोट ॥
जानै चतुर न जानै बोट ।
प्रेम के फन्द कहा बड़ छोट ॥
'परमानन्द' प्रीति की जोट ।
अब कहाँ जैबों परे बगरोट[1] ॥

[४२०] राग सारंग-ि

प्रेम की पीर सरीर न माई ।
निस बासुर जिय रहत चपपटी यह धुक धुकी न जाई ॥
प्रबल सूल रह्यो जात न सखी री आवै रोबन माई ।
कासौं कहौं मरम की माई उपजी कौन बलाई ॥
जो कोऊ खोजै खोज न पैयतु ताको कौन उपाई ।
हौं जानति हौं मेरे मन की लागत है कछु बाई ॥
पाछे लगे सुनत 'परमानंद' हरि मुख मृदु मुसिकाई ।
मूँदि आँख आये पाछे ते लीनी कंठ लगाई ॥

१ — पशुओं के गले का बन्धन

[४२१] राग सारंग-बिलावल

हरि सौं एक रस रीति रहो री ।
तन मन प्रान समरपन कीनों अपनो नेम ब्रत लै निबहोरी ।।
प्रथम भयो अनुराग दिष्टि सौं मानो रंक निधि लूटि लईरी ।
कहति सुनति चित औरहि कीनो यहै लगन जिय पैंड गहीरी ।।
मरजादा औलंघि सबन की लोक बेद उपहास सहीरी ।
'परमानंद दास' गोपिन की प्रेम कथा सुक व्यास कहीरी ।

[४२२] राग सारंग-बिलावल

मनुज पराये बस परचो नैननि के घाले ।
स्याम धाम में चुभि रह्यौ ये पर्यो प्रेम के पाले ।।
निकसत कठिन कहा करों समुझायो नहिं मानै ।
कमल पंक में पड़ि रह्यो मूरख सुखहिं न जानै ।।
सुख उपज्यो आनंद देखि ससि बदन लुभानों ।
'परमानंद' उपज्यौ तहाँ फिर तहीं समानों ।।

[४२३] राग मलार

माई हौं कहा करौं नहिं भावै मोहि घर कौ आँगनु ।
कवन ठगौरी मेली नंद कौ नंदनु ।।
तरनि तनया तीर खेलत स्याम सरीर ।
लोचन भरि कै देखौं रोहिनि नंदन बीर ।।
मन नहिं लागे कैसे कै मैं बन जाऊँ ।
वा मोहन मूरति की बलि बलि जाऊँ ।।
निदति सकल लोक लाज कुल सील बड़ाई ।
'परमानंद स्वामी' सौं अति रति बन आई ।।

[४२४] राग

सखीरी उजिलु हौं मुख हेरै।
को मेरो सगो न हौं काहू को कहति सबनि सौं टेरै ॥
जहँ मन गयो सोई भलौ करिहैं कहा भयो कहे तेरे।
'परमानंद' हिलग की बातें निबरत नाहिं निबेरै ॥

[४२५] राग

री माधौ के पाँयन परिहौं ॥
स्याम सनेही जब मेटौंगी तन न्यौछावर करिहौं ॥
लोक बेद की कानि न करि हौं नहि काहू ते डरिहौं।
नंद नंदन की निज चेरी ह्वै पिय कौ पान्यौ भरिहौं॥
कमल नैन कौं नैननि राखौ तब सरबस आगे धरिहौं।
'परमानंद स्वामी' सौं मिलिकै अपने नेम न टरिहौं॥

[४२६] राग

कब की तू दह्यौ धरे सिर डोलति।
झूठे ही इत उत फिरि आवति इहांई आइकै बोलति ॥
मुँह लौं भरी मटुकिया तेरी तोहि रटति भई साँझ
गौरस को लेवा जानति हौ याही बाखर माँझ।
आगे आऊ बात इक बूझौं कहति बिलगु जिनि मानै।
तेरे घर में तू ही सयानी और बेचि नहिं जानै ॥
ता दिन तै नीके जानति हौं जापै चित चुरवायौ
आँचर खोलि दै हरजा[१] कों जन 'परमानंद' गायौ।

१—देइ राजा को।

[४२७] राग गौरी

फिर फिर कहा हेरति री माई ।
को प्रीतम पाछें आवत है मानउँ नंद कुमार कन्हाई ॥
गोरस बेचन चली री मधुपुरी पाँय परत नहीं आगे ।
ऐसी ठगोरी मेली री कौनें मन तरसत ताहि लागें ॥
देखत रूप चिहुटि चित लाग्यो ताही के हाथ बिकानों ।
'परमानन्द' प्रीति है ऐसी कहा रंक कहा रानों ॥

[४२८] राग गौरी-कानरो

नैननि को टकुउकु लेरो ।
ग्याइ गोपाल लाल बस कीनो मोहन रूप जगत केरो ॥
बेही[१] काज नंदजू के आंगन बारंबार करत है फेरो ।
जानी बात बदन पहिचान्यो औरहि भाँति प्रेम घेरो ॥
उरहन के मिस भई लगनिया चंचल चित कीनो है चेरो ।
'परमानंद प्रभु' रस अटको बाँध्यो है सखी मदन बेरो ॥

[४२९] राग कान्हरो

दोऊ नैननि में तै लायौ टकुऊकु ।
बार बार द्वार मैं झाँकत[२] मदन गोपाल की मूरति कौतुक ।
जौलौं हरि को रूप न देखति हिरदै तलप नीके लागति ।
परोस बास हमारो तेरो ग्वालिनि चरन कमल अनुरागति ॥
तू नागरी और सब मूरख अपनो सहज सुभाव जनावति ॥
'परमानंद स्वामी' रस अटकी गीधी दिन प्रति आवति ॥

बनाही (अर्थ)

खत

[४३०] राग क

सुनि री सखी तेरो दोस नहीं मेरो पीउ रसिया ।
जो देखत सो भूलि रहत है कौन कौन के मन बसिया ॥
सो को जो न करौ बस अपने जा तन पै हँसिकै चितैया ।
'परमानंद प्रभु' कुँवर लाडिलो अबहि कछू भीजत मसिया[1] ॥

[४३१] राग

चितवो छाँड़ि दे नैक राधा ।
कै मिलि रसिक नंदनंदन सौं करति काम मन बाधा ॥
कै बैठी रहि भवन आपने में, काहे कौं बन आवै ।
मृगनयनी हरि को मन मोहे जब खरिक दुहावै ॥
कबहुँ हाथ तैं गिरत दोहनी बिसरि जात है नोई ।
कबऊ व्रषभ गोवत धन सुंदर को जानै कहा होई ॥
तेरे नैन बिसाल काम सर आगैं आगैं धावैं ।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन उर लागे सचुपावै ॥+

[४३२] राग

तेरो कान्हा सों मन लाग्यो ।
कहति फिरति दामोदर माधौ लोक वेद अरू भाग्यो ॥
हम किन भई घोखकी गुवालिन एक गाँव मिलि बसतीं ।
गाढ़े आलिंगन लैलै मिलती रास केलि मिलि हँसती ॥
सुनि री सखी भाग कहा बरनों बार बार बलि जाऊँ ।
'परमानंद स्वामी' मोहन को निकसत है मुख नाऊँ ॥

१—मसि भीजना—मूछों की रेख उगना ।

+ प्रस्तुत पद में चित्रोपम वर्णन एवं कृष्ण की राधा के प्रति आसक्ति दृष्टव्य है—

[४३३] राग सारंग

क्योंरी तू दिन आवति इहि ओर ।
गोचारन की बाट रोकि कै बाढ़ि रही मन मोर ।।
कै तैं स्याम नयन भरि देखे पीताम्बर की छोर ।
कै तैं सुनी अचानक बन में वा मुरली की घोर ।।
कै तैं मोहन आप बस कीने कान्ह कुँवर चितचोर ।
'परमानंद प्रभु' मिल्यो चाहत है नागर नंद किसोर।।

[४३४] राग सारंग

कहि री भटू तोहि कहाधौं भयो ।
उमगि रहति निस अरु बासर छूटि गाँठिले कहा धौं गयौ ।।
कै तोहि मात पिता घर त्रासै कै कोऊ कछु तोसों कह्यो ।
कै जसुदा के लाल लाडिले चितै चित चोरि लह्यो ।।
कै तैं सुनी घोर मुरली की कै कछु पढ़ि बदयौ ।
'परमानंद' प्यारे मिलिबे धौं तरसत है मेरो हियो ।।

[४३५] राग सारंग

बिकल भई फिरत राधे जू काऊ की लई ।
काके बिरह बदन अकुलानों तन की आब गई ।।
को प्रीतम ऐसो जिय भावै जिनि यह दसा दई ।
मैं तन की ऐसी गति देखी कमलनि हेम हुई ।।
कहा करौं इक स्याम ढिटोना तासौं प्रीति नई ।
'परमानंद' कोऊ आन मिलावै हरि आनंद मई ।।

[४३६] राग

मैं तू कै बिरियां समुझाई ।
उठि उठि उझकि उझकि चंचल टेब न जाई ।।
छिनु छिनु पलु पलु रह्यौ न परै तब सहचरि ओट लगाई ।
कमल नयन कौं फिरि फिरि देखै लोक की लाज मिटाई ।।
को प्रति उत्तर देइ सखी कौं गिरिधर बुद्धि चुराई ।
मदन मोहन राधा रस लीला कछु 'परमानंद' गाई ।।

[४३७] राग सा

अभिसार

सुनि राधा इक बात भली ।
तू जिन डरै रैनि अंधियारी मेरे पाछे आउ चली ।।
तहाँ लै जाऊँ मदन मोहन पै मैं देखी इक बंक गली ।
सघन निकुंज कुसुमनि रचि भूतल आछी विटप तली[१] ।।
हरि की कृपा कौ मोहि भरोसो प्रेम चतुर चित करत अली ।
'परमानंद स्वामी' कौं मिलिकै मित्र उदै जैसे कंवल कली ।।

[४३८] राग र

लाल नेक देखिये भवन हमारो ।
दुतिया[२] पाट सिंहासन बैठे अविचल राज तिहारो ।।
सास हमारी खरिक सिधारी पिय बन गयो सवारो ।
आस पास घर कोऊ[३] नाहीं यह इकन्त है न्यारो ।।
औट्यौ[४] दूध सद्य धौरी कौ लेहु स्यामघन पीजै[५] ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर कछु कह्यौ हमारो कीजै[६] ।।*

१—थली ।
२—शीतल सुखद
३—सबे बसत हैं
४—माछो सद्य जमाई
५—इतनिक अचवहु आरी
६—की जीवनि यह रति केलि तुम्हारी
* ये पद द्वितीया पाठ के हैं—संपादक

[४३९]　　　　राग सारंग

लाल नेकु भवन हमारे आवो ।
जो माँगो सों देहौं मोहन लै मुरली कल गावो ।
मंगलचार करौ गृह मेरे संग के सखा बुलावो ।
करो विनोद सुन्दर जुवतिन सों प्रेम पियूष पिवावो ।।
बलि बलि जाऊँ मुखारबिंद की ललित त्रिभंग दिखावो ।
'परमानंद' सहचरि रस भरि लै चली करत उपावो ।।

[४४०]　　　　राग सारंग

राधे तेरे भवन हौ आऊँ ।
साबर कहत साँवरो मोहन नेंक दूध जो पाऊँ ।
मात पिता यह बिलगु न मानें और इहि भेद न जाने ।
जो तू सौंह करे बाबा की तो मेरे मन माने ।।
सब दिन खेलों मेरे आँगन अपने नैन सिराऊं ।
'परमानंद प्रभु' बिनती कीनी अपने मित्र बुलाऊं[१] ।।

[४४१]　　　　राग सारंग

कुंचित अधर पीत रज मंडित, जनु भँवरनि की पाँति ।
कमल कोस मेंते ढिग बैठे पाण्डुर बरन सुजाति ।।
चंद्रक चारु मुकुट सिर सोभा बीच बीच मनि गुंजा ।
गोपी मोहन अभिमत मूरति, प्रगट प्रेम के पुंजा ।।
कंठ कंठमनि स्याम मनोहर पीताम्बर बन माल ।
'परमानन्द' स्रवन मनि मंगल कूजत बेनु रसाल ।।*

१-निरखत रहौं चंद मुख सीतल प्रेम मुदित सुख पाऊं ।
*प्रस्तुत पद रूप माधुरी एवं रूपाशक्ति के सुन्दर उदाहरण हैं ।　　　　सम्पादक

[४४२] राग सा

औचकहिं हरि आइ गये।
हौं दरपन लै माँग संभारत चार्‌यौ हूँ नैना एक भये ॥
नेक चितै मुसकाये हरि जू मेरे प्रान जुराइ लये।
अब तौ भई है चोंप मिलन की बिसरे देह सिंगार ठये ॥
तब तें कछु न सुहाय बिकल मन ठगी नंद सुत स्याम नये।
'परमानंद प्रभु' सों रति बाढ़ी, गिरिधर लाल आनंदमये ॥*

[४४३] राग सारंग-बि

अरी गुपाल सों मेरौ मन मान्यों, कहा करैगौ कोउ री।
हौं[१] तौ चरन कमल लपटानी जो भावै सो होउ री ॥
माइ रिसाई, बाप घर मारै, हंसै बटाऊ लोग री।
अब तौ जिय ऐसी बनि आई बिधनाँ रच्यो संजोग री ॥
बरू ये लोक जाइ किन मेरो अरु परलोक नसाइ री।
नंद नंदन हौं तऊ न छाँड़ों मिलोंगी निसान बजाइ री ॥
बहुरयो यह तन धरि कहाँ पैहौं बल्लभ भेष मुरारि री।
'परमानंद स्वामी' के ऊपर सरबसु देहों बारि री ॥

[४४४] राग धन

भावै मोहि मोहन बेनु बजावन।
मदनगुपाल देखि हौं रीझी, मोहन की मटकावन ॥
कुंडल लोल कपोल मधुरतम लोचन चारु चलावन।
कुंतल कुटिल मनोहर आनन मीठे बेनु बजावन ॥
स्याम सुभग तन चंदन मंडित उर कर अंग नचावन।
'परमानंद' ठगी नन्द नंदन दसन कुंद मुसकावन ॥

---

* प्रस्तुत पद रूपमाधुरी एवं रूपासक्ति के सुन्दर उदाहरण हैं।

१ अब

[४४५] राग धनाश्री

जब नंद लाल नैन भरि देखै ।
एक टक रही संभार न तनक की मोहन मूरति पेखै ।।
स्याम बरन पीताम्बर काछै अरु चन्दन की खोर ।
कटि किंकनी कल सब्द मनोहर सकल त्रियन चितचोर ।।
कुंडल झलक परत गंडनि पर आय अचानक निकसौ भोर ।
स्रीमुख कमल मंद मृदु मुसकनि लेत कर्षि मन नंदकिसोर ।।
मुक्तमाल राजत उर ऊपर चितए सखी जबै इहि ओर ।
'परमानंद' निरखि अंग सोभा ब्रज बनिता डारति तृनतोर ।।

[४४६] राग धनाश्री

जबतें प्रीति स्याम सों कीनीं ।
ता दिन तें मेरे इन नैननि नेंकहुँ नींद न लीनी ।।
सदा रहति चित चाक चढ्यौ सो और न कछू सुहाय ।
मन में करत उपाय मिलन कौ इहै बिचारत जाय ।।
'परमानंद प्रभु' पीर प्रेम की काहू सो नहिं कहिए ।
जैसे व्यथा मूक बालक की अपने तन मन सहिए ।।

[४४७] राग सारंग

चारु कपोलनि की झलक ।
हरि कौ मुख कमल पेखै लागति नहीं पलक ।।
कुमकुम कौ तिलक बन्यो कुटिल निबड़ अलक ।
मोर मुकुट चंद्रिका सीस पै मनसिज की ढलक ।।
स्याम सुन्दर देखन कों आवत जिय ललक ।
'परमानंद स्वामी' गोपाल नैनन के सलक ।।

[४४८] राग सारंग

मदन गोपाल देखिरी माई ।
द्विभुज त्रिभंगी स्याम मनोहर सुन्दर निधि जुवतिन सुखदाई ।।
माथे बने मोर के चंदवा रुचिर चित्र बन धात बनाई ।
गुंजाहार माल बैजंती पीताम्बर छबि बरनि न जाई ।।
अरुन अधरकृत मधुर मुरलिका तैसीऐ चंदन तिलक निकाई ।
मनो दुतिया दिन उदित अर्ध ससि निकसि जलद में देत दिखाई ।।
अद्भुत मनि कुंडल कपोल मुख अदभुत उठत परस्पर झाँई ।।
मानौं विधु मीन बिहार करत दोऊ जल तरंग में चलिचलि आई ।।
तैसे अनूपम नैन लाल के चितवनि लेत चुराई ।
सोभा और कहाँ लौं बरनौं 'परमानंददास' मुख गाई ।।

[४४९] राग सारंग

सुन्दरता गोपालहिं सोहै ।
कहत न बने नैन मन आनन्द जा देखत रति नायक मोहै ।।
सुन्दर चरन कमल गति सुन्दर, सुन्दर गुंजाफल अवतंस ।
सुन्दर बनमाला उर मंडित सुन्दर गिरा मनों कल हंस ।।
सुन्दर बेनु मुकुट मनि सुन्दर सुन्दर सब अंग स्याम सरीर ।
सुन्दर बदन अवलोकनि सुन्दर सुन्दर ते बलबीर ।।
बेद पुरान निरूपत बहुविधि ब्रह्म नराकृति रूप निवास ।
बलि बलि जाऊँ मनोहर सूरति हृदय बसो परमानंददास ।।

[४५०] राग सारंग

बन्दसि बनो कमल दल लोचन ।
चितवनि चारु चतुर चिन्तामनि बिन गुन चाप मदन सर मोचन ।
कटि पीताम्बर लाल उपरना माथे पाग मनोहर कुण्डल ।
मुक्ता कण्ठ हाथ में बीरा पांय पावँरी गति ब्रज मण्डल ।।
नन्दकिसोर कूल कालिंदी संग गोपाल सभा मँह मन्डन ।
'परमानन्ददास' बलिहारी जो जगदीस कंसकुल खंडन

[४५१] राग सारंग

बदन की बलि बलि जाउँ बोलत मधुर रस ।
बचन बचन प्रति सकल भुवन बस ।।
चंद निचोय रचे अंबुज दल नाँउ धरचो कमल नैन ।
यह अवलोकनि सुरनर मोहे केसि रिपु जरचौ जिवायो मैंन ।
अंग अंग प्रति मदन कोटि दुति जहाँ परति तहँ तहँ रहति ।
'परमानंद' चपलता तजि मनु स्वस्थ भयो ब्रजनाथ निहारत ।।

[४५२] राग सारंग

कान्ह कमल दल नैन तिहारे ।
अरु बिसाल बंक अवलोकनि हठि मनु हरत हमारे ।।
तिन पर बनी कुटिल अलकावलि मानहुँ मधुप हुंकारे ।
अतिसै रसिक रसाल रसभरे चित तैं टरत न टारे ।।
मदन कोटि रवि कोटि कोटि ससि ते तुम ऊपर वारे ।
'परमानंददास' की जीवनि गिरधर नंद दुलारे ।।

[४५३] राग सारंग

जो रस रसिक कीर मुनि[1] गायो ।
सो रस रटत रहत निस बासर सेष सहस मुख पार न पायो ।।
गावत सिव सारद मुनि नारद कमलकोस[2] नैकों न चखायो ।
जद्यपि रमा रहत चरनन तर निगमनि अगम अगाध बतायो ।।
तरनि तनया तट बंसीवट निकट बृन्दावन बीथिन बहायो ।
सो रस रसिक दास 'परमानंद' ब्रखभानु सुता उरमाँझ समायो ।।

---

[1] कीर मुनि = शुक

[2] कमलकोस—ब्रह्मा

[४५४] राग सारंग

आनन्द सिंधु बढ्यो हरि तन में ।
श्री राधा पूरन ससि निरखति उमगि चल्यो ब्रज बृन्दावन में ।
उतरो क्यौ जमुना इत गोपिन कछुयक फैलि परचो त्रिभुवन में
नहि परस्यो करमठ और ग्यानिनु अटकि रह्यो रसिकन के मन में ।
मंद मंद अवगाहत बुधि बल भगति हेत प्रगटे छिनु छिनु में ।
कछुक लहत नंद सुवन कृपाते सो दिखियत 'परमानंद' जन में ।

[४५५] राग आसावरी

सुनि मेरो बचन छबीली राधा ।
तै पायौ रस सिंधु अगाधा ।।
जो रस निगम नेति नित भाख्यो ।
ताको तैं अधरामृत चाख्यो ।।
सिव बिरंचि जाके ध्यान न आवै ।
ताकौ कुंजनि कुसुम बिनावै ।।
तू बृखभान गोप की बेटी ।
मोहन लाल भावते भेंटी ।
तेरो भाग्य मोहि कहत न आवै ।
कछुयक रस 'परमानंद' गावै ।।

[४५६] राग गौरी

रसिक सिरोमनि नंदनंदन ।
रसमय रूप अनूप बिराजित गोपबधू उरू सीतल चंदन ।
नैननि में रस चितवनि में रस बातनि में रस ठगत मनुज पसु ।
गावनि में रस मिलवनि में रस बेनु मधुर रस प्रगट पावन जसु ।।
जिहि रस मत्त फिरत मुनि मधुकर सो रस संचित ब्रज ब्रन्दाबन ।
स्याम धाम रस रसिक उपासित प्रेम प्रवाह सु 'परमानंद' मन ।।

[४५७] राग गौरी

नंद नंदन जिय भावते तेरे चंचल डोल ।
इंदु बदन भ्रू नासिका सुभ चारु कपोल ॥
भाल तिलक अलकावलि स्रुति कुंडल लोल ।
अधर मधुर मुसकावनी मृदु मीठे बोल ॥
अंग बास रस संग ह्वै रहै मधुपनि के टोल ।
'परमानंद प्रभु' ले मिली नव उरज अमोल ॥

[४५८] राग गौरी

जा दिन तें सुन्दर बदन निहारयौ ।
ता दिन तें मधुकर मनसो मैं बहुत करी निकस्यौ न निकारयौ ॥
लोकलाज कुलकांनि जानि जिय दुसह बिलोकि मिटो करि छांडयौ ।
मात तात पतियात भुवन में सबहिन कौ कहिबौ सिर धारयौ ॥
होनी होइ सु होउ कर्म बस सजनी जिय को सोच निवारयौ ।
दासी भई 'दास परमानंद' भलो पोच अपनो न विचारयौ ॥

[४५९] राग गौरी

बेधी हौं पदअंबुज मूल ।
रह्यौ न परे स्याम सुंदर बिन नैन मुख देखें इन मूल ॥
लरिका बृन्द संग करि लीने खेलत हैं यमुना के कूल ।
बलिहारी मन मोहन मूरति नाहिन जनाइ कोउ समतूल ॥
मारग चलत अचानक सखीरी लागी कुसुम बान की ऊल ।
तनमय भई ठगौरी लागी उपजी उर मदन की सूल ॥
बिसर्यौ गृह ब्यौहार प्रेम मुख निरखत भयो चित तूल ।
'परमानंद' हरयौ मन कोसौं लोचन चारु कमल के फूल ॥

[४६०] राग कान्हरो

नयना सदा स्याम संग माते ।
नयनन रस बरखत उर अन्तर तातें अधिकाते ॥
देख देख थाकी सुघराई बहु नायक जो लुभाने ।
'परमानंद दास' को ठाकुर स्रीमुख तें जो बखाने ॥

[४६१] राग सारंग

मोल लई इन नैनन की सैन ।
स्रवन सुनत सब सुधि बुधि बिसरी लुब्धी मोहन बैन ॥
कमल नयन खिरक सों एक जो बात कही हँस ऐन ।
'परमानंद' प्रभु' नंद दुलारे मेरी गाय कहीं दुहि देन ॥

[४६२] राग सारंग

मेरो माई माधौ सों मन लाग्यौ ।
अपनो तन और या ढोटा को एकमेक करिसान्यौ ॥
लोक बेद[१] कुल कान त्यजी मैं न्योति आपने आन्यौ ।
एक नंद नंदन[२] के कारन बैर सबन सों ठान्यौ ॥
अब क्यों भिन्न[३] होय मेरी सजनी मिल्यौ[४] दूध अस पान्यौ ।
'परमानंद दास' को ठाकुर पहिले[५] ही पहिचान्यौ ॥

१—की कान तजी
२—गोविंद
३—भिन्न
४—जस
५—मिलि गिरधर पहचान्यौ

[४६३]　　　　राग सारंग

मैं अपनो मन हरि सों जोर्यो ।
हरि सों जोरि सबनि सो तोर्यो ॥
नाच नच्यो तब घूंघट कैसो लोक लाज डर पटकि पछोर्यो ।
आगे पाछें सोच मिट्यो जिय बाट मांझ मटुका लै फोर्यो ॥
कहनो होय सो कहो सखीरी कहा भयो काहू मुख मोर्यो ।
नवल लाल गिरिधरन पिया संग प्रेम रंग यह में तन बोर्यो ॥
'परमानंद प्रभु' लोग हंसन दै लोक बेद तिनुका सो तोर्यो ।

[४६४]　　　　राग धनाश्री

मेरो मन बाबरो भयो ।
लरिका एक इहाँ हुतो ठाड़ो ताही के संग गयो ॥
जानों नहीं कौन को ढोटा चित्र विचित्र ठयो ।
पीताम्बर छबि निरख हर्यो मन पढ़ि कछु मोहि दयो ॥
ग्वालिनी एक पाहुनी आई ताकी यह गति कीनी ।
'परमानंद प्रभु' हंसत सैन दै प्रेम पानि गहि लीनी ॥

[४६५]　　　　राग सारंग

मेरो मन कान्ह हर्यौ ।
गयो जो संग नंद नंदन के वहाँ ते नहीं टर्यौ ॥
कहा कहूं जो बगद न[१] आयो स्याम समुद्र पर्यौ ।
अति गम्भीर बुद्धि को आलय प्रेम पीयूष भर्यौ ॥
अब तो जिय ऐसी बनि आई भवन काज बिसर्यौ ।
'परमानंद' भलें ठाँ अटक्यो यह सब रह्यो धर्यौ ॥

---

[१] लौट न आना

[४६६] राग

मेरो मन हर्‌यो दुहुँ ओर।
सुन्दर बदन मुकुट की सोभा स्रवनन मुरली घोर॥
तब हौं भाजि भवन ते निकसी हरि आये इहि ओर।
मृदु मुसिकाय बंक अवलोकनि सर्बसु लीनो चोर॥
हौं बहुतै समुझाय रही ये कछु बस नाहिन मोर।
रहो उपचार 'दास परमानंद' बिन नागर नंदकिसोर॥

[४६७] राग

जा दिन ते आँगन खेलत देखौ री जसोदा कौ पूत री।
तब तें गृह सूँ नातो टूट्यो जैसे काचौ सूतरी॥
अति बिसाल बारिज लोचन पट राजत काजर रेखरी।
रच्छा है मकरंद लेत मनों अलि गोलक के बेष री॥
राजत द्वै द्वै दूध की दतियाँ जगमग जगमग होत री।
मनो महातम मन्दिर में धरी रतनन की जोत री॥
स्रवनन उत्कंठा रहत सदाई जब बोलत बोल तुतराय री।
मानों कुमुदिनी कामना पूजी पूरन चन्द्रहिं पाय री॥
'परमानन्द' देख सुन्दरतन आनन्द उर न समाय री।
चले प्रवाह नयन मारगह्वै कापै रोक्यो जायरी॥

[४६८] राग

मेरो मन गोविन्द सों मान्यौ ताते और न जिय भावै।
जागत सोवत यह उत्कंठा कोऊ व्रजनाथ मिलावै॥
बाढ़ी प्रीति आन उर अन्तर चरन कमल चित दीनो।
कृष्ण बिरह गोकुल की गोपी घर ही में बन कीनो॥
छाँड़ि अहार बिहार सुख यह और न चाहत काऊ।
'परमानंद' बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ

[४६९] राग सारंग

मन हरि लै गये नन्द कुमार ।
बारक दिष्टि परी चरनन तन देख न पायो बदन सुचार ॥
हौं अपने घर सुच सों बैठी पोवत ही मोतिन को हार ।
कांकर डारि द्वारह्वै निकसे बिसर गयो तन करत सिंगार ॥
कहा री करौं क्यों मिलहै गिरधर किहि मिस हौं जसोदा घर जाऊँ ।
'परमानंद' प्रभु ठगोरी अचानक मदन गोपाल भावतो नाऊँ ॥

[४७०] राग सारंग

मैं तो प्रीति स्याम सों कीनी ।
कोउ निंदो कोउ बंदो अब तो यह घर दीनी ॥
जो पतिव्रत तो या ढोटा सौं इन्है समर्प्यो देह ।
जो व्यभिचार तो नंदनंदन सों बाढ्यो अधिक सनेह ॥
जो व्रत गह्यो सो और न भायो मर्यादा को भंग ।
'परमानंद' लाल गिरिधर को पायो मोटो संग ॥

[४७१] राग सारंग

करन दे लोगन कों उपहास ।
मन क्रम वचन नंद नंदन को निमिष न छांड़ौं पास ॥
सब कुटुम्ब के लोग चिकनिया मेरे जाने घास ।
अब तों जिय ऐसो बनि आई क्यों मानों खल त्रास ॥
अब क्यों रह्यौ परे सुन सजनी एक गांव को बास ।
ये बातें नीकी जानत है जन 'परमानंद दास' ॥

[४७२]

अन-चरा

हौं नंद लाल बिना न रहूं ।
मनसा बाचा कर्मना हित की तोसों कहूँ ।
जो कछु कहौ सोई सिर ऊपर सो हौं सबै सहूँ ।
सदा समीप रहूँ गिरिधर के सुन्दर बदन चहूँ ॥
यह तन अरपन हरि कौं कीनो वह सुख कहाँ लहूँ ।
'परमानंद' मदन मोहन के चरन सरोज गहूँ ॥

[४७३]

सखीरी लोभी मेरे नैन ।
बिन देखे चटपटी लागत देखत उपजे चैन ॥
मोर मुकुट काँछे पीताम्बर सुन्दरता के ऐन[१] ।
अंग अंग छवि कही न परत हैं निरखि थकित भयो मैन ॥
मुरली ऐसी लागत स्रवनन चितवन खग मृग धेन ।
'परमानंद' प्रेमी के ठाकुर वे देखो ठाड़े एन ॥

[४७४]

हौं लोभी लटकन लाल की ।
मुरि मुसिकानि आन उर अंतर निकसत नहीं खरसान
बाँकी पाग राग मुख सारंग मधुर लपट लट माल
सखा सुबल के अंस बाहु दिये, बलि गई देन उगाल
चंपक दाम बीजु उर चमकत गंध सुमन गुलाब
चंचल दिष्टि समर की सोभा हूलनि कमल कर माल
उन मेरो सरबस चोर्यो सजनी अरु लई चाल मराल
अब यह देह दूसरो न छूहै 'परमानंद' गोपाल

१—अयन = घर

...पुरागमन प्रसंग

[४७५]

कहति हौं बात डरात डरात ।
हौं[1] मथुरा मैं सुनि आई तुम्हारी कथा बलभ्रात ॥
धनुष जग्य को ठाठ कियो है चहौं दिसि रोपे माँच ।
रंग भूमि नीकी कै खेली मल्ल सकेले पाँच ॥
काल्हि दूत आवन चाहत है राम कृष्न को लैन ।
नन्दादिक सब ग्वाल बुलाये अपनो वार्षिक[2] लैन ॥
हँसि ब्रजनाथ कहो तू साँचो तेरी कहो अब मानौं ।
'परमानंद स्वामी' आयौ काल कंस को भानौं ॥

[४७६] राग सारंग

अरी तू अब मथुरा ते आई ।
कहि धौं समाचार उहाँ के पूछत कुँवर कन्हाई ॥
कहा धौं बात चलत है नागरि नृपति कंस के आगे ।
काको भरोसो करत भूपति बैरु करत किहि माँगै ॥
सुनहु कृष्न तुम्हरी सपथ करौं सब कोऊ यह गावैं ।
बल समेत नंद के नंदन मधुपुरी देखन आवैं ॥
बातें कहत प्रेम रस बाढ़ो नैन रहे अरुझाई ।
'परमानंददास' वह नागरि घरहि कौन विधि जाई ॥

...ो

...र (अर्थ)

[४७७] राग

गोपाल जू की सब कोऊ करत दुहाई ।
गोरस बेचन गई बाबा की सौं हौं मथुरा सुनि आई ॥
विद्यमान नृप कंस नगर में राज तेज नहिं देख्यौ ।
जब तै बैर कियो माधौं सों जीवत मृतक करि लेख्यौ ॥
करत प्रसंसा प्रजा लोक सब कंस अवग्या मानै ।
ठकुराई हलधर केसौ की जन 'परमानंद' जानै ॥

[४७८] राग

अपने हाथ कंस मैं मारो ।
हँसि गोपाल कहत ग्वालन सौं रंग भूमि में डारयौ ॥
अहो बलराम अहो श्रीदामा आज रात को सपनो ।
हम तुम सबनि गये मधुपुरी मिल्यौ जाति कुल अपनो ॥
प्रातकाल भयौ अब तो आज संध्या पठयो दूत ।
'परमानंद प्रभु' भावी भाखी भयो चलन कों सूत ॥

[४७९] राग

गोकुल बैठे कान्ह मथुरा लैन कहै ।
सुनि रे राजा कंस तेरी बहुत सहै ॥
बासुदेव को नंदन बल्लभ छत्री जाति कहावै ।
मानुष देह धरे कमलापति गोधन बृन्द चरावै ॥
समाचार सब नारद भाखे सावधान रिपु कीनो ।
सोवत सिंह जगायो पापी सन्तन कों दुख दीनो ॥
बैठि मते अक्रूर पठायो राम कृष्ण कों लैन ।
'परमानंद स्वामी' आवेंहगे कंसहू पूजा दैन ॥

[४८०] राग सारंग

तैं यह बालक सुत करि पाल्यो ।
यह हम सुनो नाम कान्हर धारचो धाइ जसोदा उर धरि लाल्यो ।।
राजा कंस सुहृय लिखि पठई गुपत ही नंद गोप कों पाती ।
यह न बूझिये पैनी कोनी राखो प्रगट सान धरि काती ।।
याको प्रति उत्तर लिखि पठवहु को यह आहि कहाँ तै आयो ।
याको फल पावहिगो आगै मरम 'दास परमानंद' गायो ।।

[४८१] राग कल्याण

ब्रज जन देखे हो जीयत ।
मेरे नैन चकोर सुधाकर हरि मुख दिष्टि पीयत ।।
तुम अक्रूर चले लै मधुवन हरि मेरे प्रान अधार ।
राम कृष्न गोकुल के लोचन सुन्दर नंद कुमार ।।
इतनी करो पाइ लागति हौं बेगि घोष लै आवहु ।
'परमानंद स्वामी' हैं लरिका पाँय लागि समुझावहुँ ।।

[४८२] राग सारंग

सुनियत ब्रज में ऐसी चालि ।
माधौ राम संग काहू कै मधुवन चलन कहत हैं कालि ।
सब मिलि गईं जसोदा के घर, कौन तुम्हारे पाहुनो आयो ।
कहा है नामु पुत्र है काको कौने हित करि घोख पठायो ।।
घर घर धोन्न मथन सबहिन के भलो बात देखी नहीं माई ।
'परमानंद प्रभु' बिछुरन लागे विधिना विधि कछु और बनाई ।।

[४८३]

गोपालै मधुवन जिन लै जाऊ ।
मोहि प्रतीति कंस की नाहीं सोम बंस को राउ ॥
तुम अक्रूर बड़े के बेटा अति कुलीन मतिधीर ।
बैठत सभा सकल राजन की जानत हौ परपीर ॥
बहिन देवकी बसुदेव सुजन उनको दीनों त्रास ।
बालक हते निगड़ में राखे कारागृह में बास ॥
कहत जसोदा सुनु सुफलक सुत हरि मेरे प्रान अधार ।
'परमानंददास' की जीवनि छाड़ि जाऊ इहिबार ॥

[४८४]

विधिना विधि करी विपरीत ।
स्याम मनोहर बिछुरन लागे बालदसा के मीत ॥
लै अक्रूर चले मधुबन कौं सब ब्रज भयो भयभीत ।
साँचे भये तबहि हम जाने गरग जु गाये गीत ॥
चूक परी सेवन नहि पाये चरन सरोज पुनीत ।
'परमानंद' अब कबहि मिलेंगे सुबल सीदामा मीत ॥

[४८५]

कैसे माई जान गोपालहिं देहौ ।
कमल नयन मानिक पर हम दाँव कौन पै लैहौं ॥
कपटी कंस दूत पै कपटी कपटी सब परिवार ।
कपटी होंई राज के मंत्री कपट बन्यौ ब्यौहार ॥
धनुष जग्य को काज[1] रच्यौ कछु मन में औरे बात ।
तदपि बैर अधिक करि मान्यौ सुनी पूतना घात ॥
'परमानंद स्वामी' की लीला कहा जसोदा जानैं ।
ज्यों ज्यों पुरुषारथ दिखरावत बहुरि पुत्र करि मानैं ॥

---
१ - ब्याज

[४८६] राग सारंग

अब कैसे पावत हैं आवन ।
सुन्दरता सब गुन की पूरित ब्रज तजि चले मधुपुरी छावन ॥
कमल नयन मुख इन्दु मनोहर नर नारिन मन प्रीति बढ़ावन ।
नन्दकिसोर बाल लीला धरि बेनु नाद सीखे है गावन ॥
कंस तुषार त्रास तन दुर्बल नलिन देवकी दुख निवारन ।
जदुकुल कमल दिवाकर प्रमुदित तिमिर हरन प्रभु त्रिभुवन तारन ॥
रे अक्रूर क्रूर सुफलक सुत तोहि न बूझिये दूतहि आवन ।
'परमानंद स्वामी' मिलिवे को लागी है गोपी विधिहि मनावन ॥

[४८७] राग सारंग

गोविंद तुम जु चलत कौन राखै ।
ऐसे वचन कौन कहि जानैं वचन अमीरस भाखै ॥
जो हौं कहौं जाऊ जिन मथुरा तौ बड़ ढिठाई लागै ।
जो रथ गहौं अमंगल सूचक लोक लाज कुल भागे ॥
बिछुरत प्रान रहैं कैसे मोहन सोचत ही तन छीजै ।
'परमानंद प्रभु' रसिक सिरोमनि परै बिचार सो कीजै ॥

[४८८] राग सारंग

आजु की घरी बिलमि रहौं माधो चलन कहत हो कालहि जाऊ ।
कहे पराये कत लागत हो यह ब्रज अपनो नीको ठांऊ ॥
जो तुम त्याग करो गोकुल कौ तौ हौं काकै पेट समाऊं ।
'परमानन्द प्रभु' प्रान जीवन धन नैन ओट होत मरिजाऊँ ॥

[४८६]　　　　राग सारंग

वह तौ कठिन नगर की बात ।
देखि अवास लोग लोभ जिन उपजै तुम गोकुल ते पहिलैं जात ॥
सबै गुवालिन मिलि सिखवन लागी सुनियत पोच कंस कौ राज ।
पठ्यो दूत कपट मनसा करि नातर धोख कहा है काज ॥
दधि रोचन को तिलक कियो सिर रूपा सहित सुपारी पाँच ।
'परमानन्द स्वामी' चिरजीवहु तुम जिन लागहु ताती आँच ॥

[४६०]　　　　राग सारंग

देखो माई कान्ह बटाऊ से रहे जात ।
तब की प्रीति अब की रूखाई फिर पाछे बूझत नहीं बात ॥
रथ आरूढ़ भये बल कैसो वे देखो विमल धुजा फहरात ।
दोऊ बीर चले अति आतुर कहाँ बसहिंगे आजु की रात ॥
मधुवन आज महामंगल रस सब कोऊ गावत हैं गीत ।
'परमानन्द प्रभु' चले हैं दिखावन अपने चरन पुनीत ॥

मथुरा प्रवेश

[४६१]　　　　राग सारंग

संग तिहारे अब लैहुँगी रजधानी ।
कंस मारि लूटि रंग भू में आगे चलेगी कहानी ॥
करिहौं सत्य गिरा नारद की अहो अकास जु भई है बानी ।
कहत बात अक्रूर के आगे 'परमानन्द प्रभु' सबै सुखदानी ॥

[४९२] राग साषंग

आए आए सुनियत बाग में एलान भयो ।
तब लगि मदन गोपाल देखन कौ जासूस गयो ।।
कान लागि कै कह्यो मतै की हौं बसुदेव पठायो ।
नंद गोप तुम भलीए कीनी लै गोपाल हि आयो ।।
काली दमन पूतना सोषन यहै भरोसो आवै ।
मथुरा राज नंदनंदन को 'जन परमानन्द' गावै ।।

[४९३] राग सारंग

निंदक मारिये आस न कीजै ।
नाहिन दोष सुनहु नंदनंदन आपुन मधुपुरी लीजै ।।
यहै धर्म नित प्रति स्तुति गावै संतन कौं सुख दीजै ।
दानव सेन समुद्र बढ़्यो है सो अगस्त ज्यों पीजै ।।
कहत ग्वाल सब हरि के आगै जदुकुल आनन्द छीजै ।
'परमानन्द स्वामी' सुख सागर सो करि आनन्द जीजै ।।

[४९४]

मथुरा देखिये नंदनंदन ।
भले अवास रचे कंचन के कैसो कंस निकन्दन ।।
बैठे मोर झरोखा बोलत मारग सिंचित चन्दन ।
भले लोक सनमुख आवत है चरन कमल रज बंदन ।।
कहत स्रीदामा सुनहु स्याम घन मारि लेउ यह पाटन ।
'परमानंद स्वामी' को ठाकुर बहुतै दैत्यन को डाटन ।।

[४६५] राग

ये बसुदेव के दोऊ ढोटा ।
गौर स्याम तन नील पीत पट कल हंसन के जोटा ॥
कुन्डल एक बाम स्रुति जाके सो रोहिनी को अंस ।
उर बनमाल देवकीनंदन जाहि डरत है कंस ॥
लै राखे ब्रज सखा नंद ग्रह बालक आस दुराई ।
द्वै समान विराट के से लोचन उदित भये हैं आई ॥
काली दमन पूतना सोषन लीला गुणनि अगाध ।
'परमानंद प्रभु' प्रगट मर्दन खल अभय करन सुरसाध ॥

[४६६] राग

आये आये हो दूर है नंद ढोटा ।
देखत मधुपुरी के सब तरुन बिरध अरु छोटा ॥
गौर स्याम तन नील पीत पट बनी दुहों की जोटा ।
सुफलक सुत बालक कत ल्यायौ कंस असुर बड़ खोटा ॥
गहे केस कर धाइ माई पर सीस धरनि पर लोटा ।
'परमानंद' बलि जाइ वै भुजन कों हत्यौ कंसकुल मोटा ॥

[४६७] राग

मुकंद देखि देखि जीवति ।
सुन्दर रूप नैन भरि पीवति ॥
रे अक्रूर क्रूर बटमारे ।
प्रान काढ़ि लै चल्यौ हमारे ॥
बिरहाकुल भूली ब्रजनारी ।
बारपै[1] चित्र लिखि ज्यों सारी ॥
छाँड़ि लाज रथ पकर्यो धाई ।
चरन कमलन जियौं रहौ कन्हाई ॥
प्रान गये तन केतिक आसा ।
कठिन प्रीति 'परमानंद दासा' ॥

१—द्वारपै

[४६८] राग सारंग

देखो माई गोविंद अपने रस को।
बल विद्या कैसेहू नहिं पैये केवल एक भगत के बस को ॥
गुवालिन के संग गाय चरावत अनुदिन परचो दूध को चसको।
छीर समुद्र में बसत निरन्तर संग विचार करत वा जस को ॥
'परमानंद प्रभु' त्रिभुवन ठाकुर कैसे होत कंस के गस को।
मारे मल्ल असुर सब जीते जदपि कान्ह बरस है दस को ॥

[४६६] राग सारंग

आवै निरंकुस मातौ हाथी।
देखि नयन भरि कुँवर साँवरो संकरसन को साथी ॥
कहत नागरी सब मथुरा की कंस पगार ढहायौं।
सब काहू को भलो करेगो जो गोकुल तैं आयो ॥
तोरचौ धनुष कुवलया मारचौ चार्यों मल्ल पछारे।
'परमानंददास' बलिहारी मंगल किये हमारे ॥

[५००] राग सारंग

आयो मथुरा मध्य हठीलो।
देखउ माई मोहन मूरति, कंस हृदय को कीलो ॥
कुंजर दन्त कंध धर लीने रुधिर बिन्दु लपटाने।
सोभा भई स्याम सुन्दर तन मोरचंद सिर बाने ॥
गावउ नाचहु करहु कुलाहल घर घर मंगलचार।
'परमानंददास' को जीवनि नायक नंदकुमार ॥

[५०१] राग सारंग

देखो गोपाल कौ तमासो ।
अब केतौ नीकी बिधि उनपै जाते बरजै बासौ ॥
मारे दुष्ट पंथ सब राखे सुबस कियौ अब देव निवासौ ।
'परमानन्ददास' बलिहारी आस कियौ है रासौ ॥

[५०२] राग सारंग

काहे कौं मारग में अध छेड़त ।
नंदराइ को मातो हाथी आवत असुर लपेटत ॥
कहत गवाल सब सखा नंद के गल गरजत भुज ठोकत ।
कंस बंस को परिचित करि है कौन भरोसे रोकत ॥
नाहिन सुनी ? पूतना मारी तृनाबर्त बध केसी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ये गोपाल पेरेसी ॥[१]

[५०३] राग सारंग

सुनियत मल्ल माधौ आए ।
चरन पखारि बैठारि सिंघासन विविध भाँति माला पहिराए ।
तोर्यो धनुष असुर सब मारे बालक आनँद मोद बढ़ाए ।
मांगि लियौ कुबजा को चन्दन बाँको[२] कूबर बाँह लगाए ॥
फिरि आए डेरा पै पुन पुन बाबा नंद तहाँ हो पाए ।
पाऊँ धारि[३] के भोजन कीनो 'परमानन्ददास' गुन गाए ॥

१—पारसा (फारसी प्रयोग) अथवा परेश
साधु चरित—अर्थ
२—वाको
३—पाइँ धोइ कैं

[५०४] राग गौरी

लाग्यौ प्रीति कौ मोहिला हो ।
देखन रूप नगर सब लागौ प्रीति कौ मोहिला हो ॥
जब ते सुने नन्दनन्दन कों लै गए अक्रूर ।
मथुरा ढोल दमामे बाजे कंस करेंगे चूर ॥ प्रीति को०
नरनारी सब कौतुक आए ठाड़े देहिं असीस ।
'परमानन्द प्रभु' राज तिहारो इहाँ हीं रहो जगदीस ॥ प्रीति को०

[५०५] राग सारंग

महावत मत करही हाथी हातो ।
जिमि रावन पड़हिगो पापी दै छाती पर लातो ॥
दन्त ऊपार मारि या गज कौं अबहि करौं भू पातो ।
तबहि पाऊँ धरौं आगे यह मारि कुबलिया मातो ॥
रंग भूमि में ग्रीवा कंस की अबहीं मैं तोरौं ।
बन्दि बास बसुदेव देवकी तिनके बन्धन छोरौं ॥
उग्रसैन सिर छत्र धरौं अरु मथुरा जादवराज ।
'परमानन्द प्रभु' कहत सदा ही मोहि भगतन सों काज ॥

[५०६] राग सारंग

काहे तैं मदन गोपाल बिसार्यौ[१] ।
कीन्हों बैर स्याम सुन्दर सो भोज बंस सब सोध्यौ ॥
माधौ तब मानुष करि जान्यौ परब्रह्म अवतारी ।
बीरसैन माइ कहत रुदन करि दास नृपति की नारी ॥
ऐसे जानि बहुरि जिनि कोऊ नन्दलाल सौं खोरै ।
'परमानन्द' कंस अभिमानी कितौ कि भीत पर दौरै ॥

---

[१] ...गारयौ

[५०७] राग सारंग

मथुरानाथ सों बिगारी ।
रंग भूमि महँ परचौ भयानक क्यों पति रहै तुम्हारी ।।
तब काहे चेत्यौ नहिं पापी जबहिं पूतना मारी ।
मूरख अधम करम सब तेरे बालक सिष्टी पछारी ।।
बिलखि मही दोऊ कर मीडे कहै कंस की नारी ।
'परमानंददास' को ठाकुर गिरि गोवर्धन धारी ।।

[५०८] राग सारंग

माधौ सों कल तोरिये ।
कीजै प्रीत स्याम सुन्दर सों बैठे सिंह न रोरिये ।।
बहन देवकी पाँय लागिये वसुदेवै बंदि छिड़ाइये ।
'परमानंद' गोकुल को ठाकुर नंद गोप पहराइये ।।

[५०९] राग सारंग

केसी तृनावर्त जिन मारचो ।
काली को बल नाथ्यो ।।
एक हाथ गोवर्धन गिरि पर ।
इहाँ आए पर साध्यौ ।।
सुनहो कंस हमारी बातें ।
मथुरा सचु जो चाहै ।।
'परमानन्द' स्वामी सो हिल ।
मिलि निज नातो निरबाहै ।।

[५१०] राग सारंग

गरब काहू को सहि न सके ।
रावन हिरनकसिपु की इहि गति भई काहेको कंस बके ॥
आँख देखि, कहा साखि बूझिये बलि इहि कहा कियो ।
जो विष देन गई ही गोकुल पूतना प्रान पियो ॥
सूधो करै ताही को नीको चरन सरोज गहै ।
'परमानन्द प्रभु' सब विधि समरथ वेद पुरान कहे ॥

[५११] राग सारंग

जीत्यौ री जीत्यौ नन्दनन्दन व्योम दमामे बाजे ।
बरषत कुसुम देवगन गावत रितु बरषा ज्यों गाजे ॥
नाचत ग्वाल बजावत मुरली रंग भूमि में राजे ।
मल्ल पछारि कंस सिर तोर्‌यो नौतन भूषन साजे ॥
तबहू हम आनंद में रहते मदन गोपाल निवाजे ।
'परमानंद प्रभु' गोधन चारत डोलत कानन भाजे ॥

[५१२] राग सारंग

अपने जन कौ राज दियौ ।
उग्रसैन बैठारि सिंहासन आपु जुहार कियौ ।
रंग भूमि में मल्ल पछारे कंस बाहु बल मार्‌यौ ।
हत्यो रजक लीने नानापट, पूरब बैर सम्हार्‌यौ ।
काँपे हियौ कौन करे ऐसी किहि इहि औसर आवै ।
ठाकुर करे दास की सेवा सुख दै काज करावै ॥
यामें कहा घटै स्रीपति को जानि गरीब निवाजे ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर जस तिहुँ लोक बिराजे ॥

[५१३]

नीको मथुरा नगरु ।
जोतिवंत[१] सदा संतन हित स्याम सगरु ॥
जनम मरन मुनि व्रत दायक मुक्ति अगरु ।
कोऊ कैसे रहौ करि नाही बगरु ॥
उत्तम मद्धिम अधम भेद नहि एकहि डगरु ।
'परमानंद स्वामी' महातम अधिक लगरु ॥

———

१—गतिवंत

नंद का गोकुल प्रत्यागमन

[५१४] राग मल्हार

रथ चढ़ि आवत गिरिधर लाल ।
रतन खचित अरु मुकुताहल लागे नव पदमन की माल ॥
वर दुलरी सिरमौर चंद्रिका कुंडल गंड बिसाल ।
बसन पीत परिधान मनोहर विमल गुंज वनमाल ॥
सोभित सुभग चारु लोचन मृग मोहत मन्मथ साल ।
झलकत ललित कपोल लोल पर स्रमजल बूंद रसाल ॥
अमर नारि अवलोकि रूप छबि देखि डिगे दिगपाल ।
तन मन धन वारत 'परमानंद' बिबस भई ब्रजबाल ॥

[५१५]

जसोदा रथ देखन कों आई ।
देखो री मेरौ लाल गिरेगौ कहा करो मेरी माई ॥
मेरो ढोटा पालने सोवै उधरक उधरक रोवै ।
अघासुर बकासुर मारै नैन निरंतर जोवै ॥
देहरी उलंघन गिर्‌यो री मोहन सोई घात मैं जानी ।
'परमानंद' होत तहाँ ठाढ़े कहत नंदजू की रानी ॥

गोपिन के विरह के पद

[५१६] राग सारंग

कौन बेर भई चलेरी गोपालै ।
हौं मलसार गई ही न्यौतैं बारबार बूझत ब्रजबालै ॥
तेरे तन कौ रूप कहाँ गयो भामिन अरु मुख कमल सुकाइ रह्यौ ।
तबलौं भाग गयौ हरि के संग हृदै शुकोमल बिरह दह्यौ ।
को बोलै को नैन उघारैं को प्रति उत्तर देइ बिकल मन ।
जो सरबस अक्रूर चुराथो 'परमानंद स्वामी' जीवनधन ॥

[५१७] राग सारंग

चलत न देखन पाए लाल ।
नीके करि न बिलोक्यौ हरि मुख इतनोई रह्यौ जिय साल ॥
लोचन मूँदि रहे जल पूरित दिष्टि भई कलिकाल ।
दूर भए रथ ऊपर देखे मोहन मदन गोपाल ॥
मोंडल हाथ बिसूरत सुन्दरि आतुर बिरह बिहाल ।
'परमानंद स्वामी' पुनि चितवौ[1] अंबुज नैन बिसाल ॥

[५१८] राग सारंग

चलत न कान्ह[2] कह्यौ रहनो ।
बिन ब्रजनाथ भई हम सब लागीं दुख सहनो ॥
गोकुल के ससि कान्ह बिना चाह्यौ मन गहनो ।
लै अक्रूर चले गोविन्द कौं मधुपुरी कौ लहनो ॥
माई बिरहा प्रचुर भयो अब लाग्यो देह दहनो ।
'परमानंददास' को ठाकुर संग समुझि लोचन जल बहनो ॥

१—चितयो
२—काहू

[५१९] राग सारंग

जिय की साध जिय ही रही री।
बहुरि गोपाल देखन न पाए बिलपति कुंज अहीरी ॥
एक दिन हों जु सखी इहि मारग बेचन जात दहीरी।
प्रीति कें लये दान मिस मोहन मेरी बाँह गहीरी ॥
बिनु देखें पल जात कलप भरि बिरहा अनल दहीरी।
'परमानंद स्वामी' दरसन बिन नैनन नदी बही री ॥

[५२०] राग सारंग

तहाँ ही अटक जहाँ प्रीति नहीं री।
वह रस गयो जु बाल दसा को अब गोपाल मति और भई री।
कौन दोष दीजे ब्रजनाथहिं सोइ परम्परा निबहीरी।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गोपी ताप तई री ॥

[५२१] राग सारंग

केते दिन भये रैनि सुख सोये।
कछु न सुहाई गोपालहिं बिछुरे रहे पूँजी सी खोये।
जबतें गए नंदलाल मधुपुरी चीर न काहू धोये।
मुख तंबोर नैन नहि काजर बिरह सरीर बिगोये ॥
ढूँढत बाट घाट बन परबत जहँ जहँ हरि खेल्यौ।
'परमानन्द प्रभु' अपनो पीताम्बर मेरे सीस पर मेल्यौ ॥

[५२२] रा॰

दिन दिन तोरन लागै नातो ।
मथुरा बसत गोपाल पियारो प्रेम कियो हठिहातो ॥
इतनी दूर जु आवत नाहिन मन औरे ठाँ रातो ।
मदन गोपाल हमारो ब्रज की चालत नाहिन बातो ॥
विरह विथा अब जारन लागी चंद भयौ अब तातो ।
'परमानन्द स्वामी' के बिछुरे भूलि गई अब सातौ ॥

[५२३] राग

माधौ काहे कौं दिखाई काम की कला ।
तुम सौं जोरि सबनि सौं तोरी नंद के लला ॥
जो गोपाल मधुबन ही बसते गोकुल बास न करते ।
जो हरि गोप भेष नहिं धरते कत मेरो मन हरते ॥
तुम्हरो रूप तजि और न भावै चरन कमल चित बाँध्यौ ।
'परमानन्द प्रभु' द्रोन बान ज्यौं बहुरि न दूजो साँध्यौ ॥

[५२४] राग

कान्ह मनोहर मीठे बोलैं ।
मोहन मूरति कब देखूँगी सरसिज चंचल डोलै ॥
स्याम सुभग तन चर्चित चंदन पहिरैं पीत निचोलै ।
हीरा लाल कंठ मनि माला नंद लये बहु मोलै ॥
वेनु बजावत गावत आवत उर कपाट प्रभु खोलैं ।
'परमानंद स्वामी' सुख सागर बाल सखा सब बोलैं ॥

[५२५] राग सारंग

कमल नयन बिन और न भावै रुदन करि के नैंन गँवावै ।
अहनिस रसना कान्ह कान्ह रट बिलख बदन ठाढ़ी जोवत बट ॥
तुमरे परस बिन ब्रथा जात है मेरे उरज के कंचन घट ।
नंदगोप सुत कबहि मिलहुगे जबहि हौंहिगो सीस सुबल लट ॥
दुर्बल भई देह छाड़ै सुख और बात बिसरी मलिन भये पट ।
'परमानंद प्रभु' सबहि बिसरि गयो हमरो तुमरो खेल जमुना तट ॥

[५२६]

माधौं तें प्रीति भई नयी ।
कितनो दूर यह मथुरा ते निकटहि कियो बिदेस ॥
कागद मसि खूटि गई पठयो न सन्देस ।
हरिनी ज्यौं जोवत मग ऊरध लेत ऊसास ।
यह दसा देखि जाहु 'परमानन्ददास' ॥

[५२७]

पथिक इहि पंथ न कोऊ आवै ।
गोकुल देख दहिनो बाँयौ हमहि देखि दुखियावै ।
कासौं कुसल संदेसौं पाऊँ को प्रीतम मन भावै ॥
मथुरा निकट करी सत जोजन को हरि बात सुनावै ।
ब्रजबनिता बिरहानल व्यापित को तन तपिन बुझावै ।
बिधि प्रतिकूल 'दास परमानंद' कोउ न ताप नसावै ॥

[५२८]

गोविन्द बीच दै सर मारी ।
उर तन कुटी बिरह दावानल फूँकि फूँकि सब जारी ।
सोच सोच तन छीन भयो अति कैसी देह बिगारी
जो पहले विधि हरि के कारन अपने हाथ सँवारी ।
बरु गोपी घर जन्म न लेती रहत गरभ में डारी ।
'परमानंद' बिरहनी हरि की सोचत अरु पछताई ।

[५२९]

मेरौ मन गोविंद सौ मान्यौं तातैं और न जिय भावै हो ।
जागत सोवत यहै उत्कंठा कोउ ब्रजनाथ मिलावै हो ॥
बाढ़ी प्रीति आनि उर अंतर चरन कमल चित दीनौं ।
कृष्न बिरह गोकुल की गोपी घर ही में बन कीनौं ॥
छाँड़ि अहार देह सुख और न चाहे काऊ ।
'परमानंद' बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ ॥

[५३०] राग

माई ! को इहि गाय चरावै ।
दामोदर बिन अपनु संघातिन, कौन सिंगार करावै ॥
सब कोई पूजै दीप मालिका, हम कहा पूजैं माई ।
राम गोपाल मधुपुरी गमने धाय धाय ब्रज खाई ॥
दाम दोहिनी माट मथानो गाय बाछि[1] को पूजें ।
काके मिलें चलें ये गोकुल कौन बेनु कल कूजें ॥
करत प्रलाप सकल गोपीजन, मन मुकुंद हरि लीनों ।
'परमानंद प्रभु' इतनो दूर बसि मिलन दोहिलौ कीनों

१—पास (पाठभेद)

[५३१] राग केदारा

रात[१] पपीहा बोल्यौ री माई।
नींद गई, चिंता चित बाढ़ी, सुरति स्याम की आई॥
सावन मास देखि बरखा रितु हौं उठि आँगन धाई।
गरजत गगन दाँमिनी दमकत तामें जीउ उड़ाई॥
राग मलार कियौ जब काहू मुरली मधुर बजाई।
बिरहिन बिकल 'दास परमानंद' धरनि परी मुरझाई॥

[५३२] राग सारंग

मोहन वो क्यों प्रीति बिसारी।
कहत सुनत समुझत उर अन्तर दुख लागत है भारी॥
एक दिवस खेलत बन भीतर बैनी हाथ सम्हारी।
बीनत फूल गयो चुभि काँटौ ऐसी सही बिथा री॥
हम पै कठिन हृदै अब कीन्हों लाल गुवरधन धारी।
'परमानन्द' बलवीर बिना हम मरत बिरह की मारी॥

[५३३] राग गोरी

ब्रज की औरे रीत भई।
प्रात समय अब नाहिन सुनीयत, घर घर चलत रई।
ससि की किरन तरनि सम लागत, जागत निसा गई।
उद्भट भूप मकर केतन की आग्या होत नई॥
बृन्दाबन की भूमि भाँमती, ग्वालिन्ह छाँड़ि दई।
'परमानन्द स्वामी' के बिछुरे, बिधि कछु और ठई॥

---

[१] ...ैन (पाठभेद)

[५३४] राग सारंग

ता दिन सरबस देहुँगि बधाई ।
जा दिन दौरि कहै कोहु सजनी आए कुँवर कन्हाई ॥
मैं अपनों सौ बौहौत करत हों लाल न देत दिखाई ।
सोवत जागत दिन अवलोकत, सो मन कबहुँ न जाई ॥
मेरी उनकी प्रीति निरंतर बिछुरत पल न घटाई ।
'परमानंद' बिरहनी हरि की सोचत अरु पछिताई ॥

[५३५] राग कल्यान

हरि बिन बैरिन रैन बढ़ी ।
हम अपराधिन निठुर बिधाता काहे सँवारि गढ़ी ॥
तन धन जोवन बृथा जात है बिरहा अनल रढ़ी ।
नंद नंदन को रूप विचारत निस दिन होरि चढ़ी ॥
जिहि गुपाल मेरे बस होते सो विद्या न पढ़ी ।
'परमानंद स्वामी' न मिलैं तो घर ते भली मढ़ी ॥

[५३६] राग सारंग

उधौ नाहिन परत कही ।
जबते हरि मधुपुरी सिधारे बौहोतहि बिथा सही ॥
सुमरि सुरति वा स्याम की बिरहा अनल दही ।
निकसत प्रांन अटकि में राखे अब धौं जात रही ॥
'परमानन्द स्वामी' के विन अब नैनन नदी बही ।

[५३७] राग सारंग

माईरी चंद लग्यौ दुख दैन ।
कहाँ वौ देस, कहाँ मन मोहन कहाँ सुख की रैन ॥
तारे गिनत गईरी सब निस नेंक न लागे नैन ।
'परमानन्द प्रभु' पिय बिछुरे ते पल न परत चित चैन ॥

[५३८] राग गौरी

बदरिया तू कित ब्रज पै दौरी ॥
असलन साल सलामन लागी बिधना लिख्यौ बिछौहरी ॥
रहो जु रही जाहु घर अपने दुख पावत है किसोरी ।
'परमानन्द प्रभु' सों क्यों जीवै जाकी बिछुरी जोरी ॥

[५३९] राग सारंग

पतियाँ बाचेंहू न आवैं ।
देखत अंक नैंन जल पूरे गद्‌गद्‌ प्रेम जनावै ॥
नंदकिसोर सुहथ अच्छर लिखि ऊधौ हाथ पठाए ।
समाचार मधुबन गोकुल में मुख ही बाँचि सुनाए ॥
ऐसी दिसा देखि गोपिन की भगत मरम सब जान्यों ।
मन क्रम बचन प्रेम पद अंबुज 'परमानंद' मन मान्यों ॥

[५४०] राग सारंग

गोपाल बिन कैसे ब्रज रहिबौ ।
धूसर अंग उठाइ गोद ले लाल कोंन सों कहिबौ ॥
जो मधुपुरी दिवस लागत है सोच सूल तन सहिबौ ।
'परमानंद स्वामी' कों तजिकें सरन कोंन की गहिबौ ॥

[५४१] राग सारंग

कमल नयन बिन और न भावै अह निस रसना कान्ह कान्ह रट ।
रोदन करिकैं नैन गंवाये बिलख बदन ठाढ़ी जोवति बट ।
तुमरे परस बिन बृथा जात है मेरे उरज धरे कंचन घट
नंद गोप सुत जबहि मिलहुगे तबहि होंहिंगी सीस सकुल लट ।
दुर्लभ देह छाड़े सबहि सुख बातें बिसरी मलिन भये पट
'परमानंद प्रभु' अबहि बिसरि गयो हमरो तुम्हरो खेल जमुन तट ।

[५४२] राग सारंग

कौन रसिक है इन बातन को ।
नंदनंदन बिनु कासौं कहिये सुनि री सखी मेरे दुखिया मन को ।
कहाँ वे जमुना पुलिन मनोहर कहाँ वह चंद सरद रातिन को ।
कहाँ वे मन्द सुगंध अमल रस कह वे षट्पद जलजातन कौ ।।
कहाँ वे सेज पौढ़िबौ बन को फूल बिछौना मृदु पातन को ।
कह वे दरस परस 'परमानन्द' कोमल अन कोमल गातन को ।।

[५४३] राग सारंग

माई को मिलवै नंद किसोरैं ।
एक बार को नैन दिखावे मेरे मन के चोरैं ।।
जागत जाम गिनत नहीं खूटत क्यों पाऊंगी भोरैं ।
सुनरी सखी अब कैसे जीजै सुन तमचुर खग रोरैं ।।
जो अह प्रीति सत्य अंतरगति जिन काहूऽब निहोरैं ।
'परमानंद प्रभु' आन मिलेंगे सखी सीस जिन फोरै ।।

* प्रस्तुत पद में विप्रलंभ शृङ्गार द्रष्टव्य है—संपादक

[५४४] राग सारंग

ता दिन काजर देहौं सखोरी ।
जा दिन नंदनंदन के नैना अपने नैना मिलै हौं सखीरी ॥
करो न तिलक तबसों न रतन बसन पलटि पहरै हौं सखोरी ।
करौं हरतार सिंगार सबन को कंगना माँझ न बधै हौं सखीरी ॥
अब तो जिय ऐसी बनि आई भूले अनत चितै नहि देहौं सखीरी ।
'परमानंद प्रभु' यहै परेखो[१] अब बारहि बार लजैहौं सखीरी ॥

[५४५] राग सारंग

माधौ माई मधुबन छाये ।
कैसे रहें प्रान गोविन्द बिनु पावस के दिन आए ॥
हरित बरन बन सकल द्रुम पातें मारग बाढ़ी कीच ।
जल पूरति रथ को गम नाहीं बैरिन जमना बीच ॥
काके हाथ सँदेसों पठवउं कमल नैन के पास ।
आवत जात इहाँ कोउ नाहिन सुन 'परमानंददास' ॥

[५४६] राग सारंग

मधु माधौ नीकी रितु आई ।
खेलन जोग अबहि वृन्दावन कमल नैन हरि देख्यो माई ॥
मंद सुगंध बहै मलयानल कोकिल कूजत गिरा सुहाई ।
मदन महोपति कोपि पठानों दहों दिसि [जाकी] फिरि दुहाई ॥
पथिक बीर संदेस हमारे चरन कमल गहि कहियो जाई ।
'परमानन्द प्रभु' औध बदी हो नाथ ! कहाँ औसेर लगाई ॥

[१] दिशा (अर्थ)

[५४७] राग

इतनो दूर मदन मोहन की कछु आवत नाहिन पाती ।
ज्यों ज्यों गहरु करत है मधुबन त्यों त्यों धधकत छाती ॥
गत बसन्त ग्रीषम रितु प्रगटी बनस्पति सब पाती[1] ।
चातक मोर कोकिला कलरव ए बिरहिनि के घाती ॥
कहाँ जाहि कौन सों कहिए बोलि जगावहि राती ।
'परमानन्द प्रभु' चलत न जाने, तौ[2] संगहि उठ जाती ॥

[५४८]

कहियो अनाथ के नाथहि ।
स्याम मनोहर सब चाहति है बहुरि तुम्हारो साथहि ॥
बारबार बिरिहनि ब्रज बनिता सुमिरत है गुन गाथहि ।
मुरली अधर लोल कर पल्लव ध्यान करत ओई हाथहि ॥
लोचन सजल प्रेम बिरहातुर पुनि पुनि फोरति माथहि ।
'परमानंद' मिलन बहुरि कब दुखित निहारति पाथहि ॥

[५४९] राग

गोबिन्द गोकुल की सुधि कीबी ।
पहिलेहि नाते स्याम मनोहर इतनीक पाती दीबी ॥
गाम तुम्हारो देस तुम्हारो भूमि तुम्हारो देवा ।
चूक परी अपराध हमारे नाथ न कीनी सेवा ॥
चंदन भील पुलिंदी के घर ईंधन करि ताहि माने ।
'परमानंद प्रभु' जहां सो तहाँ, जो न महातम जाने ॥

१—गिर गईं (अर्थ)
२—अन्यथा (अर्थ)

[५५०] राग सारंग

ऐसी मैं देखी ब्रज की बात ।
तुम बिन कान्ह कमल दल लोचन जैसे दूल्हे बिन जात बरात ।।
वेई मोर कोकिला वेई वेई पपीहा बन बोलत ।
वेई ग्वाल गोपिका वेई वेई गोधन कानन डोलत ।।
यह सब संपति नंद गोप की तुम्हरे प्रसाद रमा के साथ ।
'परमानंद प्रभु' एक बार मिलि यह पतियां लिखि मेरे हाथ ।।

[५५१] राग गौरी

काहे को गुवालि सिंगार बनावै ।
सादिए बात गोपालहिं भावै ।।
एक प्रीति में सब गुन नीके ।
बिन गुन अभरन सबही फीके ।।
कनकहि नूपुर लेहि उतारी ।
पहिलें बसन पहिर ब्रज नारी ।।
हरि नागर सबही को जानें ।
'परमानन्द प्रभु' हित की मानें ।।

[५५२] राग सारंग

कहाँ वे तबके दिनन के चैन ।
जब गोपाल गोकुल में रहते सुंदर अम्बुज नैन ।
जद्यपि रास गोप गोपी कुल तब गोधन के ठाठ ।
ए ब्रज बेनु सकल संपति सुख ए जमुना के घाट ।।
ए कृष्न बिनु सबही दीसतु है चन्द हीन जैसे राति ।
'परमानंद स्वामी' के बिछुरे गई देह कल काँति ।।

[५५३] राग सारंग

ब्रज के बिरही लोग बिचारे ।
बिन गोपाल ठगे से ठाड़े अति दुर्बल तन हारे ॥
मात जसोदा पंथ निहारत निरखत साँझ संवारे ।
जो कोउ कान्ह कान्ह कहि बोलत अँखियन बहुत पनारे ॥
यह मथुरा काजर की रेखा जो निकसे सो कारे ।
'परमानंद स्वामी' बिनु ऐसे जैसे चंदा बिनु तारे ॥

[५५४] राग सारंग

सब गोकुल गोपाल उपासी ।
जो गाहक साधन के ऊधो सो सब बसत ईसपुर कासी ॥
जद्यपि हरि हम तजी अनाथ करि अब छाड़त क्यों रति की फासी ।
अपनी सीतलता तऊ न छाँड़त जद्यपि विधु है राहु गरासी ॥
किहि अपराध जोग लिखि पठयौ प्रेम भजन ते करत उदासी ।
'परमानंद' ऐसी को बिरहन माँगे मुकुति बिनु गुन रासी ॥

[५५५] राग विहाग

प्रीति तौ काहूँ सौं नहिं कीजै ।*
बिछुरें कठिन परै मेरो आली कहौ कैसे करि जीजै ॥
एक निमिष या सुख के कारन युग समान दुख लीजै ।
'परमानंद प्रभु' जानि बूझकै कहो कि विषजल क्यों पीजै ॥

* परमानन्ददास जी का प्रेम विषयक विश्वास इन पदों में द्रष्टव्य है ।—सम्पादक

[५५६] राग मल्हार

लगन को नाम न लीजै सखी री ।
लगन को मारग अति ही कठिन है पाँय धरैं तन छीजै सखी री ।।
जो तू लगन लगायो चाहै तन की आस न कीजै सखी री ।
'परमानंद स्वामी' के ऊपर बार बार तन दीजै सखी री ।।

[५५७] राग सारंग

या हरि को संदेस न आयौ ।
बरस मास दिन बीतन लागे बिनु दरसन दुख पायौ ।।
घन गरज्यो पावस रितु प्रगटी चातक पीउ सुनायौ ।
मत्त मोर बन बोलन लागे बिरहिन बिरह जनायौ ।।
राग मल्हार सह्यौ नहिं जाई काहू पंथी कहि गायौ ।
'परमानंददास' कहा कीजे अब कृष्न मधुपुरी छायौ ।।

[५५८] राग सारंग

ब्याकुल बार न बाँधति छूटे ।
जब तें हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब टूटे ।।
सदा अनमनो बिलख बदन अति यहि ढंग रहति खिलौना फूटे ।
बिरह बिहाल सकल गोपीजन अभरन मनहुँ बटकुटन लूटे ।।
जल प्रवाह लोचन तें बाढ़े बचन सनेह अभ्यन्तर घूटे ।
'परमानंद' कहौं दुख कासों जैसे चित्र लिखी मति टूटे ।।

[५५६]

बहुरि हरि आवहुगे किहि काम ।
रितु बसंत अरु मकर बितीते अरु बादर भये स्याम ।।
तारे गगन गनत री माई बीते चारयौ याम ।
और काज सबै बिसरि गये हरि लेत तुम्हारौ नाम ।।
छिनु आँगन छिनु द्वारे ठाढ़ी हम सूखत हैं धाम ।
'परमानंद प्रभु' रूप बिचारत रहे अस्थि अरु चाम ।।

[५६०]

वह बात कमल दल नैन की ।
बार बार सुधि आवत सजनी, वह दुरि दैनी सैन की ।।
वह लीला वह रास सरद को गौरज मंडित आवनि ।
अरु वह ऊँचे टेर मनोहर मिष करि मोहि सुनावनि ।।
वे बातैं सालैं उर अन्तर, को पर पीर ही पावै ।
'परमानंद' कह्यौ न परै कछु हियो सो रुंध्यो आवै ।।*

[५६१]

सुधि करत कमल दल नैन की ।
भरि भरि लेत नीर अति आतुर रति वृन्दाबन चैन की ।
दै दै गाढ़े आलिंगन मिलनि कुंजलता द्रुम अयन की
वे बतियाँ कैसे कै बिसरति बाँह उसीसे सयन की
बसि निकुंस में रास खिलाए बिथा गँवाई मयन की
'परमानंद प्रभु' सो क्यों जीवैं जो पोषी मृदुबैन की

* प्रस्तुत पद में भगवल्लीला की ओर संकेत है ।

[५६२] राग धनाश्री

पिछौरा खासा को कटि बाँधे ।
वे देखो आवत नंदनंदन नयन कुसुम सर साँधे ॥
स्याम सुभग तन गोरज मंडित बाँह सखा के काँधे ।
चलत मंदगति चाल मनोहर मानों नटवा गुन गाँथे ॥
यह पद कमल अब ही प्रापत भये बहुत दिनन आराधै ।
'परमानन्द स्वामी' के कारन सुरमुनि धरत समाधै ॥

[५६३] राग धनाश्री

कमल नैन मधुबन पढ़ि आए ।
निर्गुन को संदेस लादि गोपिन पै लाए ॥
ऊधौ पढ़ि पढ़ि अब भए ग्यानी ।
नीति अनीति सबै पहिचानी ॥
निर्गुन ध्यान तबहि तुम कहते ।
सबै समय ब्रत दृढ़ करि गहते ॥
नैनन ते सरिता कत बहती ।
हरि बिछुरन को सूल न सहती ॥

[५६४] राग धनाश्री

हरि तेरी लीला की सुधि आवै ।*
कमल नैन मन मोहन मूरति के मन मन चित्र बनावै ॥
कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगन कबहुँक पिक ज्यौं गावै ।
कबहुँक संभ्रम 'क्वासि क्वासि' कहि संग हिलिमिलि उठि धावै ॥
कबहुंक नैन मूँदि उर अन्तर मनि माला पहिरावै ।
मृदु मुसुकानि बंक अवलोकनि चाल छबीली भावै ॥
एक बार जाहि मिलहि कृपा करि सो कैसें बिसरावै ।
'परमानन्द प्रभु' स्याम ध्यान करि ऐसे बिरह गँवावै ॥

*स्तुत पद में बिरह की परमानुभूति की अभिव्यक्ति है । इसी पद को श्रवण कर महाप्रभु
ाचार्य जी तीन दिन तक मूर्च्छित रहे थे :—संपादक

[५६५] राग बिभास

कैसे कीजै बेद कह्यौ ।*
हरिमुख निरखत बिधि निषेध कौ नाहिन ठौर रह्यौ ॥
दुख को मूल सनेह सखीरी सो उर पैठि रह्यौ ।
'परमानंद' प्रेम सागर मँह परचौ सो लीन भयौ ॥+

[५६६] राग बिहाग

माई बरसानों सुजस[१] बसो ।
राधा कान्ह कुंवर चिरजीवौ, न्हात ही जिन बार खसो ।
गोबर्धन गोकुल बृन्दावन नव निकुंज नित प्रति बिलसो ।
रास विलास रहसि कहि धायौ, आनंद हिये हुलसो ॥
अविचल राज करौ इह भूतल गोपीजन देत असीसो ।
'परमानन्ददास' बलिहारी जीवो कोटि बरीसो ॥

[५६७] राग आसावरी

चल री सखी नंद गांव जाइ बसिये ।
खिरक खेलत ब्रज चंद जू हंसिये ॥
बंसी बटहु सबै सुख दाई ।
एक कठिन दुख दूर कन्हाई ॥
माखन चोरत दुरि दुरि देखो ।
जीवन जन्म सुफल करि लेखो ॥
जलचर लोचन छिनु छिनु प्यासा ।
कठिन प्रीति 'परमानन्ददासा' ॥

---

* पुष्टि मार्गीय भक्ति का स्वरूप प्रस्तुत पद में द्रष्टव्य है ।—संपादक
+ पाठभेद—'परमानन्द प्रभु' केलि समुद्र में परचौ सुलै निबह्यौ ।
१—सुबस (पाठ भेद)

[५६८] राग आसावरी

बढ़्यौ है माई माधौं सो सनेहरा ।
जैहौं तहाँ जहां नंदनंदन राज करो यह गेहरा ॥
अब तौ जिय ऐसी बनि आई कियो समर्पन देहरा ।
'परमानंद' चलो भीजत ही बरसन लाग्यौ मेहरा ॥

[५६६] राग सारंग

हौं लोभी लटकन लाल की ।
मुरि मुसिकानि आनि उर अन्तर निकसत नहीं खरसान की ॥
बाँकी पाग राग मुख सारंग[१] मधुर लपट लट माल की ।
सखा सुबल के अंस बाहु दिये बलि गई देन उगाल की ॥
चंपक दाम बीजु उर चमकत गंध सुमन गुलाब की ।
चंचल दिष्टि समर[२] की सोभा दूलनि[३] कमल कर माल की ॥
उन मेरो सरबसु चोर्यौ सजनी अरु लई चाल मराल की ।
अब यह देह दूसरो न छूहै 'परमानन्द' गोपाल की ॥

राग गौरी

[५३८]

आए मेरे नंदनंदन के प्यारे ।
माला तिलक मनोहर बानो त्रिभुवन के उजियारे ॥
प्रेम सहित बसत मन मोहन नैकहु टरत न टारे ।
हृदै कमल के मध्य बिराजत स्री ब्रजराज दुलारे ॥
कहा जानो कौन पुन्य प्रगट भयौ मेरे घर जु पधारे ।
'परमानन्द प्रभु' करी निछावर बार बार हौं बारे ॥

जित
मर (कामदेव अर्थ)
लनि

श्रीहरिः

२

अथ

नित्य सेवा

के

कीर्तन

[परमानन्द सागर]

श्री आचार्य जी महाप्रभु स्मरण

[५७१] राग भैरव

प्रात समै उठि करिए स्री लक्ष्मन सुत गान।
प्रकट भये स्री बल्लभ प्रभु देत भगति कौ दान ॥
स्री बिट्ठलेश महाप्रभु रूप के निधान।
स्री गिरिधर धर स्री गिरिधर उदय भयो भान ॥
स्री गोविन्द आनंदकंद कहा बरनौं गुन गान।
स्री बालकृष्न बाल केलि रूप ही सुहान ॥
स्री गोकुलनाथ प्रकट कियौ मारग बखान।
स्री रघुनाथ लाल देखि मनमथ ही लजान ॥
स्री यदुनाथ महाप्रभु पूरन भगवान।
स्री घनस्याम पूरन काम पोथी में ध्यान ॥
स्री पाण्डुरंग विट्ठलेश करत वेद गान।
'परमानन्द' निरख लीला थके सुर विमान ॥*

---

* प्रस्तुत पद में कवि ने श्री महाप्रभु जी के वंश की वन्दना की है। साथ ही इस पद से कवि के उपस्थिति काल पर प्रकाश पड़ता है—संपादक

[५७२] राग भै

प्रात समै रसना रस पीजे लीजै श्री बल्लभ प्रभु जी को नाम।
आनन्द में बीतत निसवासर मन बांछित सुधरै सब काम ॥
सुजस गान मन ध्यान आन उर जे राखें आन[1] आठों याम।
'परमानंददास' को ठाकुर जे बल्लभ ते सुन्दर स्याम ॥*

[५७३] राग भैर

बंदौं सुखद श्री बल्लभ चरन।
अमल कमल हू ते कोमल कलिमल हरन ॥
करत वेद विचार जाकौ अभय असरन सरन।
ध्यान मुनिजन धरत जाकौ भक्ति दृढ़ विस्तरन ॥
होत मन कर्म वचन चारो भजे एक ही बरन।
'परमानंद' के उर बसो निरंतर, अखिल मंगल करन ॥

[५७४] राग भैरव

प्रात समय उठि हरि नाम लीजे आनन्द सों सुख में दिन जाई।
चक्रपानि करुना को सागर विघन बिनासन जादों राई ॥
कलिमल हरन तरन भव सागर भगत चिंतामनि काम धेनु।
ऐसो सुमिरन नाम कृष्ण को बंदनीक पावन पद रेनु ॥
सिव विरंचि इन्द्रादिक देवता मुनिजन करत नाम की आस।
भगत बछल ऐसो नाम[2] कल्पद्रुम बरदायक 'परमानन्ददास'

* प्रस्तुत पद कवि की गुरु और ईश्वर विषयक अभेद बुद्धि का सूचक है।—संपादक
१ दिढ़
२ हरिनाम

[५७५] राग आसावरी

स्री बिट्ठलनाथ पालने झूलें मात अक्काजू झुलावें हो।
प्रगट भई त्रिभुवन की सोभा देखत मन ही लुभावें हो ॥
अद्भुत रूप स्वरूप की महिमा कौन बरनै कवि ऐसौ हो।
ब्रह्मादिक जाकौ पार न पावें तारे सेस महेसौ हो ॥
छोटे चरन जाकी छोटी अँगुरिया नख मनिचंद बिराजै हो।
तापर फूल पात सोभति अति नूपुर सोभा छाजै हो ॥
जंघा कदली की अति सोभा, तापर गुल्फ बिराजै हो।
कटि पर क्षुद्रघंटिका राजित केहरि सोभा लाजै हो ॥
तापर नाभि कमल की सोभा उदर की सोभा भ्राजै हो।
तापर पीत झँगुलिया सोभित मोतिन हार विराजै हो ॥
कुण्डल लोल कपोल की सोभा नासा मोतिन राजै हो।
नेत्र कमल की सोभा कहा कहूं काजर रेख बिराजै हो ॥
भ्रकुटी काम के बान बिराजत चितवनि मनही लुभावें हो।
है अद्भुत छवि कही न जाय कछु लहर समुद्र की छावें हो ॥
केसरि कमल पत्र पै राजत कुलही केसरि छाई हो।
तापर मोरचंद्रिका सोभित कस्तूरी तिलक सुहाई हो ॥
नख सिख ध्यान धरैं जो कोई सोई नर तरि जाई हो।
स्री बल्लभ नंदन रूप अनूपम ब्रजजन के सुखदाई हो ॥
पौष कृष्न नौमी तिथि प्रगटे लगन नच्छत्र सुहाई हो।
पुष्टि प्रकास करेंगे भूतल, दैवी जीव उधराई हो ॥
घर घर मंगल बाजत बधाई मोतिन चौक पुराई हो।
देत दान श्री लक्ष्मन नंदन बारत नहीं अघाई हो ॥
विविध भाँति के सब्द करत है स्रवन सुनत सुखदाई हो।
देत असीस कहति ब्रज सुंदरि चिरंजीवौ कुँवर कन्हाई हो ॥
धन्य अक्काजू तेरे भाग की, महिमा कहत न जाई हो।
यह अवतार भगति हित कारन सुर नर मुनि सुखदाई हो ॥
'परमानंद' स्री विट्ठलनाथ के गुन गावत न अघाई हो ॥*

* प्रस्तुत पद कवि के शरण काल सूचक है—संपादक

श्री यमुना जी के पद

[५७६] राग बि०

स्री जमुना दीन जान मोहि दीजै ।
नंदकुमार[१] सदा वर मांगो गोपिन की दासी मोहि कीजै ।।
तुम तो परम उदार कृपा निधि चरन सरन सुखकारी ।
तिहारे बस सदा लाडलीवर तुव तट क्रीड़ित गिरधारी ।।
सब ब्रजजन बिहरत संग मिल अद्‌भुत राग विलासी ।
तिहारे पुलिन निकट कुंजन द्रुम कोमल ससी सुवासी ।।
ज्यों मंडल में चंद विराजत भर भर छिरकत नारी ।
स्रम जल हरत न्हात अति रस भर जल क्रीड़ा सुखकारी ।।
रानी जी के मंदिर में नित उठि पाय लाग भवन काज कीजे ।
'परमानन्ददास' दासी ह्वै नन्द नन्दन कौं सब सुख दीजै ।।

[५७७] राग राम

अति मंजुल जल प्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति
तरणि नंदिनी ।
स्याम बरन झलकन[२] रूप लोल लहर वर अनूप सेवित
संतत मनोज वायु मंदिनी ।।
कुमुद कुंज बन विकास मंडित सुवास कूजत अलि हंस
कोक मधुर छंदिनी ।
प्रफुल्लित अरविंद पुंज कोकिल कल सार गुंज[३] गावत
अलि[४] मंजु पुंज विबुध वंदिनी ।।
नारद सिव सनक व्यास ध्यावत मुनि धरत आस चाहत
पुलिनवास सकल दुःख निकंदिनी ।
नाम लेत नस पाप [कहत] मुनि किन्नर रिषि कलाप करत
जाप 'परमानंद' महा आनंदिनी ।।

---

१ नंद कौ लाल
२ झलकत
३ सुकसार गुण
४ भृङ्ग

प्रफुल्लित वन विविध रंग झलकत यमुना तरंग सौरभ घन
मुदित अति सुहावनी ।
चिंतामनि कनक भूमि छबि अदभुत लता झूमि सीतल मंद
अति सुगंध मरुत आवनी ॥
सारस हंस शुक चकोर चित्रित नृत्यत सुमोर कल कपोत
कोकिला कल मधुर गावनी ।
युगल रसिक बर विहार 'परमानंद' छवि अपार जयति
चारु बृन्दावन परम भावनी ॥

[५७८] राग सारंग

स्री जमुना यह प्रसाद हौं पाऊँ ।
तुम्हारे निकट रहौं निसवासर राम कृष्न गुन गाऊँ ॥
मज्जन करूँ विमल जल पावन चिंता कलह बहाऊँ ।
तिहारी कृपा ते भानु की तनया हरिपद प्रीति बढ़ाऊँ ॥
विनती करौं यहै बर माँगौ अधमन संग बिसराऊँ ।
'परमानन्द प्रभु' सब सुखदाता मदन गोपाल लड़ाऊँ ॥

[५७९] राग बिलावल

तू[१] जमुना गोपालहि भावै ।
जमुना जमुना नाम उच्चारत धर्मराज ताकी न चलावै ॥
जो जमुना कौ दरसन पावै अरु जमुना जलपान करै ।
सो प्रानी जमलोक न देखै चित्रगुप्त लेखौ न धरै ॥
जे जमुना को जान महातम बार बार परनाम करै ।
ते जमुना अवगाहन मज्जन चिंता ताप तनके जु हरै ॥
पदम पुरान कथा यह पावन धरनी प्रति बाराह कही ।
तीर्थ महातम जान जगत गुरु सों 'परमानन्ददास' लही ॥

---

१ हे

[५८०] राग बिलावल

स्री जमुना की आस अब करत है दास ।
मन क्रम बचन कर जोरि के माँगत निसिदिन राखिये अपने जु पास ॥
जहाँ पिय रसिक वर रसिकनी राधिका दोउ जन संग मिलि करत हैं रास ।
'दास परमानंद' पाय अब ब्रजचंद देखि सिराने नयन मन्द हास ॥

[५८१] राग बिलावल

स्री जमुना सुख कारिनि प्रानपतिके ।
जिन्हें भूलि जात पिय तिन्हें सुधि कराय देत, कहाँ लौं कहिए जु हित के ॥
पिय संग गान करे उमंगि जो रस भरे देत करतारी लेत झटके ।
'दास परमानंद' पाय अब ब्रज चन्द एही जानंत अति प्रेम गतिके ॥

[५८२] राग बिलावल

स्री जमुना के साथ अब फिरत है नाथ ।
भगत के मन के मनोरथ पूरत सबै कहाँ लों कहिये अब इनकी जो बात ।
विविध सिंगार भूषन अंग अंग सजे बरनी न जात सोभा बनी गात ।
'दासपरमानंद' पाय अब ब्रजचन्द राखे अपने सरन बहे जो जात ॥

[५८३] राग विहाग

स्री जमुने पिय कों बस तुम जु कीने ।
प्रेम के फन्दते गहि जु[1] राखे निकट ऐसे निर्मोल नग मोल लीने ॥
तुम जु पठावत तहाँ अब धावत सदा निसिदिन तिहारे रस रंग भीने ।
'दासपरमानन्द' पाय अब बृजचन्द परम उदार जमुना जू दीने ॥

श्री गंगा जी के पद

[५८४] राग बिभास

गंगा तीन लोक उद्धारक ।
ब्रह्म कमण्डल तें तुम प्रगटी सकल विस्व की तारक ॥
दरसन परसन पान किये है तुम कीने जीव कृतारथ ।
'परमानन्द' स्वामिनी के संगम आपुन भई सुखारथ ॥

[५८५] राग बिलावल

गंगा पतितन कों सुख देनी ।
सेवा करि भागीरथ लाये पाप काटन कों पेनी ॥
सकल ब्रह्मांड फोर के आवत चलत चाल गजगेनी ।
'परमानंद प्रभु' चरन परस तें भई कमलदल नयनी ॥

[५८६] राग जैजैवन्ती

परमेश्वरी देवी मुनि वंद्ये पवित्रे देवि गंगे ।
वामन चरन कमल नख रंजित सीतल बारि तरंगे ॥
मज्जन पान करत जे प्रानी त्रिविध ताप दुख भंगे ।
तीरथ राज प्रयाग प्रकट भई बनी जमुना वेनी संगे ॥
भगीरथ राज सकल[2] कुल तारन बालमीकि जसु गायो ।
तब प्रताप हरि भगति प्रेमरस जन 'परमानंद' पायो ॥

---

१ घेरि जु
२ सगर

[५८७] राग भैरव

मंगल माधौ नाम उचार ।
मंगल वदन कमल करमंगल मंगल जन को सदा सम्हार ।।
देखत मंगल पूजत मंगल गावत मंगल चरित उदार ।
मंगल स्रवन कथा रस मंगल, मंगल तन्न वसुदेव कुमार ।।
गोकुल मंगल मधुवन मंगल मंगल रुचि बृन्दावन चंद ।
मंगल करन गोवर्धन धारी मंगल वेष जसोदा नंद ।।
मंगल धेनु रेनु मंगल मंगल मधुर बजावत बेनु ।
मंगल गोप बधू परिरम्भन मंगल कालिन्दी पय फेनु ।।
मंगल चरन कमल मनिमंगल मंगल कीरति जगत निवास ।
अनुदिन मंगल ध्यान धरत मुनि मंगल मति 'परमानंददास' ।।

[५८८] राग भैरव

मंगलं मंगलं व्रजभुवि मंगलमिह श्री लक्ष्मण नन्द ।*
मंगल रूप महालक्ष्मीपति जलनिधि पूरन चंद ।।
मंगलमय कृत सात्मज गोपीनाथ मंगल रूप रुक्मिणि मंगल पद्मावतीश
मंगल जनित तनुज श्री गिरिधर गोविंद बालकृष्न गोकुल पति
रघुनाथ जगदीशम् ।।
मंगलवर्धक श्री यदुपति घनश्याम पितु समान श्री विट्ठल सुरताभिधानम् ।
मंगलमय कृत महाप्रिय बल्लभ सेवत मंगल कृत देवी संतानम् ।।
मंगल मंगल गोवर्धन धर मंगल मय रस लीला सागर रस पूरित भावम्
बंदेऽहं तं संतत मनमथ 'परमानंद' मदन मय व्रजपति मुखगत
मुरली रावम् ।।

* प्रस्तुत पद में मंगलं मंगलम् का अनुसरण द्रष्टव्य है ।

मंगला आरती के पद

[५८९] राग भैरव

सब बिध मंगल नन्द को लाल ।
कमल नयन बल जाहि जसोदा न्हात खसो जिन बाल ॥
मंगल गावत मंगल मूरति लीला ललित गोपाल ।
मंगल ब्रजबासिन के घर घर नाचत गावत देकर ताल ॥
मंगल बृन्दावन के रंजन मंगल मुरली सब्द रसाल ।
मंगल जस गावे 'परमानन्द' सखा मंडली मदन गोपाल ॥

[५९०] राग बिलावल

मंगल आरती कर मन मोर ।
भरमनिशा बीती भयो भोर ॥
मंगल बाजत झालर ताल ।
मंगल रूप उठे नंदलाल ॥
मंगल धूप दीप कर जोर ।
मंगल सब गावत ओर ॥
मंगल उदयो मंगल रास ।
मंगल बल 'परमानन्ददास' ॥

———

अथ जगाइबे के पद

[५६१] राग भैरव

ललित लाल श्रीगोपाल सोइये न प्रातकाल जसोदा मैया लेत बलैया
भोर भयो बारे ।
उठो देव करूं सेव जागिये देवाधिदेव नन्दराय दुहत गाय पीजिये
पय प्यारे ॥
रवि की किरन प्रगट भई उठो लाल निसा गई दधि मथत जहाँ तहाँ
गावत गुन तिहारे ।
नंदकुमार उठे बिहँसि कृपादिष्टि सब पै बरषि जुगल चरन कमल पर
'परमानंद' वारे ।

[५६२] राग भैरव

जागो जागो मेरे जगत उजियारे ।
कोटि मदन वारों मुसिकानि पर कमल नयन अँखियन के तारे ।
सुरभि बच्छ गोपाल निसंक लै जमुना के तीर जाओ मेरे प्यारे ।
'परमानंद' कहत नन्दरानी दूर जिन जाओ मेरे ब्रज रखवारे ॥

[५६३] राग भैरव

जागिये गोपाल लाल देखों मुख तेरो ।
पाछे गृह काज करों नित्य नियम मेरो ॥
अरुन दिसा बिगत निसा उदय भयो भान ।
कमलन ते भ्रमर उड़े जागिये भगवान ॥
बन्दीजन द्वार ठाड़े करत जस उच्चार ॥
सरस बेद गावत हैं लीला अवतार ॥
'परमानन्द स्वामी' गोपाल परम मंगलरूप ।
वेद पुरान गावत हैं लीला अनूप ॥

[५६४] राग भैरव

प्रात समै सुत को मुख निरखत प्रमुदित जसुमति हरषित नंद ।
दिनकर-किरन मानो बिगसत उरप्रति अति उपजत आनंद ॥
बदन उघारि जगावत जननी जागो मेरे आनन्द कन्द ।
मनहुँ पयोनिधि सहित फेन फुट दई दिखाई नौतन चन्द ॥
जाकों ईस सेस ब्रह्मादिक नेति नेति गावत स्त्रुति छन्द ।
सो गोपाल अब स्त्री गोकुल में आनन्द प्रगटे 'परमानन्द' ॥

[५६५] राग मलार

माइ तजि न सकै सुन्दर बर सोभा मनु बाँध्यो यहि रीति ।
कोटिक कहौ कोऊ अपनोसी बाढ़ी परम प्रतीति ॥
अरुन पाग पर पेच जरकसी तापर सिवन अपार ।
मानहुँ जलधि जिय तात बिराजित अरुन उदै तिहि बार ॥
मृगमद तिलक भाल पर राजित ता बिच बिंदुला एक ।
मनौ जपाको कुसुम पात पर कहिये कहा विवेक ॥
भृकुटी बंक संक नहीं मानत भृंग फिरत पै भाल ।
काम आदि दै किये सकल बस धाय धनुष नन्दलाल ॥
चंचल नैन मैन के निज गृह चतुर बरन बिस्तार ।
खंजन मीन मधुप गृह हूँ ते देखियत अधिक अपार ॥
प्रभु नासिका सुघट सबहिन ते अरध उरध मध सूल ।
निरत कोर सुभोर दामिनी निकट नैन के कूल ॥
अरुन अधर द्विज परम मनोहर अवलि चिकुर सुठि साल ।
मंद हास अचरज कमला पर मनहुँ व्रज की माल ॥
कुंडल कनक जड़े मनि मरकत जगमगात जैसे मीन ।
मनहुँ गंडस्थल अमी सुघट पर तहाँ भये लौलीन ॥
कौस्तुभ कंठ माल मुकुताहल नगनि जटित जुग हार ।
मनहूँ नच्छत्र सहित ससि सविता कीनो नभ विस्तार ॥

[२०८]

बाहू दंडकर अंबुज पल्लव नव भूषन सिर मोक।
बंसी कंक कुलिस ता ऊपर मनौ मुनिन के लोक ॥
नव नव फूल मंजरी नव नव बैजंती अधिकार।
मनहूँ ईस तजि सीस सुरसुरी धरही धसी जुगधार ॥
कटि किंकनी कुटिल कछनी पर ता तर लाल इजार।
मनहूं कनक के खंभ सुधारे बसत[१] हंस परिवार ॥
नूपुर रुनित सुभग चरनन पर उबकत झुकत अनूप।
मनहुँ सेत मधि रंजि रहे धुनि सुन्दर सरवर सरूप ॥
पद अम्बुज मकरंद पलहु पल दिग दिगन्त नख काँति।
मनहूं राहु रिस देख देख ससि आनि डसो दस भाँति ॥
स्याम सुभग तन धातु चित्र अंग बसन प्रसन्न मनु हासि।
मनहूं तडित जल जोग बने सखी प्रगट होत दुरि जात ॥
नख सिख रूप बन्यौ अति कमनीय निरखि भयौ आनन्द।
जानराइ तजि चल न सकै चित कहै भृत 'परमानन्द' ॥

[५९६] राग

यह भयो पाछिलो पहर।
कान्ह कान्ह करि टेरन लागे बाबा नंद महर ॥
गोप बधू दधि मंथन लागी गोपन पूरे बेनु।
उठो स्याम बछरुवा मोचो[२] राँभरण लागी धेनु ॥
ब्राह्म मुहूरत भयो सवारो विप्र पढ़न लागे वेद।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गोकुल के दुख छेद ॥

---

१ निवसत

२ छोवो (पाठभेद)

[५९७] राग बिलावल

प्रात समै कृष्न राजीवलोचन।
संग सखा ठाड़े गोमोचन॥
बिकसत कमल रटत अलिसेनी।
उठो गोपाल गुहै तुव बेनी॥
खीर खाँड घृत भोजन कीजै।
सद्य दूध धौरी को पीजै॥
सुतहि जाय जगावत रानी।
'परमानन्द प्रभु' सब सुखदानी॥

[५९८] राग बिभास

हौं परभात समै उठि आई कमल नयन देखन तुम्हारो मुख।
गोरस बेचन जात[१] मधुपुरी लाभ होय मारग पाऊँ सुख॥
कमल[२] नयन प्यारो करत कलेऊ नेंक चितै मो तन कीजै रुख।
तुम सपने में मिलि कै बिछुरे रजनी जनित कासों कहिये दुख॥
प्रीति जो एक लाल[३] गिरिधर सों प्रकट भई अब आइ जनाई।
'परमानन्द स्वामी'[४] नागर नागरि सों मनसा अरुझाई॥

[५९९] राग बिलावलि

हरि जू को दरसन भयो सवेरो।
बहुत लाभ पाऊँगी री माई दह्यो बिकेगो मेरो॥
गली साँकरी एक जने की भट्टभयो मुठभेरो।
दै कै अंक चली सयानी ग्वालिन कमल नयन फिर हेरो॥
भोर ही मङ्गल भयो भट्टरी ह्वै है सबकाज भलेरो।
'परमानन्द प्रभु' मिले अचानक भव सागर को बेरो॥

...लौरी
...रत कलेऊ स्याम मनोहर नेक चितैं कीजे हम तन रुख
...याम सुन्दर सों
...ास

[६००] रा

प्रात समय सांमलिया हो जागो।
गाय दुहन कों भाजन मांगो ॥
रवि के उदै कमल परकासे।
भ्रमर उठ चले तमचुर भासे ॥
गोपवधू दधि मन्थन लागी।
हरि जु की लीला रस पागी ॥
बिकसत कमल चलत अलिसेनी।
उठो गोपाल गुहूं तेरी बेनी ॥
'परमानन्ददास' मन भायो।
चरन कमल रज तेहि छिन पायो ॥

[६०१] राग सा

प्रात समय उठ चलहु नंदगृह बलराम कृष्न मुख देखिये।
आनन्द में दिन जाय सखीरी जनम सुफल कर लेखिये ॥
प्रथम काल हरि आनन्दकारी पाछे गृह[1] काज कीजिये।
राम कृष्न पुन बनहि जायँगे चरन कमल रज लीजिये ॥
एक गोपिका ब्रज में सयानी स्याम महातम सोही जानें।
'परमानन्द प्रभु' जद्यपि बालक नारायन कर मानें ॥

[६०२] राग विभा

उठो गोपाल भयो प्रात देखूँ मुख तेरो।
पाछे गृह काज करूँ नित्य नेम मेरो ॥
विगत निसा अरुन दिसा प्रकट भयो भान।
कमल में तें भ्रमर उड़े जागिये भगवान ॥
बन्दीजन द्वार ठाड़े करत हैं केवार।
मधुर बेनु गान करत लीला अवतार ॥
'परमानंद स्वामी' दयालु जगत मंगल रूप।
बेद पुरान गावत है महिमा अनूप ॥

१ भवन [पाठभेद]

[६०३] राग विभास

हौं तकि लागि रही री माई।
जब गृह ते दधि लै निकसे तब मैं बाँह गही री माई॥
हँसि दीन्हों मेरो मुख चितयो मीठी सौ[१] बात कही री माई।
ठगि जु रही चेटक सो लागौ परिगई प्रीति सही री माई॥
'परमानन्द' सयानी ग्वालिन सरबसु दै निबही री माई॥

[६०४] राग विभास

जसुमति लाल कौ बदन दिखैये।
भोरहि उठत आय देखत मुख निरखत ही सचुपैये॥
उमड़ि रही घटा चहूँ दिसतें बेगि तुरत उठि धैये।
'परमानंद प्रभु' उठे तुरत हो निरखि मुखारविंद बलि जैये॥

खंडिता के पद

[६०५] राग विभास

कमल नयन स्याम सुन्दर निस के जागे हो आलस भरे।
कर नख उर राजत मानौं अर्क सीस धरे॥
लटपटी सिर पाग खिसत बदन तिलक टरे।
मरगजी कुसुममाल भूषन अंग अंग परे॥
सुरत रंग उमंग रहे रोम पुलक होत खरे।
'परमानंद' रसिक राय जाही के भाग ताही के ढरे॥

---
१ सी

[६०६] राग आस

सांवरे भले हो रतिनागर ।
अबकें दुराय क्यों दुरत है प्रीति जू भई उजागर ।।
अधर काजर नयन रँगमगे रच्यो कपोलन पीक ।
उर नख रेख प्रकट देखियत हैं मरम की लीक ।।
पलट परे तिलक गयो मिटि जहाँ कंकन गाढ़े ।
'परमानन्द स्वामी' मधुकर गति भली आपनी चाढ़े ।।

[६०७] राग देवगां

चले उठ कुंज भवन तें भोर ।
डगमगात[1] लर छूट रही है पहरें पीत पटोर ।।
अरुन नयन घूमत आलसयुत[2] मानों रस सिंधुझकोर[3] ।
गिरि गिरि परत कुसुम अलकावलि[4] सिथिल सो बन डोर ।।
परे[5] नख अंग जुगल कुच अन्तर राजत उर तन गोर ।[6]
'परमानन्द' रमी निसा अबलों पलट हँसी मुख मोर ।।

कलेऊ के पद

[६०८] राग विभ

लेहु ललन कछु करो कलेऊ अपने हाथ जिमाऊंगी ।
सीतल माखन मेल मिस्री कर सीरा लाल खवाऊँगी ।।
औटचौ दूध सद्य धौरी को सोयरो करि करि प्याऊंगी ।
तातौ जान जो न सुत पीवत पंखा पवन ढुराऊँगी ।।
अमित सुगंध सुवास अंग करि उबटन गुन गाऊँगी ।
उष्न सीतल अन्हवाय खोरजल चन्दन अंग लगाऊंगी ।।
त्रिविध ताप नसि जात देखि छबि निरखि हियो सिराऊंगी ।
'परमानन्द' सीतल करि अखियाँ बानिक पर बलि बलि जाऊंगी।

---

१ लटकत लट छूटे
२ बस
३ हिलोर
४ गलित
५ पद
६ सुभग हिये तन रोर

[६०६] राग विभास

आज प्रभात आत मारग में सगुन भयो फलफलित जसोदा को।
मंगल निधि जाके भवन बिराजत आनंद अंग अंग प्रभुता को॥
सीतल सुवास अवासन महियाँ मंगल गीत गावत सखियाँ।
'परमानंद' निरखि मोहन मुख हरख हिये सीतल भई अँखियां॥

[६१०] राग बिलावल

लाइ जसोमति मैया भोजन कीजै हो लाल।
बिंजन धरे चटपटे लीजै हो सुन्दर लाल॥
चंदन भवन बनाये स्वच्छ करि करचौ दिठौना भाल।
'परमानंद प्रभु' ललित त्रिभंगी बहत चहूंदिस माल॥

[६११] राग विभास

बुन्दन झर लायो आँगन जहाँ करत कलेऊ दोऊ भैया।
भवन में आवो लाल संग सब लाओ बाल कहत जसोदा मैया॥
भीजेगो बसन खेलबे को मेरो कह्यौ मान लालन लेहौं बलैया।
'परमानंद' प्रभु जननी कहत बाल प्यावत मथिमथि दूध की धैया॥

[६१२] राग बिलावल

करत कलेऊ भवन गोपाल।
बहु विधि पाक थार मध राखे लेहु मनोहर लाल॥
जो भावै सो लेहु मेरे मोहन माधुरी मूरति रसाल।
'परमानन्द प्रभु' बेगि लेहु किन चहुँ दिसि घटा उमड़ि रही लाल॥

[६१३] राग भैं

आछो नीको लौनो मुख भोर ही दिखाइये ।
निस के उनींदे नयन तोतरात मीठे बैन भावते जीय मेरे सुख ही बढ़ाइये ।
सकल सुख करन त्रिविध ताप हरन उर को तिमिर बाढ्यो तुरत नसाइये
द्वार ठाड़े ग्वाल बाल करोहो कलेऊ लाल मीसी रोटी छोटी माखन सों खाइये ।
तनक सों मेरो कन्हैया बारि फेर डार मैया बेनी तो गुहों बनाय गहरु न लगाइये ।
'परमानंद प्रभु' जननी[१] मुदितमन फूली फूलो अति उर अंग न समाइये

[६१४] राग भैरव

करो कलेऊ राम कृष्न मिल कहत जसोदा मैया ।
पाछे बच्छ ग्वाल सब लैकें चलौ चरावन गैया ।।
पायस सिता घृत सुरभिन को रुचिकर भोजन कीजें ।
जग जीवन ब्रजराज लाडिले जननी को सुख दीजें ।।
सीस मुकुट काछिनो पीत बसन उर धारो ।।
कर लकुटी लै मुरली मोहन मनमथ दर्प निवारो ।।
मृगमद तिलक स्रवन कुण्डल मनि कौस्तुभ कंठ बनावो ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ब्रजजन मोद बढ़ावौ ।।

---

१ जन

[६१५] राग बिभास

गोविन्द माँगत हैं रोटी ।
माखन सहित देहु मेरी जननी सुभ्र सुकोमल मोटी ।।
जो कछु मागौं देहुँ सो मोहन काहे कों आँगन लोटी ।
कर गहि उछंग लेत महतारी हाथ फिरावत चोटी ।।
मदन गोपाल स्यामघन सुन्दर छोड़ो यह मति खोटी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर हाथ लकुटिया छोटी ।।

[६१६] राग बिभास

उठत प्रात मात जसोदा मंगल भोग देत दोऊ छोरा ।
माखन मिस्री मलाई दूध भरे दोउ कनक कटोरा ।।
कछुक खात कछु मुख लपटावत देत दुराये मिलि करत निहोरा।
'परमानंद प्रभु' झबकि हग भरत लाल भुज करत कलोला ।।

[६१७] राग बिलावल

भोजन भली भांति हरि कीनों ।
खट बिजन मठा सलौनों माँगि माँगि हरि लीनो ।।
हंसत लसत परसत नन्दरानी बाल केलि रस भीनों ।
'परमानंद' उबरचो पनवारो टेरि सुबल कों दीनो ।।

शृङ्गार के पद

[६१८] र

पीताम्बर कौ चोलना पहरावत मैया ।
कनक छाप तापर धरी झीनो एक तनैया ॥
लाल इजार चुनाय की और जरकसी चीरा ।
पहुँची रत्न जराय की उर राजत हीरा ॥
ठाढ़ी निरख जसुमति फूली अंग न समैया[१] ।
काजर ले बिंदुका दियो ब्रजजन मुसकैया[२] ॥
नंद बाबा मुरली दई कह्यो ऐसे बजैया[३] ।
जोई सुन जाको मन हरे 'परमानंद' बल जैया[४] ॥

[६१९] रा

सुन्दर ढोटा कौन को सुन्दर मृदु बानी ।
सुन्दर भाल तिलक दिये सुन्दर मुसकानी ॥
सुन्दर नयनन हरि लियो कमलन को पानी ।
सुन्दरता तिहुँ लोक की लै ब्रज में आनी ॥
भेद बतायो ग्वालिनी जायो नंद रानी ।
'परमानन्द' जसोमति सब सुख लपटानी ॥

टिपारा के पद

[६२०]

गोविन्द लाडिलो लडबोरो ।
अपने रंग फिरत गोकुल में स्याम बरन जैसे भोरो ।
किंकनी कुनित चारु चल कुंडल तन चंदन की खोरो
निरतत गावत बसन फिरावत हाथ फुलन के झोरा ॥
माथे कनक बरन कौ टिपारो ओढ़े पीत पिछोरा ।
'परमानन्ददास' की जीवन संग डिठोना गोरा ।

---
१ समाय
२ मुसकाय
३ बजाय
४ गाय

[६२१] राग सारंग

नवल कदंब छाँह तर ठाड़े सोभित है नंद लाल ।
सीस टिपारो कटि लाल काछिनी पीताम्बर बनमाल ।।
नृत्यत गावत बेनु बजावत सुरभी समूहन जाल ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर लीला ललित गोपाल ।।

[६२२] राग सारंग

अरी चलि देखन लाल बिहारी ।*
लाल पाग लटकि रही भुव पर अलक बनी घुँघरारी ।।
तापर मोर चंद्रिका राजत स्रवन कुंडल छबि भारी ।
'परमानंद स्वामी' के ऊपर सरबस देहूं बारी ।।

किरीट के पद

[६२३] राग आसावरी

आज अति सोभित है नंदलाल ।
क्रीट मुगट सिर सुभग लाल गरे फूलन की माल ।।
ठाड़े कुंज द्वार राधा संग बेनु बजायो रसाल ।
कमल लिये कर 'परमानंद प्रभु' बल बल गई ब्रज बाल ।।

* प्रस्तुत पद लाल पाग और मोर चंद्रिका का है ।—संपादक

ग्वाल के पद

[६२४] राग

गोपाल माई खेलत है चक डोरी ।
लरिका पाँच सात संग लीने निपट साँकरी खोरी ॥
चढ़ि घर होरी झरोखा चितयो सखी लियो मन चोरी ।
बांए हाथ बलैया लीनी अपनो अंचर छोरी ॥
चारों नयन मिले जब संमुख रसिक हँसे मुख मोर ।
'परमानन्ददास' रति नागर चितें लई रति चोर ॥

[६२५] रा

गोपाल फिरावत है बंगी ।
भीतर भवन भरे सब बालक नाना बिधि कछु रंगी ॥
सहज सुभाव डोरी खेंचत हैं लेत उठाय करपै संगी ।
कबहुँक कर लै स्रवन सुनावत नाना भाँत अधिक सुरंगी ॥
कबहुंक डार देत हैं पथ में मुखहि बजावत संगी ।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन खेल सर्यो चले सब संगी ॥

[६२६] राग

लाल आज खेलत सुरंग खिलौना ।
काम सबद उघटत है पपीहा बड़ी मधुर मिलौना ॥
प्रेम घुमेड़े लेत है फिरकी झुँझना मनहि सलौना ।
चहाबहा चौबत चकई हित जु सब ही करौना ॥
झुमिरि झूमि झुकि बाट देखत हथबंगी मनु जौना ।
'परमानंद' ध्यान भगतन बस ब्रज केर तिरौना फिरौना ॥

[६२७] राग आसावरी

खेलत में को काको गुसैय्याँ ।*
स्रीदामा जीते तुम हारे बरबट कत करत रिसैय्याँ ॥
जाँति पाँति कुल ते जु बड़े हो कछु इक अधिक तिहारे गैय्याँ ।
याही ते जु देत अधिकाई हम सब बसत तिहारी छैय्याँ ॥
रूहठ करे तासों को खेलै सखा रहैं इक ठैय्याँ ।
'परमानंद प्रभु' खेल्यौ चाहो तो पोत देहौ करि नंद दुहैयाँ ॥

[६२८] राग अड़ाना

कान्ह अटा पर चंग उड़ावत,
मैं इतले उत आँगन हेर्यौ ।
नैन भये व्यभिचार परायन[1],
भीजत लाज किधौं भट भेरो ॥
मोहि कौं यह जक लगी रहत है,
क्यौं हूं फिरत न फेर्यौ ॥
'परमानंद प्रभु' यहै अचंभो,
खेंचत डोर किधौं मन मेरो ॥

[६२९] राग सारंग

अपने गोपाल की बलिहारी ।
नाना बिधि रचि फूल बनाई भली बनी है बारी ॥
सोह सहित सुदेस देस बिच बांकीं कुलहे वे धारीं ।
गोपी जन के अनुराग भाग सब बाँधि सुहस्त सँवारी ॥
निरखि निरखि फूलत नन्दरानी सुख की रास बिचारी ।
'परमानंद स्वामी' के ऊपर सरबसु दीजै वारी ॥

ह पद कुछ पाठ भेद से सूर सागर में भी मिलता है । परीख जी की तृतीय गृह की
ोर्तन की हस्तलिखित प्रति में होने के कारण यहाँ दिया गया है ।—संपादक
१भिचार नारायन

अथ ग्वाल पाग के पद

[६३०] राग सारंग

बना[१] सिर सहेरो बन्यो अति नीको ।*
पीत पिछोरा उर चन्दन की खोर दूल्हे जान ललीको ॥
मंगल जस गावत जुबति जन आरती करत मनही को ।
'परमानन्द' जसोदा मैया देत बधैया सबही को ॥

[६३१] राग सारंग

स्याम अंग सोभित है तनीयाँ ।
पाग कुपेंची सीस बिराजत नख सिख आभूसन ठनीयाँ ॥
धेनु चराय सखन संग आवत मात जसोदा लेरी कनियाँ ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ब्रखभान सुता उर मनियाँ ॥

[६३२] राग सारंग

उपरना स्याम तमाल को ।
तैयौं कहाँ लीयो ब्रज सुन्दरि ललित त्रिभंगी लाल को ॥
सुभग कलेवर प्रकट देखियत हाथ कँगना बाल को ।
तु रस मगन नहीं मन समझत बाल केलि ब्रज ख्याल को ॥
निसदिन रहत गोपाल ग्वाल संग चंचल नयन बिसाल को ।
'परमानन्द प्रभु' गोधन चारत मत गयंद कर चाल को ॥

---

१ दुल्हा
* ब्रज की वेशभुषा सहेरा तथा पिछौरा की चर्चा दृष्टव्य है ।—संपा०

[६३३] राग रसरंग

पासा खेलत हैं पिय प्यारी ।
पहलौ दाव परयौ स्यामा कौ पीत पिछौरी हारी ॥
अबकी बेर पिय मुरली लगावो तो खेलो संग भारी ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जीती है वृषभानु दुलारी ॥

[६३४] राग भैरव

सूवा पढ़ावत सारंग नयनी ।
बदत संकेत लाल गिरिधर सों गरजत गुपत निकट मतकेनी ॥
अहो कीर तुम नीलबरन तन नेंक चितें मन बुधि हर लेनी ।
होत अबेर जात दिन बन गृह हम तुम भेंट होयगी रेनी ॥
जब लग तुम जु सिधारो सघन वन हों जु गई जमुना जल लेनी ।
'परमानंद' लाल गिरधर सों मृदु मृदु बचन कहत पिक बेनी ॥

[६३५] राग भैरव

तुम संग खेलत लर गई टूट ।
रहो ढोटा तुम खरे ही अचगरे मेरो लियो कर लूट ॥
यों रिसाय कहत हों तुमसों वचन रहत हौं घूँट ।
अब ही नई पहरि हौं आई चुरियाँ गई सब फूट ॥
यहै विनोद नीको करि पायो मानौ पसरी लूट ।
'परमानन्द प्रभु' सब ही बीनूंगी तब ही करूंगी छूट ॥

छाक के पद

[६३६]

चहूँ दिस हरित भूमि बन माँह ।
जोरि मंडली जेमन लागे बैठ कदम की छाँह ॥
घुमड़ घटा छटा दामिनी की बरनत बरनी न जाय ।
यह सुख स्याम तिहारे संग बिन और अनत कहुँ नाय
धन्य धन्य ग्वाल बाल हरि जिनके कौरें लैलै खाय ।
'परमानंद' ब्रह्मादिक बिस्मित सिर धुनि धुनि पछताय ।

[६३७] र

देखौ मैया चहुँदिसि छाए बादर ।
समझ बिचार लेहो निज मन में फेरि फिरोगे निरादर ॥
बरखारितु बन छाँहन लीजै भोजन संग बिरादर ।
निर्मल ताल तलैया के जल बोलत नीके दादुर ॥
हरि हरि भूमि छाँड़ि कित जइऐ और खादर ।
खिसल परे 'परमानन्द' तब हरि जुरि मिल बैठे आदर ॥

[६३८] रा

स्याम सुनि हरी भूमि सुखकारी ।
ब्यंजन बाँटि सबन कों दीजै बिनती लाल हमारी ॥
बरखि उघर घन नीके लागत पवन चलत पुरवाई ।
भोजन कों बैठे 'परमानन्द' नवल लाल गिरिधारी ॥

[६३९] राग सारंग

हरि को टेरत फिरत गुवारी ।
आन लैहों तुम छाक आपनी बालक बल बनवारी ।।
आज कलेऊ कियो न प्रातहि बछरा लै बन धाये ।
मेवा मोदक मैया जसोमति मेरे हाथ पठाये ।।
जब यह बानी सुनी मनोहर चलि आये तिहीं पास ।
कीनी भली भूख जब लागी बल 'परमानन्ददास' ।।

[६४०] राग सारंग

तुमकों टेर टेर मैं हारी ।।
कहाँ जो रहे अबलों मन मोहन लेहो न छाक तुम्हारी ।
भूल परी आवत मारग में क्योंहूं मैं न पेड़ो पायो ।
बूझत बूझत यहाँ लों आई तब तुम बेनु बजायो ।।
देखौ मेरे अंग कौ पसीना उर कौ अंचल भीनो ।
'परमानन्द प्रभु' प्रीति जान कें धाय आलिंगन दीनो ।।

[६४१] राग सारंग

बाँट बाँट सबहिन कों देत ।
ऐसे ग्वाल हरि कों जो भावत सेस रहत सो आपुन लेत ।।
आछो दूध सद्य धौरी को औटि जमायो अपने हाथ ।
हंडिया मूंद जसोदा मैया तुमको दै पठई ब्रजनाथ ।।
आनन्द मगन फिरत अपने रंग बृन्दावन कालिन्दी तीर ।
'परमानन्ददास' झूठो लैवे बाँह पसारि दियो बलवीर ।।

[६४२] राग सारंग

अरी छाकहारी चार पाच आवति मध्य ब्रजराज ललाकी ।
बहु प्रकार व्यंजन परिपूरन पठबत बड़े डलाकी ।।
ठठकि ठठकि टेरत स्री गोपालै चहुँधा दिष्टि करें ।
बाजत बेनु धुनि सुनि चली चपल गति परासौली[१] के परे ।।
'परमानन्द प्रभु' प्रेम भगति मन टेर लई कर ऊंची बाँह ।
हंसि हंसि कसि कसि फेंटा कटिन सों बाँटत छाक बन ढाकन माँह ।

[६४३] राग सारंग

आज दधि मीठो मदन गोपाल ।*
भावत मोहि तिहारो झूंठो चंचल नयन बिसाल ।।
आने पात बनाये दोना दिये सबन कों बांट ।
जिन नहीं पायो सुनो रे भैया मेरी हथेरी चाट ।।
बहुत दिनन हम बसे कुमुदवन कृष्ण तिहारे साथ ।
ऐसो स्वाद हम कबहुं न चाख्यो सुन गोकुल के नाथ ।।
आपुन हंसत हंसावत ग्वालन मानुस लीला रूप ।
'परमानन्द प्रभु' हम सब जानत तुम त्रिभुवन के भूप ।।

[६४४] राग सारंग

काँवर द्वय भरिकें छाक पठाई नंदरानी आप,
मोहि मिले मारग में, मधुवन के कूल ।+
सुबल तोक तरुन वेस आवत कछु भोजन लिये
चंचल गति, दोऊ दरसन के फूल ।।
कनक थार जगमगात बेलन की भांति कांति
भरे नंदरानी आप दोऊ समतूल ।
पचरंग पीरे पाट की डोरी चहूं ओर खचित
पवन गवन विकस जात रेसम के झूल ।।

---

१ ब्रज के एक स्थान का नाम—संपादक
* यह छाक कुमुदवन की है—संपादक
+ यह छाक मधुवन की है—संपादक

[२२५]

छोटी द्वय गाँठ तामें पठवत सब ब्रजजन के
आस पास लटक रहे फोंदा मखतूल ।
सकल पाक परमानन्द आरोगत
'परमानन्द' जानत सब बातन को मूल ॥

[६४५] राग सारंग

स्याम ढाक तर मंडल जोरि जोरि बैठे अब छाक खात
दधि ओदन ।×
सघन कुंज मध्य चन्दन के महेल रचित सीर रावटी
चहुँ ओर छिरकत गुलाब जलसों दिन ॥
आस पास मिलि बैठे सखा सब रुचिर डला भरे
प्रेम प्रमोदन ।
'परमानन्द प्रभु' गोपाल अद्‌भुत गुन रूप रसाल
अरोगत मंडल मध्य सुबल सुबोधन ॥

[६४६] राग बिलावल

सिला पखारो भोजन कीजै ।*
नीके बिंजन बने कौन के चाखि चाखि सबहिन कों दीजै ॥
अहो अहो सुबल अहो स्रीदामा अर्जुन भोज बिसाल ।
अपने अपने ओदन लाओ आग्या दई है गोपाल ॥
फल अंगुरिन अंगुलिन बिच राखे बाँट बाँट सबहिन कों देत ।
'परमानन्द स्वामी' रस रीझे प्रेम पुन्य को बाँध्यो सेत ॥

× यह छाक स्यामढाक के नीचे आरोगी गई—संपादक
* यह छाक श्री गिरिराज ऊपर की है। ,,

[६४७] राग विभास

गिरि पर चढ़ गिरिवरधर टेरै ।
अहो भैया सुबल स्रीदामा लाओ गाय खिरक के नेरै ॥
भई अबार जो छाक खाय कछुक घैया पियें सबेरे ।
'परमानन्द प्रभु' बैठे सिलन पर भोजन करत ग्वाल रहे घेरे ॥

[६४८] राग सारंग

मोहन जेंवत छाक सलोंनी ।
सखन सहित हुलसे दोऊ भैया झपटत करते दौनी ॥
आछे आछे फल लैं चाखत चाहत हरि की कोनी ।
'परमानंद प्रभु' कहत सखन सों पहिले कर लेहू बोनी ॥

[६४९] राग सारंग

दानघाटी छाक आई गोकुल तें काँवर भर
रावल की रावरे राखी सब घेर *
जानतो जबही दैहों नंद जू की आन खेहों
भोजन की रही कछू चाखो एक बेर ॥
अति परवीन जानराय कनक बेला करमें लिये
बाँटत मेवा मन प्रसन्न हेर चहुँफेर ।
सकल पाक परमानन्द आरोगत परमानन्द
'परमानन्द' तोक कहत[1] सुबल टेर टेर ॥

---

* यह छाक दानघाटी की है

१ करत

[६५०] राग बिभास

भावत है बन बन की डोलन ।
मदन गोपाल मनोहर मूरति हौं हौं धौरी धेनु को बोलन ॥
कर पर पात भात ता ऊपर बिच बिच बिंजन धर राखे ।
बाल केलि सुन्दर ब्रज नायक ग्वालन देत आप ही चाखे ॥
कहा बैभव बैकुंठ लोक को भवन चतुर्दस को ठकुराई ।
सिव बिरंचि नारद पद बंदित उपनिसद कीरति गाई ॥
यह पुरुष लीला अवतारी आदि मध्य अवसान एक रस ।
'परमानन्द प्रभु' बाल बिनोदी गोकुल मंडन भगत प्रेम बस ॥

[६५१] राग बिभास

हँसत परस्पर करत कलोल ।
बिंजन सबै सराए मोहन मीठे कमल वदन के बोल ॥
तोरे पलास पत्र बहुतेरे पनवारो जोर्यो विस्तार ।
चहुँदिसि बैठी ग्वाल मंडली जेंवन लागे नंद कुमार ॥
सुर विमान सब कौतुक भूले जग्य पुरुष हैं नीके रंग ।
सेस प्रसाद रह्यो सो पायो 'परमानन्ददास' हो संग ॥

[६५२] राग सारंग

टेरत हरि फेरत पट पीयरो ।*
आओरे आओ भैया ग्वालो गहबर छाँह बृन्दावन नियरो ॥
बालक बृन्द करत कोलाहल बेनु बजावत जमुना तियरों ।
सारस हंस मोर पिक बोलत एकटक निरखत सुरगन भियरो ॥
आई छाक अबेर भई है मिट गयो ताप भयो तन सियरो ॥
'परमानन्द प्रभु' विधि को मनोरथ हम न भये ब्रजवास अहीरो ॥

---
* ह छाक उष्णकाल की है ।

[६५३] राग सारंग

रंग रंगीली डलियाँ आई हैं छाक इक ठौर तें।*
दही सिखरन छिरकत चहुँधातें छकहारी नीकी भोरतें ॥
परीपूरन रची स्री चन्द्रावलि पठई अपनी ओरतें।
कनक थार बेला परिपूरन झलकत दोउ ठौरतें ॥
ढापें पोत बसन सिंगारी सौरभ पवन झकोरतें।
'परमानंद' पत्र अरु बीरा छोर लिये पाये कोरतें[१] ॥

आवनी के पद

[६५४] राग पूर्वी

देखो गोपाल की आवन।
कमल नयन स्याम सुन्दर की मूरति मन भावन ॥
बेही सुन्दर सीस मुकुट गुंजा मनि लावन।
'परमानन्द स्वामी' गोपाल की अंग अंग नचावन ॥

[६५५] राग पूर्वी

देखो गोपाल की आवनि।
आवनी मन फावनि ॥
कमल नयन स्याम सुन्दर मूरति मन भावनि।
बरुहा मुकुट दाम गुंजामनि ॥
भेख विचित्र बनावनि।
'परमानंद स्वामी' गोपाले अंग अंग नचावनि ॥

* यह मल्हार छाक है—संपा०

१ अंचल से [अर्थ]

[६५६] राग बिलावल

गिरिधर सब ही अंग को बाँको ।
बाँकी चाल चलत गोकुल में छैल छबीलो काको ॥
बांकी भौंह चरन गति बाँकी हिरदै है ताको ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर कियो खोर ब्रज साको ॥

[६५७] राग बिलावल

गिरिधर चाल चलत लटकीलो ।
सीस मुकुट कानन कुंडल बंसी बजावत अतिहि रसीलो ॥
जमुना तीर ताल लतावन फिरत निरंकुस नंद किसोर ।
भौंह बिलास पास बस कीनो मोहन अंग त्रिभंग तें जोर ॥
लै राखे कुच बीच निरन्तर सकल सुखद प्रेम की डोर ।
यहै उचित होय ब्रज सुन्दर 'परमानन्द' चपल चित चोर ॥

[६५८] राग यमन

जिय की न जानत हो पिय अपनी गरज के हो गाहक ।
मृदु मुसकाय ललचाय जाय ढिग हरत परायो मन नाहक ॥
कपटी कुटिल नेह नहीं जानत छल सों फिरत घर घरके रस
चाहक ।
ये दई निर्दई स्यामघन सुन्दर 'परमानन्द' उर सालक ॥

[६५९] राग नायकी

बारों मीन खंजन आली के दृगन पर भ्रमर मन ।
अति सलोने लोने अति ही सुढार ढारे अति कजरारे भारे बिन ही अंजन ॥
स्वेत असत कटाच्छन तारे उपमा कों मृग ही कंजन ।
'परमानंद प्रभु' रस बस कर लीने प्यारी जू के मन के रंजन ॥

[६६०] राग बिलावल

आज बने सखी नंदकुमार ।
बाम भाग बृषभान नंदिनी ललितादिक गावें सिंघ द्वार ॥
कंचन थार लिये जु कमल कर मुकुताफल फूलन के हार ।
रोरी सिर तिलक बिराजत करत आरती हरख अपार ॥
यह जोरी अविचल स्री बृन्दावन देत असीस सकल ब्रजनार ।
कुंज महल में राजत दोऊ 'परमानन्ददास' बलिहार ॥

[६६१] राग बिलावल

डगर चल गोवरधन की बाट ।
खेलत बीच मिलेंगे मोहन जहाँ गोधन के ठाट ॥
चल री सखी तोहि जाय मिलाऊँ सुन्दर बदन सरोज ।
कमल नयन के एक रोम वर बारों कोटि मनोज ॥
पाहुनी एक अनूपम आई आन गाम की ग्वार ।
'परमानन्द स्वामी' के ऊपर सरबसु डारों बार ॥

[६६२] राग बिलावल

भावे तोहि हरि की आनन्द केलि ।
सदन गोपाल निकट कर पाये ज्यों भावे त्यों खेलि ॥
कमल नैन की भुजा मनोहर अपने कंठ ले मेलि ।
प्रेम बिबस अरु सावधान ह्वै छूटी अलक सकेल ॥
तरुन तमाल के नंद के नंदन प्रिया कनक की बेली ।
यहै लपटानी 'दास परमानंद' मुकुत पायन सौं ठेली ॥

[६६३] राग अंगला

मैया भूषन अपने लैरी ।
मोर चंद्रिका काँच की मनियाँ गुंजा फल मोहि दै री ॥
दुरादुरी मैं खेलत सखन संग खेलत हौं जो पाऊं ।
मुख ससि प्रभा बराइ[1] राखौं इन छबि कहाँ दुराऊँ ॥
आज सदन बृषभान गोप कै खेलत हौं जु गयो ।
सगरे सखा अगमने भाजे हौं ही चोर भयो ॥
जबहि बृखभान गोप घर आयौ गहि अंचर मोहि रोक्यौ ।
बदन चूमि मिष्टान हाथ धरि अंग अंग अवलोक्यौ ॥
तब बृखभान सभा ते आए ए नंदकुमार न होई ।
'परमानंद' कुंवरि कौ दूलह कहत हुते सब कोई[2] ॥

[सं]भोग के पद

[६६४] राग सारंग

राधे हरि तेरो बदन सराह्यो ।
बार बार सुनि सारंग नैनी यहै ध्यान मुख गायो ।
लै दरपन अपने मुख निरखत बदन मोरि मुसकायो ।
बाबा की सौं हौं सब जानत तेरे हाथ ते बिकायो ॥
बार बार हरि करत प्रसंसा मोहू ते अति नीकी ।
'परमानन्द' कोउ आन मिलावै परम भावती जिय की ॥

---

[1] मुख मुसकानि चंद अवलोकत
[2] बर सोई

[६६५] राग सारंग

सोहत स्याम मनोहर गात ।
सेत परदनी अति रस भीनो केसर पगियाँ माथ ॥
करन फूल प्रतिबिम्ब कपोलन अंग अंग मनमथ ही लजात ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर निरख बदन मुसकात ॥

[६६६] राग सारंग

पीत पिछोरी कहाँ जो बिसारी ।
ये तो लाल ढिगन की ओढ़े है काहु की सारी ॥
हौं वाहि बाट पिवावत गैया जहाँ भरत पनिहारी ।
भोर भयो गैया सब बिडरी मुरली भली जो सँवारी ॥
हौं लै भाज्यो और की वे लै गई जो हमारी ।
'परमानंद' बल बल बलियन पर तन तोरत महतारी ॥

[६६७] राग सारंग

सुन्दर मुख की हौं बल बल जाऊँ ।*
लावन्य निधि गुननिधि सोभा निधि देख देख जीवत सब गाऊँ ॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रकट रुचिर ठाँई ठाऊँ ।
तामें मृदु मुसकाय हरत मन न्याय कहत कवि मोहन नाऊँ ॥
सखा अंस पर बाहु दये आछे बिको बिन मोल बिकाऊँ ।
'परमानन्द' नंदनंदन को निरखि निरखि उर नयन सिराऊँ ॥

* उपर्युक्त पद राजभोग के समय श्रीनाथ जी के सम्मुख गाए जाते है—संपादक

[६६८] राग सारंग

सिर धरे पखौवा मोर के।
गुंजा फल फूलन के लटकन सोभित नंद किसोर के ।।
ग्वाल मंडली मध्य बिराजित कौतुक माखन चोर के।
नाचत गावत बेनु बजावत अंस भुजा सखा ओर के ।।
तैसेई फरहरात रंग भीने छबि पीताम्बर छोर के।
'परमानंददास' को ठाकुर मन हरत नयन की कोर के ।।

[६६९] राग सारंग

ता दिन ते मोहि अधिक चटपटी।
जा दिन ते देखे इन नयनन गिरिधर बाँधे माई पाग लटपटी।
चलेरी जात मुसकात मनोहर हँसि जो कही एक बात अटपटी।
हौं सुनि स्रवनन भई अति व्याकुल परी जो हिरदै में मदन सटपटी ।।
कहा री करूं गुरुजन भये बैरी बैर परे मोसों करत खटपटी।
'परमानंद प्रभु' रूप विमोही नंद नंदन सों प्रीति अति जटी ।।

[६७०] राग मल्हार

कदम तर भलीभाँत भयो भोजन।*
हलधर कहत करो अब अचवन गैया भूली मौजन ।।
जो भावे सो लैहो और कछु कहत सखा सब नांहि।
चलो[२] अब गायन देखो 'परमानंद' घटा चहूंदिसि छांइ ।।

* प्रस्तुत पद भोग सरने के समय गाए जाते हैं।
२ लो

[६७१] रा

भोजन कीन्हों री गिरिवरधर ।*
कहा बरनौं मंडल की सोभा मधुवन ताल कदम्ब तर ॥
पहिले लिये मनोरथ बिंजन जे पठये ब्रज घर घर ।
पाछै डला दियो स्रीदामा मोहन लाल सुघर बर ॥
हंसत सयानो सुबल सैन दे लाल लियो दोंना कर ।
'परमानन्द प्रभु' मुख अवलोकन सुरभी भोर परस्पर ॥

[६७२] रा

ब्रज में काछिन बेचन आई ।+
आन उतारी नंद गृह आंगन दयोड़ी फलन सुहाई ॥
लै दौरे हरि फेंट अंजुली सुभकर कुँवर कन्हाई ।
डारत ही मुकुताफल ह्वै गये जसुमति मन मुसकाई ॥
जे हरि चार पदारथ दाता फल बाँछित न अघाई ।
'परमानन्द' वाको भाग्य बड़ो है विधि सों कहा बस्याई ॥

[६७३] रा

कोउ माइ आँम बेचन आई ।
टेर सुनत मोहन उठ दौरे भीतर भवन बुलाई ॥
मैया मोहि आंम लै दे री संग सखा बल भाई ।
'परमानंद' जसोमति लै दोने खाये कुंवर कन्हाई ॥

---

* प्रस्तुत पद उष्णकाल में भोग सरने के समय गाया जाता है ।—संपादक

+ प्रस्तुत पद फल फलारी अरोगाने का है ।—संपादक

[६७४] राग सारंग

कोउ माई बेर बेचन आई ।
सुनी टेर नंद रावल में भीतर भवन बुलाई ॥
सूकत धान परयो आँगन में कर अंजुली बनाई ।
ठमकि ठमकि चलत मोहन अपने रंग जसुमति लेत बलाई ॥
लिये चुचकार[1] हियो भरि आयो मुख चुम्बत मुसुकाई[2] ।
'परमानन्द' जसुमति[3] आन दिये फल खाये कुँवर कन्हाई ॥

[६७५] राग सारंग

लटकि लाल रहे श्री राधा के भर ।*
सुन्दर बीरी संवारि सुन्दरी हंसि हंसि जात देत मोहन कर ॥
सखी बृन्द सन्मुख भई ठाड़ी तिनसों केलि करत सुन्दर वर ।
ज्यों चकोर चंदानन चितवत त्यों आली निरखत गिरिवरधर ॥
कुंज कुटीर और बाग बृन्दावन बोलत मोर कोकिला तरुपर ।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहन बलिहारी या लीला छबि पर ॥

[६७६] राग सारंग

पान मुख बीरी राची हरि के रंग सुरंगे ।
ऐसी कृपा सदा हम ऊपर टारो जिन तुम संगे ॥
हरि हम तुम बिनु कौन काम के करत प्रेम में भंगे ।
'परमानन्द' दूध में पानी ज्यों मिलवो अंग में अंगे ॥

---

१ रिझाय करि गोपी
२ न अघाई
३ स्वामी आनन्दे बहुत बेर जबपाई
* बीरी (तांबूल) अरोगने के पद हैं ।—संपादक

[६७७] राग टोड़ी

बीरी देत बनाय बनाय ।*
पीरे पान सुगन्ध सुपारी लोंगन कील लगाय ।
लेत लाल कर जोर देत वे मुख मेलत मुसकाय ।
बीरिन को देत उगार 'प्रभु परमानंद' बलजाय ॥

संध्या आरती का पद

[६७८] राग गौरी

आरती जुगल किसोर की कीजै ।
तन मन धन न्योछावर दीजै ॥
गौर स्याम मुख निरखत जीजै ।
प्रेम स्वरूप नयनन भर पीजै ॥
रविससि कोटि बदन की सोभा ।
ताहि देखत मेरो मन लोभा ॥
फूलन की सेज फूलन गलमाला ।
रतन सिंहासन बैठे नंदलाला ॥
मोर मुकुट कर मुरली सोहै ।
नटवर भेस निरख मन मोहै ॥
ओढ़े नील पीट पट सारी ।
कुंजन ललना लाल बिहारी ॥
स्री पुरुषोत्तम गिरिवरधारी ।
'परमानंद स्वामी' अविचल जोरी ॥

* उष्णकाल में बीरी (तांबूल) अरोगाने का पद है । —संपादक

ापन के पद

[६७९] राग नट

सुबल स्रीदाम कह्यो सखन सों अर्जुन संख बजैये ।
घर जेंबे की भई है बिरियाँ स्री गिरिधर लाल जगैये ।।
ठौर ठोर तै मधुर धुनि बाजे मधुर मधुर सुर गैये ।
कुंज सदन जागे नंद नंदन मुदित बीरा फल लैये ।।
हरि भगतन के पूरे मनोरथ गोकुल ताप नसैये ।
मटकत आवत कमल फिरावत 'परमानंद' बलिजैये ।।

[६८०] राग नट

लाडिले यह जल जिनहि पियो ।
जब आरोगोगे तब भरि लाऊं तातो डार दियो ।।
उठो मन मोहन बदन पखारो सुन्दर लोट लियो ।
तुम जानत हम अब ही पौढ़े पहरहि द्यौस रह्यौ ।।
सुनि मृदु बचन स्याम उठ बैठे मान्यौ मात कह्यौ ।
'परमानन्द प्रभु' भये हैं भूखे मैया मेवा मिष्ट दयौ ।।

[६८१] राग पूर्वी

ग्वाल कहत सुनो हो कन्हैया ।
घर जेवे की भई है बिरियाँ दिन रह्यो घड़ी छैया ।।
संख धुनि सुनि उठे हैं मोहन लावो हो मुरली कहाँ धरैया ।
गैया सगरी बगदावोरे घर कों टेर कहत बलदाउ भैया ।।
कन्द मूल फल तर मेवा धरी ओट किये मुरकैया ।
आरोगत ब्रजराय लाडिलो झूंठन देत लरकैया ।।
उत्थापन भयो पहोर पाछलो ब्रजजन दरस दिखैया ।
'परमानंद' प्रभु आये भवन में सोभा देख बलजैया ।।

पौढ़ायवे के पद

[६८२] राग केदा

महल में बैठे मदन गोपाल ।
भीतर जान सोई पावै जाहि बौलै नंदलाल ।।
सुन्दर स्याम सुभग तन चंदन [चरचित] उर सोभित बनमाल ।
नंद को लाल संग राधा के करत रंग रस ख्याल ।
विविध बिनोद करत रस क्रीडा सिज्या फूल गुलाल ।।
'परमानंददास' द्वारै ठाढ़ो चितवत नैन बिसाल ।।

[६८३] राग केदारो

राधा माधौ को मुख नीको ।
देखि नयन हरि मोहन मूरति मिल्यौ भाँमतो जीको ।।
सघन निकुंज कुंज बल्लरी ठौर भलो तें पायो ।
तेरी चौंप प्रीति मैं जानी आँनि समीप बसायो ।।
अब जिन टरन देहु तुम ह्यांते जो भावै सो कीजै ।
'परमानंददास' को ठाकुर सरबसु दे रस लीजै ।।

सयन समय के पद

[६८४] राग कल्य

अमृत निचोय कियो एक ठौर ।
तुम्हरे वदन सुधारि[1] सुधानिधि तबतें बिधना[2] रची न और ।
सुन राधे उपमा कहा दीजै स्याम मनोहर भयो री चकोर ।
सादर पान[3] करत तोहि देखत तृसित काम[4] बस नंदकिसोर ।
कौन कौन अंग करौं री निरूपन गुन और सील रूपकी रास ।
'परमानन्द स्वामी' मन बेध्यो लोचन बंधे प्रेम की पास[5] ।

१ संवारि
२ तादिन विधना
३ पिवत मुदित
४ उर
५ प्यास

[६८५] राग सारंग

माई री[1] चित चोर चोरत आलीरी बांके लोचन नीके ।
यहै सूरत खेलत नयनन में लाल भावते जिय के ॥
एक बार मुसकाय चले जब हिरदैं गड़े गुन पीके ।
'परमानन्द' कोऊ आन मिलाओ पीढे बतरस या तीके[2] ॥

[६८६] राग कलयान

तेरे जिय बसत गोविंद पैयाँ ।
काहे कों अब दुराव करत री मोसों जानत हूँ परखत परछैंयाँ ॥
दिष्टि सुभाव जनावत हों भामिन सोई जक लाग रही मन महीयाँ ।
'परमानंद स्वामी' को प्यारी हाव भाव दै चली गल बहियाँ ॥

[६८७] राग सारंग

आँखिन आगे स्याम उदय भे कहन लागी गोपी कहाँ गये स्याम ।
आदि हूं स्याम अंतहुँ स्याम, रोम रोम रम रह्यो स्याम[3] ॥
मधुवन आदि सकल बन ढूंढ्यो निधुवन कुंजन धाम ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर अंग अंग अभिराम ॥

---

१ मोनन चितैं
२ तिय के
३ काम

[६८८]

कहे राधा देखहु गोविंद ।
भलो बनाव बन्यो है बन को पूरन राका चंद ।।
मंद सुगंध सीतल मलयानिल कालिन्दी के कूल ।
जाइ जुही मल्लिका जूथी फूले निरमल फूल ।।
सब अभिलाख होत है मन के मन ही रहत जिय साध ।
तुम्हारे समीप कौन रस नाँही नाथ सकल सुखसाध ।।
सुनिकै बचन बहुत सुख मान्यो हंसि दीनो अंकवारि ।
'परमानंद प्रभु' प्रीतु जु जानो नागर रसिक मुरारि ।।

उष्णकाल पौढवे के पद

[६८९] रा

दोऊ मिल पौढै सजनी देख अकासी ।
पटतर कहा दीजं गोपीजन नैनन कों सुख रासी ।।
स्यामा स्याम संग यों राजत है मानों चंद्रकला सी ।
कुसुम सेज पर स्वेत पिछौरी सोभा देत है खासी ।।
पवन ढुरावत नैन सिरावत ललिता करत खवासी ।
मधुरै सुर गावत केदारो 'परमानन्द' निज दासी ।।

[६९०] रा

पौढे रंग महल ब्रज नाथ ।
रंग रस की करत बतियाँ राधिका लै साथ ।।
दोउ ओढ़ रजाइ क्रीडत ग्रीवा भुजा भर बाथ ।
'परमानंद' प्रभु काम आतुर मदन कियो सनाथ ।।

१ राध

[६६१] राग केदारो

सुखद सेज पौढ़े श्रीवल्लभ संग लिये श्रीनवनीत प्रिया।
ज्यों जसुमति सुत नंदनंदन को त्यों प्रमुदित मनलाय हिया॥
हुलरावत दुलरावत गावत अँगुरिन अग्र दिखाय दिया।
कहत न बने देखत दृग नैनन सों दुख बिसरत सुख होत जिया॥
डरत जात बालक संग पौढे हाव भाव चित चाव किया।
'परमानंददास' गोपीजन सो जस गायो घोख त्रिया॥

पौढ़वे के पद

[६६२] राग केदारो

पौढे माई ललन सेज सुखकारी।
मनिगन खचित रंग महल में संग श्री राधा प्यारी॥
सहचरि गान करत मधुरे सुर स्रवन सुनत सुर हितकारी।
जन मन मगन भये पिय प्यारी निरख 'परमानंददास' बलिहारी॥

[६६३] राग केदारो

पौढे हरि झीनों पट दै ओट।
संग श्रीवृषभान तनया सरस रस की मोट॥
झलक कुंडल अलक अरुझी हार गुंजा ताटंक।
नील पीत दोउ अदल बदलें लेत भर भर अंक॥
हृदै हृदै सों अधर अधर सों नैन सौं नैन मिलाय।
भौंह भौंह सों तिलक तिलक सों भुज सों भुज लपटाय॥
मालती और जाई चम्पा सुभग जाती बकूल।
'दासपरमानन्द' सजनी देत चुन चुन फूल॥

[६९४] राग वि

कुंज भवन में पौढ़े दोऊ।
नंदनंदन वृखभान नंदिनी उपमा कों दूजो नहिं कोऊ॥
लाल कुसुम की सेज बनाई कोक कला जानत है सोऊ।
रस में माते रसिक मुकुट मनि 'परमानंद' सिंघ द्वारे होऊ॥

कहानी के पद—

[६९५] राग विहा

सुन सुत एक कथा कहूँ प्यारी।
नंदनंदन[1] मन आनन्द उपज्यो रसिक सिरोमनि देत हुते हुँकारी॥
दसरथ नृप जो हते रघुबंसी तिनके प्रकट भये सुत चारी।
तिन में राम एक व्रत धारी जनक सुता ताके घर नारी॥
तात बचन सुन राज त्यज्यो है भ्राता सहित चले बनवारी।
धावत कनक मृगा के पाछे राजीवलोचन केलि बिहारी॥
रावन हरन कियो सीता को सुन नंदनंदन नींद निवारी।
'परमानंद' प्रभु रटत चाप कर लछमन दे जननी भ्रम भारी॥

[६९६] राग विभा

राम कृष्न दोऊ सोये भाई।
कहानी कहत जसोदा रानी सुनत हैं दोऊ अति ही मनलाई॥
जब जान्यो हरि सोय गयेरी तब चुप रही जसोदा माई।
यह सुन नंदभवन में नित ही देख देवगन मन ही सिहाई॥
जाको नाम रटत सिव सारद सेस सहस मुख गीत न पाई।
'परमानंददास' को ठाकुर निज भगतन के अति सुखदाई॥

---

१ कमल नैन

आरती के पद

[६९७] राग सारंग

आरती गोपिका रमन गिरिधरन की निरखत ब्रज युवति आनंद भीनी।
मनि खचित थार घनसार बाती बरे ललित ललितादि सखी हाथ लीनी॥
बिहरत स्री कुंज सुख पुंज प्रिय संग मिलि विविधि भोजन किये रुचि नवीनी।
'दास परमानंद' कहत नवल गोपाल प्रभु परम कृपा कीनी॥

साँज समय घैया के पद

[६९८] राग गौरी

निरख मुख ठाड़ी ह्वै जु हँसे।
धौरी धेनु दुहत नंदनंदन लाडिली हिय में बसे॥
सेलो हाथ बछरुवा मिलवत कौन कौन छबि लागे।
मोतिन थार दोहनी चाँपत मन उपजत अनुरागे॥
यह लीला ब्रह्मा सिव गाई नारदादि मुनि ग्यानी।
'परमानंद' बहुत सुख पायो अरु सुक ब्यास बखानी॥

[६९९] राग गौरी

नेक पठै गिरिधर जु कों भैया।
रही बिन स्याम पत्याय न काहू सुंघत नाहिनै अपनी लैया॥
ग्वाल बाल सब सखा संग के पचिहारे बलदाउ भैया।
हूंक हूंक हेरत सब ही तन इनही हाथ लगी मेरी गैया॥
सुनि तिय बचन कौर हाथ ही दुहुँ दिसि चितवत कुंवर कन्हैया।
'परमानंद' जसुमति मुसकानी संग दियो गोकुल को रैया॥

[७००]

ढोटा कौन कौ मन मोहन ।
सन्ध्या समें खिरक में ठाढ़ौ सखी करत गो दोहन ॥
ग्वालनी एक पाहुनी आई देख ठगी सी ठाढ़ी ।
चित चलि गयो मदन मूरति पै प्रीति निरन्तर बाढ़ी ॥
चल न सकत पग एक सुन्दर चित चोर्यो ब्रजनाथ ।
'परमानंददास' वहै जानै जिहि खेल्यौ है मिलि साथ ॥

[७०१]

गोविंद तेरी गाय अति बाढ़ी ।
सुन ब्रजनाथ दूध के लालन मेल सकों नहीं लाढी ॥
अपनी इच्छा चरें उजागर संक न काहू की माने ।
तुम्हें पत्याय स्याम सुन्दर तुम्हारो कर पहचाने ॥
ऊँचे कान करत मोय देखत उझक उझक होय ठाढ़ी ।
'परमानन्द' नंद जूके घर की बाल दसा की बाढ़ी ॥

थ घैया के पद

[७०२]

तुम पै कौन दुहावत गैयाँ
गूढ़ भाव सुचत अंतर गति अतिसै कान कीन्ह कन्हैयाँ ॥
गुपुत प्रीति तासों मिलि कीजै जो होय तुम्हारी रैया[१] ।
बार बार लपटात फिरत हो यहै सिखायो मैया ॥
ले जु रहे कर कनक दोहनी बैठे हों अध पैयाँ ।
'परमानंद' त्यों हठ मंड्यो ज्यों घर खसम गुसैयाँ ॥

[१] रियाया [अर्थ]

[७०३] राग कल्यान

प्रथम सनेह कठिन मेरी माई ।
दिष्टि परे बृषभान नंदनी अरुझे[1] नयन निरबार न जाई ॥
बछरा छोरि खिरक में दीने आपुन झमकि[2] तिरिछी सी आइ ।
नौबत बृषभ गई मिलि गैयाँ हँसत सखा कहा दुहत कन्हाई ॥
चारों नयन मिले जब सन्मुख नंदनंदन कों रुचि उपजाई ।
'परमानन्ददास' वह नागरी नागर सों मनसा अरुझाई ॥

[७०४] राग कल्यान

गावत मुदित खिरक में गोरी सारंग मोहनी ।
बार बार को बदन निहारत हाथ कनक की दोहनी ॥
कनकलता सी चंपक बरनी स्याम तमाल गोपाल की जोरी ।
ठाढ़ी निरख निकट तन मन सों नंदनंदन की प्रीति न थोरी ॥
उपमा कहा देहु[3] को लायक उनमद रूप नागरि वह नागर ।
प्रीत परसपर ग्रंथि न छूटे 'परमानंद स्वामी' सुख सागर ॥

ब्यारू के पद

[७०५] राग कान्हरो

ब्यारू कीजै मोहन राय ।
मधु मेवा पकवान मिठाई बिंजन सरस बनाय ॥
दार भात और कढी बरी की मिस्री पनो छनाय ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर बलदाउ संग लाय ॥

---

१ अरू से
२ झिमिकि बरिछी
३ देन

[७०६] राग मयन

लाड़िले बोलत है तोहि मैया ।
संझा समें गोधन संग आवत चुंबन लेकर गोद बैठैया ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई दूध भात अरु दार बनाई ।
'परमानन्द' प्रभु करत बियारू जसुमति देख बहुत सुख पाई ॥

[७०७] राग भूपाली

तेरे पैयाँ लागू ँ गिरिधर भोजन कीजै ।
उलटत पलटत झंगुलिया भीजै खात खिवावत सुन्दर तन छीजै ॥
फेनी पापर खुरमा खाजा गुंजा मिस्री लडुवा लीजै ।
बाँट देत सब ग्वाल बालन कों 'परमानन्द' जननी कर लीजै ॥

[७०८] राग भूपाली

चलो लाल बियारू कीजे दोऊ भैया एक थारी ।
दूध भात अरु दार बनाई बोलत है रोहिनी महतारी ॥
इतनो सुनत मन हरखत संग उठि चले देत किलकारी ।
'परमानंद प्रभु' की बतियन पर जसोमति बलिहारी ॥

[७०९] राग कान्हरो

बियारू करत है बलबीर ।
आस पास सब सखा मंडली सुबल सखा मति धीर ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई ओटि सिरायो छीर ।
हँसत परस्पर खात खवावत झपट लेत कर चीर ॥
यह सुख निरख निरख नंदरानी प्रफुलित अधिक सरीर ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर भगत हेत अवतीर ॥

[७१०] राग यमन

आज सवारे के भूखे हो मोहन खावो मोहि लागो बलैया ।
मेरो कह्यो तू नहिं मानत हौं अपने बलदाऊ की मैया ॥
दौर के कंठ लाग्यो मन मोहन मेरी सौं कहि मेरो कन्हैया ।
'परमानन्द' कहत नंदरानी अपने आंगन खेलो दोऊ भैया ॥

दूध के पद

[७११] राग कान्हरो

दूध पियो मन मोहन प्यारे ।
बल बल जाऊँ गहरु जनि कीजे कमल नैन नयनन के तारे ॥
कनक कटोरा भरि भरि पीजे सुख दीजे संग लेहो बलभद्र पियारे ।
'परमानंद' मोहि गोधन की सौं उठत ही करूँगी धैय्यारे ॥

बीरी के पद

[७१२] राग कान्हरो

मथुरा नगर की डगर में चल्यौ जात पायौ है हरि हीरा ।
सुनरी भट्ट लट्ट भयो डोलत गोकुल गाम को अहीरा ।।
बन तें जु आवत बेनु बजावत बंसीबट जमुना के तीरा ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर हंसि दीनौ मुख बीरा ।।

अथ हिलग के पद

[७१३] राग रामकली

अब तों कहा करों री माई ।
जबतें दिष्टि परौ नंदनंदन पल भर रह्यो न जाई ।
भीतर मात पिता मोहि त्रासत जे कुलगारि[1] लगाइ ।
बाहर सबै मुख मोरि कहत है कान्ह सनेहनि आइ ।।
निसबासर मोहि कल न परत है गृह अँगना न सुहाइ ।
'परमानंददास' को ठाकुर हँसि चित लियो है चुराइ ।।

[७१४] राग पूर्वी

हरि सों एक रस प्रीति रही री ।
तन मन प्रान समर्पन कीनो अपने नेम ब्रत लै निबही री ।
प्रथम भयो अनुराग दिष्टि तें मानों रंक निधि लूट लई री ।
कहत सुनत चित अनत न अटक्यो वा लगि जिय पैठ रही री ।।
मर्यादा उलघन सबही की लोक वेद उपहास सही री ।
'परमानन्ददास' गोपिन की प्रेम कथा सुक व्यास कही री ।।

---
१ कुलनारि

[७१५] राग रामकली

ओढ़े लाल स्वेत उपरेनी अति झीनी ।
तनसुख स्वेत सुदेस अंस पर बहुत अरगजा भीनी ॥
अति सुगंध सीतल अरु चंदन सादा रचना कीनी ।
रही झुकि मुख पर पाग दुपेंची कोटि मदन छबि छीनी ॥
सूँथन बनी जरकसी सोभित गति गयंद की कीनी ।
'परमानंद प्रभु' चतुर सिरोमनि ब्रज बनिता प्रेमरस भीनी ॥

खंडिता के पद

[७१६] राग विभास

कमल नयन स्याम सुन्दर निसिके जागे हो आलस भरे ।
कर नख उर राजत हैं मानों अरध ससि धरे ॥
लटपटी सिर पाग खसित बदन तिलक टरे ।
मरगजी उर कुसुममाल भूषन अङ्ग अङ्ग परे ॥
सुरत रंग उमगि रहे रोम पुलक होत खरे ।
'परमानन्द' रसिकराय जाही के भाग ताही के ढरे ॥

[७१७] राग विभास

साँवरे भले हो रतिनागर ।
अबके दुराय क्यों दुरत है प्रीति जु भई उजागर ॥
अधर काजर नयन रँगमगे रची कपोलन पीक ।
उरनख रेख प्रकट देखियत हैं मरम की लीक ॥
पलटि परे तिलक गयो मिट जहाँ कंकन गाढ़े ।
'परमानन्द' स्वामी मधुकर गति भली अपनी चाढ़े ॥

[७१८] राग

चले उठि कुंज भवन तें भोर।
रगमगात लर छूट रही है[१] पहरें पीत पटोर ॥
अरुन नयन घूमत अलसयुत[२] मानों रससिंधु झकोर[३]।
गिरि-गिरि परत कुसुम अलकावलि सोभित सो कचडोर
परे[५] नख अंग युगल कुच अंतर राजत उर[६] तन गोर।
'परमानंद' रमी निसा अबलों पलटि हँसी मुख मोर ॥

खंडिता के वचन

[७१९] राग

भली करी जु आये हो सवारे।
बहुरि भान उदय होइगो प्रगट दिखाये अंक निन्यारे ॥
पलटे पीत नील पट ओढ़े ऐसी कौन चतुर धनि भावत।
एते मान देह सुधि भूली तुमहो जु अपुनपौ बिसरावत ॥
पाँव धारिये मया भई कर गहि बंस तलप[७] बैठारे।
'परमानन्द' प्रभु तुम पै रसपावत आपुन बेदन टारे ॥

[७२०] राग

राधे बात सुनहि किन मेरी।
घर बैठे आई सखि मोपै सोंहै करत हौं तेरी ॥
हौं आयो चाहत हौ तुमपै बीच लियो उन घेरी।
बहुत चतुराई करिके देखी कैसेऊ जात न फेरी ॥
भवन आपने तानि लियो सखि अरु भई रैनि अँधेरी।
परबस परे 'दास परमानन्द' काहि सुनाउँ टेरी ॥

---

१ डगमगात लटकत लट छूटे
२ बस
३ हिलोर
४ सिथिल सों बन डोर
५ पद
६ हिय
७ अंस किसलय

मान छूटबे के पद–

[७२१]

राग केदारो

स्यामा जू कौं स्याम मनाय के आवत ।
ज्यौं ज्यौं कुँवरि चलत हौरे हौरे त्यौं त्यौं पाछे धावत ॥
कबहुँक आगे कबहुँक पाछे नैन सौं नैन जुरावत ।
कबहुँक पन्थ के तिनका तिनका दूर करन कौं धावत ॥
कछुक लच्छनता[1] रही है मान की तातें अति छबिपावत ।
ज्यौं मदमत्त मतङ्ग सदाते डरपत रहत महावत ॥
अतिसय संक मोहन अति आतुर बानिक बहुत बनावत ।
परम रहसि गिरिधर रस लीला 'जन परमानन्द' गावत ॥

[७२२]

राग केदारो

कौन रस गोपिन लीनो घूंट ।
मदन गोपाल निकट करि पाये प्रेम काम की लूट ॥
निरख स्वरूप नंद नन्दन को लोक लाज गई छूट ।
'परमानन्द' बेद मारग की मरजादा गई टूट ॥

देवीपूजन के पद

[७२३]

राग केदारो

स्री राधे कौन गौर तैं पूजी ।
बृन्दावन गोकुल गलियन में सब कोऊ कहत बहूजी ॥
मदन मोहन पियको मन हरि लीनौ कहा बात तोहि सूझी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर तो सम और न दूजी ॥

---

१ तीच्छनता

पनघट के पद

[७२४] राग सूहो

आवै बाबा नन्द को हाथी।
बाहु बिसाल कमल दल लोचन संकर्षन कौ साथी ॥
अपनी इच्छा रहत ब्रज भीतर ग्वालन के संग खेलै ।[१]
केसी तृनावर्त जहँ मारे शकटन पायन पेले[२] ॥
बसुदेव अरू देवकी नन्दन कंस बंस को काल।
'परमानन्ददास' को ठाकुर नायक नंद को लाल ॥

[७२५] राग सूहो

कोऊ मेरे आँगन ह्वै जु गयो।
झलकत[३] जोती वदन की माई सुपनों सो जु भयो ॥
हौं दधि माट मेलि सुन सजनी लेन गई जु मथानी।
कमल नयन की माई चितयो वह मरत मैं जानी ॥
चल[४] नहीं सकत देह गति थाके बहोत ही दुख मैं पायो।
'परमानन्द' चरन गहि रहति तू कति मेरे ह्वै आयो ॥[५]

१—खेल्यौ
२—पाद गहिपेल्यो
३—जगमग
४—पग नहीं चलत
५—परमानन्द प्रभु चरन सरन गहि रहति तू किन गृह में आयो

[७२६] राग सूहो

कमल मुख देखत तृपति न होय ।
यह[1] सुख कहा दुहागनि[2] जाने रही निसा भर सोय ॥
जो चकोर चाहत उड़राजै चंदभवन ह्वै रही जोय[3] ।
नेक अकोर देत नहीं राधा चाहत पियहि निचोय ॥
उनतो अपुनो सरबसु दीनो एक प्रान बपु दोय ।
भजन भेद न्यारो 'परमानन्द' जानत बिरलो कोय ॥

[७२७] राग सारंग

घाट पर ठाड़े मदन गोपाल ।
कौन जुगुति करि भरोंरी जल हौं पर्यो है हमारे ख्याल ॥
द्यौस बढ़्यौ घर सास रिसै है चल न सकत एक चाल ।
कहा करूँ अब यों नहि मानत सुन्दर नंद को लाल ॥
कछुक संकोच, कछू चोप मिलन की परी प्रेम की जाल ।
'परमानन्द स्वामी' चित चोर्यो बेनु बजाय रसाल ॥

[७२८] राग सारंग

नेंक लाल टेको मेरी बहियाँ ।
औघट घाट चढ्यो नहि जाई रपटत हौं कालिन्दी महियाँ ॥
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि स्वरूप गुवाल अरुझानी ।
उपजी प्रीति काम उर अन्तर तब नागर नागरी पहचानी ॥
हँसि ब्रजनाथ गह्यो कर पल्लव जाते गगरी गिरन न पावै ।
'परमानन्द' ग्वालिन सयानी कमल नयन कर परस्योहि भावै ॥

ह
ाल बात सुध ग्रुनि रही
न्द्र मुख जोई

[७२९] राग सारंग

ललन उठाय दैहो मेरी गगरी ।
बलिबलि जाउं छबीले ढोटा ठाड़े देत अचगरी ।
जमुना तीर अकेली ठाड़ी दूसरो नाहिन कोऊ ।
जासौं अब कहौं स्याम घन सुन्दर संग अब नाहिन होऊ ॥
नंद कुमार कहैं नेक ठाड़ी रहि कछुक बात कर लीजै ।
'परमानन्द प्रभु' संग मिले चल बातन के रस भीजै ॥

[७३०] राग सारंग

ठाढ़ो री देखौ जमुना घाट ।
कहा भयो घर गोरस बाढ्यो और गोधन के ठाट ॥
जात पाँत कुल कौन बड़ो है चले जाहु किन बाट ।
'परमानन्द' प्रभु रूप ठगौरी लगत न पलक कपाट ॥

[७३१] राग सारंग

आवत री जमुना भर पानी ।
साँवरे बरन ढोटा कौन को री [माई] बांकी चितवन
गैल भुलानी ॥
हौं सकुची मेरे नैना सकुचे इन नयनन के हाथ बिकानी ।
'परमानन्द' प्रभु प्रेम समुद्र में ज्यों जलधर की बूंद समानी ॥

[अक्ष]य तृतीया

[७३२] राग भैरव

सीतल[१] चरन बाहु भुज बलमें जमुनतीर गोकुल ब्रज महीयां।
सीतल पान छरी सुभ चरनन नित[२] दुपटी अति जतन कहीयाँ॥
गोवर्धन अरु बृन्दावन तरुवर सीतल छैयाँ।
जब घूमत दध मथना सीतल पीवत गोरस को गैयाँ॥
सोवत तें जागत मनमोहन अखियाँ सीतल करत कन्हैया।
गोपीजन नैन के भाजन सुबसबसो ब्रज हलधर घर भैया॥
निरख सीतल ब्रजवास निरख मुख मंगल मूरत जसोदा मैया।
'परमानन्द' सीतल सरसाने बदन कमल की लेत बलैयाँ॥

[७३३] राग सारंग

अक्षय भाग सुहाग राधे को प्रीतम को दिन रतियाँ।*
चंदन पूजि प्रीतम मुख दीजै रीझ रीझ यहै कहों बतीयाँ।
अक्षय सुजस कहाँ लौं भाखौं पार न पावत सेस मुख जतियाँ।
छूटयो मान सहज 'परमानन्द' सुभ दिन नीको अक्षय तृतीयाँ॥

[७३४] राग सारंग

आज धरे गिरिधर पिय धोती।
अतिहो नीकी अरगजा भीनी पीतांबर घन दामिनी जोती॥
टेढ़ी पाग भृकुटी छबि राजत स्याम अंग अद्भुत छबि छाई।
मुक्तामाल फूली बन जाई 'परमानन्द' प्रभु सब सुखदाई॥

---

[१] ...नरखि
[२] ...हेय
* ...स्तुत मान परक पद अक्षय तृतीया पर गाए जाते हैं—संपादक

[७३५] राग सारंग

बन्यो बागो बासना चंदन को।
चम्पकली को पाग बनावत भाल तिलक नव बंदन को ॥
चोली की छबि कहत न आवै काछोटा मन फंदन को।
'परमानन्द' आनन्द तहाँ नित सुख निरखत नंदनंदन को ॥

चंदन के पदः—

[७३६] राग सारंग

चंदन को बंगला अति सोभित बैठे तहाँ गोवर्धन धारी।
सोभित सबै साज बहु औरन संगराजत वृषभान दुलारी ॥
अति सुदेस सारी झरोखो अति ही बिचित्र बनि चित्रसारी।
रतन जटित सरीर बिराजत स्रीनवनील प्रिय सुखकारी ॥
चहूँ ओर ब्रजबनिता निरखत रतन जटित न्योछावर बारी।
'परमानन्द' प्रभु के हित कारन सुभग सेज रुचि रसबाढ़ी।

[७३७] राग विहाग

मान री मान मेरो कह्यौ।
मदन गोपाल लाल गिरिधरन बिनु अनत न तौपै रह्यौ ॥
प्रथम हेमन्त मास व्रत आचरि कत जमुना जल सीत सह्यौ।
नंद गोप सुत माँगि भलो वर भागि आपने तैं जु लह्यौ ॥
जब हरि पठई तब हौं आई पानि पानि ब्रजनाथ गह्यौ।
'परमानंददास' गिरिधर बिनु यह रस जात अकाथ बह्यौ ॥

ानयात्रा के पद

[७३८] राग टोड़ी

करत गोपाल जमुना जल क्रीड़ा ।
सुर नर असुर थकित भए देखत बिसर गई तनमन जिय पीड़ा ॥
मृगमद तिलक कुंकुमा चंदन अगर कपूर बास बहु मुद वन ।
कछु मुद मगन रसिक नंदनंदन कमल पानि परस्पर छिरकन ॥
निरमल सरद कलाकृति सोभा बरखत स्वाँति बूँदजल मोती ।
'परमानंद' बचन मन गोपी मरकत मनि गोबिंद मुख जोती ॥

[७३९] राग टोड़ी

लाल कौ छिरकत है ब्रजबाल ।
जमुना जल उछलत चहुंदिसतें हँसत हँसावत ग्वाल ॥
बाँह जोटी फिरत परसपर पीत कमल मनिमाल ।
'परमानन्द' प्रभु तुम चिरजीयो नंद गोप के लाल ॥

[७४०] राग टोड़ी

पूरन मास पूरन तिथि स्री गिरिधर करत स्नान मन भायौ ।
अति आनंद सों न्हवावत स्री विट्ठल ज्यों बिधि वेद बतायौ ॥
उत्तम ज्येष्ठ ज्येष्ठा नच्छत्र होत अभिषेक भगतन मन भायो ।
'परमानन्द' लाल गिरवरधर अति उदार दरसायौ ॥

[७४१] राग टोड़ी

घट भरि चली चंद्रावल नारी ।
मारग में खेलत मिले घनश्याम मुरारी ॥
नयन सो नयन मिले मन रह्यौ लुभाय ।
मोहन मूरति मन बसी पग धर्यो न जाय ॥
तब की प्रीति प्रकट भई पहली भेंट ।
'परमानंद' ऐसी मिली जैसे गुड़ में चेंट ॥

रथयात्रा के पद

[७४२] राग मलार

देखौ माई रथ बैठे गिरिधारी ।
राजत परम मनोहर सब अंग संग राधिका प्यारी ॥
मनि मानिक हीरा कुन्दन रुचि डाँडी पाँच प्रवारी ।[1]
विधि करि रच्यो विचित्र विधाता अपने हाथ सवारी ॥
गादी सुरंग ताफता सुन्दर लरे बाँह छबि न्यारी ।[2]
छत्र अनूपम हाटक कलसा झूमक लर मुक्तारी ॥
चपल बहै चलत हंस गति उपजत है छबि भारी ।
दिव्य डोरि पंचरंग पाट की कर गहै कुञ्ज बिहारी ॥
बिहरत ब्रजबीथिन बृन्दावन गोपी जन मनुहारी ।[3]
कुसुमांजलि बरषत सुरनर मुनि 'परमानंद' बलिहारी ॥

---

१ चार सँवारी
२ भारी
३ मन हारी

[७४३] राग बिलावल

तुम देखौ माई रथ बैठे गोपाल ।
हीरा मोती पाँत बनी है बिचबिच राजत लाल ।।
बेरख फरहरात कलसन पर अरुन हरित बहुरंग ।
अति ही विचित्र रच्यौ बिस्वकर्मा सोभित चार तुरंग ।।
खेंचत ग्वाल बाल सब संग के करत कुलाहल भारी ।
किलकत हँसत दोऊ री भैया मुदित होत गिरधारी ।।
खेलन चले सुभग बृन्दाबन सोभा बरनि न जाई ।
या छवि पर तन मन धन वारत 'दास परमानंद' पाई ।।

नाव के पद

[७४४] राग सारंग

बैठे घनस्याम सुन्दर खेवत हैं नाव ।
आज सखी मोहन संग खेलबे को दाव ।।
जमुना गंभीर नीर अति तरंग लोलै ।
गोपिन प्रति कहन लागे मीठे मृदु बोलै ।।
पथिक हम खेवट तुम लीजिऐ उतराई ।
बीच धार माँझ रोकि मिष ही मिष डुलाई ।।
डरपत हौं स्याम सुन्दर राखिये पद पास ।
याहि मिष मिल्यो चाहे 'परमानन्ददास' ।।

[७४५] राग सारंग

जमुना जल खेवत हैं हरि नाव ।
बेग चलो बृषभान नन्दिनी अब खेलन को दाव ।।
नीर गम्भीर देख कालिन्दी पुन पुन सुरत करावै ।
बार बार तुव पंथ निहारत नैनन में अकुलावै ।।
सुन के बचन राधिका दौरी आई कंठ लपटानी ।
'परमानन्द प्रभु' छवि अवलोकत थिथक्यौ सरिता पानी ।।

[७४६] रा

माई मेरो हरि नागर सों नेह ।*
सुनरी सखी क्योंहू नहि छूटत[1] पूरबलो सनेह ।।
सब अंग[2] निपुन सकल ब्रज सुन्दर स्याम बरन सब दे
जबते दिष्टि परौ नंदनंदन तब ते बिसर्यो गेह ।।
कोउ निंदौ कोउ बंदौ मन कौ गयौ सँदेह[4] ।
सरिता सिन्धु मिलि 'परमानंद' एकटक बरस्यो मेह[5] ।

[७४७]

घन में छिप रही ज्यों दामिनी ।
नंद कुँवर के पाछे ठाढ़ी सोहत राधा भामिनी ।।
बाल दसा अपने रंग खेलत सरद सुहाई जामनी ।
'परमानन्द स्वामी' रस भीने प्रेम मुदित गजगामिनी ।।

[७४८]

छबीली भौंह तेरी लाल गिरिधर मानौं चढ़ी कमान ।
देखत रूप ठगौरी लागी लोचन मनसिज बान ।।
करतल बेनु अधर पुट दीने जबहि करत हौं गान ।
सुरपति नारि सुनत रब मोही थाके व्योम व्यमान ।।
कंदर्प कोटि बारनैं करिहौं या ब्रह्म की ठान ।
'परमानंद स्वामी' रति पति नायक मेटत हो अभिमान

* प्रस्तुत पद ज्येष्ठ कृष्ण १ से अमावस्या तक गाये जाते हैं ।
1. एक बार कैसे छूटत है पूरव बढ्यो सनेह
2. बन्यो
3. तन देह
4. सनेह
5. भयो एक रस नेह

...र की शोभा

[७४९] राग सारंग

बने माधौ के महल ।
जेठ मास अति जुड़ात माघमास कहल ॥
दूरि भये देखियत बादर के से पहल ।
बीच बीच हरित स्याम जमुना के से दहल ॥
ब्रजपति के कहा अनूप यह बात सहल ।
'परमानन्ददास' तहाँ करत फिरत टहल ॥

[७५०] राग सारंग

फुलन के बंगला बने अति छाजे बैठे लाल गोबरधन धारी ।
चम्पक बकुल गुलाब निवारो लाल अनार सुधारी ॥
पीत चमेली चितको चोरत रायेबेली महकारी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर तन मन धन बलिहारी ॥

[७५१] राग सारंग

आई तू फिरिगई बिनु आदर ।
मैं बाकी संभाषन कीनो रबकि जु आये बादर ॥
धौरो दुहत भई दुचिताई प्रथम पहर की जामिन ।
मेरे प्रेम भवन तजि आई बिमुख गई वह भामिन ॥
बाके मन में कहा बीतत है प्रानजीवन धन राई ।
'परमानन्द' प्रभु' कह्यो प्रनय करि दूती तू चलि जाई ॥

ंकेत के पद

[७५२] राग स

सँदेसों राधिका को लीजै ।
तुम दूरि बैठे सघन कुंज से ऐसौ खेल न कीजै ॥
आइ फिरि गई चाहि सब कानन चंद्रबदनि सुकुमारी ।
रहे मौन धरि ताहि देखि हरि कठिन काम सरमारी ॥
बेग चलहू हरि बिलंबु करऊ कत वह कंदब तर ठाढ़ी ।
'परमानन्द प्रभु' तुम्हरे रूप सौं प्रीति निरंतर बाढ़ी ॥

[७५३] राग सा

लाल तेरी लाडली लडबौरी ।
चाहत फिरत अकेली बन बन लागी प्रेम ठगौरी ॥
यहै तुम करी नंदनंदन जू बांह बोल दे हटकी ।
जानै न करम भरम[१] अति गोरी रूप देखि तब लटकी ॥
सुनि ब्रजनाथ अनाथ नाथ तुम यह न बूझिये नागर ।
'परमानंद प्रभु' अब न छाँड़ि हौं करी सब बात उजागर ॥

[७५४] राग सारं

जसुमत गृह आवत गोपीजन ।
बासर ताप निबारन कारन बारम्बार कमल मुख निरखन ॥
चाहत पकरि देहरी उलंघन किलक किलक हुलसत मन ही मन ।
राई लोन उतारि दोऊ कर वारी फेरि वार तन मन धन ॥
लेत उठाय चापत हियो भरि प्रेम बिबस दृग लागे ढरकन ।
चली लै पलना पौढ़ावन कों असकसात पौढ़े सुन्दरघन ॥
देत असीस सकल गोपीजन चिरजीवो जौलों गंग जमुन ।
'परमानंददास' को ठाकुर भगत बछल भगत मनरंजन ॥

उष्ण काल दुपहरी के पद

[७५५] राग सारंग

ऐसी धूपन में पिय जाने न देहूँगी ।
बिनती कर जोर प्रिया के हा हा खात तेरे पैयाँ परूँगी ॥
तुम तो कहावत फूल गुलाब के संग के सखा ग्वालन गारी देऊँगी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर करतें मुरलियाँ अचक हरूँगी ॥

कुंज के पद

[७५६] राग सारंग

चलो[१] किन देखन कुंज कुटी ।
मदन[२] गोपाल जहाँ मध्य नायक[३] मन्मथ फौज लुटी ।
सुरत समर[४] में लरत सखी की मुक्ता माल टुटी ।
उरज तें जु कंचुकी चुरकुट भई कटि पट ग्रन्थि छूटी ॥
रसिक सिरोमनि सूर नंद सुत दीनी अधर घुंटी ।
'परमानन्द' गोविंद ग्वालन की नीकी जोट जुटी ॥

[७५७] राग सारंग

चलो सखी कुञ्ज गोपाल जहाँ[५] ।
तेरी सौं मदन मोहन[६] मैं चलि लै जाउं तहाँ ।
आछे कुसुम मंद मलयानिल तरु कदंब की छाँह ।
तहाँ निवास कियो नंदनंदन चित तेरे तन माँह ॥
ऐसो री बात सुनत ब्रजसुन्दर तोहि रह्यो क्यों भावे ।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहन भाग बड़े ते पावे ॥

---

१ चलहि
२ सुन्दर स्याम
३ मदन मोहन
४ मोर
५ कहाँ
६ जहाँ मन मोहन

[७५८] राग सारंग

नीकी बानिक नवल निकुंजकी ।
बरन बरन प्रफुल्लित द्रुम बेली मधुमाडे अलि गुंज की ॥
करत बिहार तहां पिय प्यारो संपति आनन्द पुंज की ।
'परमानन्द प्रभु' की छबि निरखत मनमथ मनसा कुंज की ॥

कुसंबी छटा के पद

[७५९] राग सारंग

आज नव कुंजन की अति सोभा ।
करत बिहार तहाँ पिय प्यारी निरख नयन मन लोभा ॥
रूप वारि संचित निज जन को उठत प्रेम की गोभा ।
'परमानन्द' प्रभु की चितवनि लागत चित की चोभा ॥

[७६०] राग सारंग

सोभित नव कुंजन की छबि भारी ।
अद्भुत रूप तमाल सों लपटी कनक बेलि सुकुमारी ॥
वदन सरोज डहडहे लोचन निरखत छबि सुखकारी ।
'परमानंद' प्रभु मत्त मधुप है स्री वृषभान सुता फुलवारी ॥

संवत्सर के पद

[७६१] राग सारंग

बरस प्रबेस भयौ है आज ।
कुंज महल में बैठे पिय प्यारी लालन पहरे नौतन[1] साज ॥
आछे कुसुम मंद मलयानिल तरू कदम्ब की छांह ।
तहाँ निवास कियो नन्दनंदन चित तेरे मन माँझ ॥
ऐसीरी सुनत ब्रज सुन्दरि तोहि रह्यौ क्यों भावे ।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहन भाग बड़ेतें पावे ॥

[७६२] राग बिलावल

मोहन सिर धरे कुसंबी पाघ ।
तापर धरचौ कुल्हे सिर सोहत हरित भूमि अनुराग ॥
तैसे ही बन्यौ कुसंबी पिछौरा छड़ी हाथ में लीने ।
करत केलि गिरधरन लाल तहँ 'परमानंद' रस भीने ॥

श्याम घटा के पद

[७६३] राग सूहो

बादरू भरन चले है पानी ।
स्याम घटा चहुँ ओर तें आवत देखि सबै रति मानी ॥
दादुर मोर कोकिला कलरव करत कोलाहल भारी ।
इन्द्र धनुष बग पाँति स्याम छवि लागत है सुखकारी ॥
कदम वृक्ष अवलंब स्याम घन सखा मंडली संग ।
बाजत बेन अरु अमृत सुधा सुर गरजत गगन मृदंग ॥
रितु आई मन भाई सबैं जिय करत केलि अति भारी ।
गिरिवरधर की या छबि ऊपर 'परमानन्द' बलिहारी ॥

---

१ नूतन

...नरी के पद

[७६४]

देखो माई भीजत रस भरे दोउ।
नंद नंदन वृषभान नंदनी होड परी है जोऊ॥
सुरंग चूनरी स्यामा जू की भीजत है रस भारी।
गिरधर पाग उपरना भीज्यो या छबि ऊपर वारी॥
बात ही बात होड़ भयी भारी ललितादिक समुझावें।
दोऊ मिलि झगरत मानत नाहीं सखी सब बूंद बचावे
तब मोहन हारे सिर नाए हँसी सकल ब्रजनारी।
'परमानंद प्रभु' यह बिधि क्रीड़त या सुख की बलिहा

[७६५]

बरस रे सुहाये मेहा मैं हरि कौ संग पायो।
भोजन दे पीताम्बर सारी बड़ी बड़ी बूँदन आयो॥
ठाड़े हँसत राधिका मोहन राग मल्हार जमायो।
'परमानंद' प्रभु तरुवर के तर लाल करत मन भायो।

[७६६]

बृन्दावन क्यों न भए हम मोर।
करत निवास गोवर्धन ऊपर निरखत नंदकिसोर॥
क्यों न भए बंसी कुल सजनी अधर पीवत घनघोर।
क्यों न भए गुंजावन बेली रहत स्याम जू की ओर।
क्यों न भए मकराकृत कुंडल स्याम स्रवन झकझोर।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गोपिन के चित चोर॥

[७६७] राग सारंग

गावे गावे घनस्याम तान जमना के तीरा ।
नाचत नट भेष धरे मंडल भीरा ॥
नैन लोल चारू बोल अधर धरे बैना ।
आवत मुख कमल की छबि मंडित कच रैना ॥
जल की गति मंद भई सुरभी तृन न लीना ।
बछरा न खीर पीवत नाद ही मन दीना ॥
मोहै खग मृग नर मुनि मधुकर ग्यानी ।
'परमानन्द स्वामी' गोपाल लीला बन ठानी ॥

[७६८] राग सारंग

अरी इन मोरन की भाँति[१] देख नाचत गोपाला ।
मिलवत गति भेद नीके मोहन नटसाला ॥
गरजत घन मंद मंद दामिनी दरसावै ।
रमकि झमकि बूंद परे राग मल्हार गावै ॥
चातक पिक सघन कुंज बार बार कूजै ।
बृन्दावन कुसुम लता चरन कमल पूजै ॥
सुर नर मुनि कामं धेनु कौतुक सब आवै ।
बार फेरि भगति उचित 'परमानंद' पावै ॥

[७६९] राग केदारो

माधौ भलौ बन्यौ आवै हो ।
देखत जिय भावै हो ॥
मोर पंख के चंदुवा नीकै माथे बांध लिये ।
गुंजा फल के हार बनाए सब सिंगार किये ॥
कुंडल बीच कदंब मंजुरी चरन कुंतल सोहै ।
मृगमद तिलक भौंह मन्मथ धेनु देखत सब जग मोहै ॥
स्याम कलेवर गोरज मंडित कोमल कमल दल भाल ।
'परमानन्द' प्रभु गोप भेष धर कूजत बेनु रसाल ॥

---
१ पाँति

फूलमंडली के पद

[७७०] राग कानरो

फूलन की चोली फूलन के चोलना ।
फूल माथै फूल हाथै कानन के फूल फूलन की सेज नीकी
फूलन के चंदवा ॥
फूलन के माल मसूरी फूलन के जरवा सुई आगे पाछे पाछे फूल ।
फूलन के महल फूलन के परदा 'दासपरमानंद'
राधा माधौ फूल ॥

[७७१] राग केदारो

फूलन के अठखम्भा राजत संग बृषभान दुलारी ।
मोर चंद सिर मुकुट बिराजत पीताम्बर छबि भारी ॥
फूलन के हार सिंगार फूलन के सखी सुकुमारी ।
'परमानन्द दास' को ठाकुर ब्रज जीवन मनहारी ॥

[७७२] राग टोड़ी

मुकुट की छाँह मनोहर किए ।
सघन कुंजतें निकसत साँमरो संग राधिका लिए ॥
फूलन के हार सिंगार फूलन खोर चंदन किए ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ग्वाल बाल संग लिए ॥

[७७३] राग टोड़ी

आछे बने देखो मदन गोपाल ।
बहुत फूलफूलें नंदनंदन तुमकों गूंथौंगी माल ॥
आय बैठो तरुवर की छैया अंबुज नयन विसाल ।
नैक बयार करौं अंचल की पाय पलोटोंगी लाल ॥
आछे तब राधा माधव सौं बोलत वचन रसाल ।
'परमानंद' प्रभु इहाँ आये हो ब्रज तजि और न चाल ॥

[७७४] राग सारंग

बात कहत रसरंग उचछलिता ।
फुलन के महल बिराजत दोऊ मेद सुगंध निकट बहै सलिता ॥
मुख मिलाय हंसि देखत दरपन सुरत स्रमित उरमाल विगलिता ।
'परमानंद प्रभु' प्रेम बिबस हम दोउन में सुन्दर को कहि ललिता ॥

पवित्रा हिंडोरा के पद

[७७५] राग सारंग

पहरे पवित्रा बैठे हिंडोरे दोऊ निरखत नयन सिराने ।
वह राजत नव निकुंज महल में कोटिक काम लजाने ॥
हास बिलास हरत सबके मन अंग अंग सुख साने ।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहन उपजत तान बिताने ॥

[७७६] राग

पवित्रा पहिरें परमानन्द ।
स्रावन सुदि एकादिसि के दिन गिरिधर गोकुल चंद ।।
स्रो बृषभान नंदिनी निजकर ग्रथित बिबिध पटभाँत ।
ता मध्य सुभग सुबरन सूत्र सौं पोई नवसति जात ।।
पवित्रा पेहरें हिंडोरे झूलत दोऊ आनंद कंद ।
जमुना पुलिन में कुंज मनोहर गावत 'परमानंद' ।।

[७७७] राग

झूलत नवल किसोर किसोरी ।
उत ब्रजभूषन कुंवर रसिकवर इत बृषभान नंदिनी गोरी ।।
नीलांबर पीतांबर फरकत उपमा घनदामिनि छबि थोरी ।
देख देख फूलत ब्रज सुन्दरि देत झुलाय गहें कर डोरी ।।
मुदित भई यों स्वर मिल गावें किलक किलक दे उरज अकोरी ।
'परमानंद' प्रभु मिलि सुख बिलसत इन्द्र बधू सिर धुनत झकोरी

[७७८] राग सा

हिंडोरे झूलत है भामिनी ।
स्यामा स्याम बराबर बैठे सरद सुहाई यामिनी ।।
एक भुजा कर डारी टेकी एक परे असकंध ।
मीठी बातें करत परस्पर उभय प्रेम अनुबंध ।।
लरकाई में सब कछु बनि आवै कोई न जाने सूत ।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर नन्द राय को पूत ।।

[७७९] राग टोड़ी

पवित्रा पहरत राजकुमारी ।
तीन्यौ लोक पवित्र किए है स्री विट्ठल गिरिधारी ॥
अति ही पवित्र प्रिया बहु बिलसित निरख मगन भयो भारी ।
'परमानन्द' पवित्र की माला गोकुल की निज नारी ॥

[७८०] राग बिलावल

पवित्रा पहरत स्री गोकुल भूप ।
सावन सुकल एकादसी मंगल को निज रूप ॥
आनंद चारू रसिकवर सुन्दर 'परमानंद' रसरूप ।
बृन्दावन को चन्द्र स्री वल्लभ छिन छिन रूप अनूप ॥

[७८१] राग सारंग

पवित्रा पहरत गिरिधर लाल ।
सुन्दर स्याम छबीलो नागर सकल घोख प्रतिपाल ॥
हँसि मन हरत हमारो मोहन संग नागरी बाल ।
फूली फिरत मत्त करिनीवत अति आनंदै नंदलाल ॥
देख स्वरूप ठगी सी ठाड़ी दंपति दल के साज ।
'परमानंद' प्रभु पर न्यौछावर प्रान प्रिया के काज ।

[७८२]

पवित्रा लाल के कंठ सोहै ।
सोने के गेंदा रूपा के रचि पचरंगे पाटके पोहै ।।
अति विचित्र माला वर देखियत जसोदारानी[1] मन मोहै
'परमानन्द' देखि सुख पायो[2] हृदय[3] हरख दृग जोहै ।

[७८३] रा

बैठे हैं पहरें पवित्रा दोऊ निरखत नयन सिराने हो ।
राजत रचि रचि[4] कुंज भवन में कोटि काम लजाने हो ।
रहसि विलास हरत सबको मन अंग अंग सुख साने हो ।
'परमानंद स्वामी' सुख सागर उपजत तान विताने हो ।।

[७८४]

पवित्रा पहरे स्री गिरिवरधारी ।
वृषभाननंदिनी संग राजत अंग अंग छबि न्यारी ।।
हाटक पहोंप पाट पचरंग उर माला ढिग सोहे ।
निरखत नयन मैन गति थाकी जो देखे सो मोहे ।।
सोभा सिंधु सकल सुख सीमा माँगत गोद पसारी ।
'परमानंद' पहराए पवित्रा निरखत हैं ब्रज नारी ।।

१ सुरनर मुनिजन
२ यह सोभा
३ जसुदारानी
४ रुचि रुचि

[७८५]　　राग सारंग

पवित्रा उत्सव को दिन आयो ।
ब्रजबासिन मिलि मंगल गायो स्याम निरखि सचु पायो ॥
यह बल सहित मोहन आयौ है संतन के मन भायो ।
नंद जसोदा हँसि हँसि भेटत मोतिन चौक पुरायो ॥
सुरनर मुनि सब देखन आये ढोल निसान बजायो ।
'परमानन्द स्वामी' की लीला निगमनि अगम बतायो ॥

[७८६]

गेंदा गिनती के हैं नीके ।
पीरे राते उजरे भूरे नीले कमल से फीके ॥
पहिरे परम मनोहर माला जुवती जनके जीके ।
देखत हरखत नैन सिराने लेति बलैया पीके ॥
पहिर पीतांबर पाग मनोहर कुमकुम तिलक सु नीके ।
'परमानन्द' भाग तैं पइयत देखत सुख दृग हीके ॥

हिंडोरा के पद

[७८७]　　राग मल्हार पूर्वी

यह सुख सावन में बनि आवै ।
दूल्हे दुलहिन संग झुलावै ॥
नंद भवन राच्यौ सुरंग हिंडोरो ।
गोप बधू मिलि मंगल गावै ॥
नंद लाल को राधा जू पै ।
हरि जू पै राधा जी को नाम लिवावै ॥
जसुमति सू परमानंद तिहि छन ।
वार फेर न्यौछावर पावै ॥

[७८८]

गोपी गोविंद गुन विमल परमहित गावै गीत । ध्रुव
प्रथम पावस मास आगम गगन घन गंभीर ।
लसै दामिनि दिसा पूरब अति प्रचंड समीर ॥
तहाँ हंस चातक बन कुलाहल वचन अद्भुत बोल ।
गोपाल बाल निकुंज विहरत सखा संग कलोल ॥
तहाँ बकैं दादुर मुग्ध कोकिल मूढ़ पावस घोर ।
तहाँ नदी छुद्र अपार उमड़ी मिलत बसुधा नीर ॥
हरियारे तृन महि चंद उडुगन अति मनोहर लाग ।
बलभद्र के संग धेनु चारत नंद के अनुराग ॥
तहाँ कंद्रा गिरि चढ़े हेला करत बाल बिनोद ।
तहाँ जाय खोजत बृच्छ कोटर मच्छिका मधुमोद ॥
कोऊ बोले बानो पंछी कोऊ गावे गीत ।
कोऊ न जानें गोप लीला ब्रह्म गति विपरीत ॥
तहाँ चक्रवाक चकोर चातक हंस सारस मोर ।
तहाँ सूवा सारस सरस भृंगी करत चहूं दिसि रोर ।

[७८९]

बाट सरोवर मध्य नलिनि मधुप कों मधुपान ।
नंद गोकुल कृष्न पाले अमर पति अभिमान ॥
तहाँ रच्यौ हिंडोरो धवल बानी कासमीरी खंभ ।
हीरा पिरोजा पाँतिमुक्ता और अति आरंभ ॥
बनी चित्र विचित्र सोभा तीर धनु संधान ।
जैसे राम रावन जुद्ध क्रीड़ा देखिए अनुमान ॥
जहाँ बहुत गोरस माँट मथना चलत कंकन हीर ।
तहाँ मल्लिका सिर गूंथि बेनी स्रवन सोभित चीर ॥
तहाँ कनक बरन सुभाय सुंदरी अमी बचन रसाल ।
प्रेम मुदित मुरारि चितधरि गावे राग मल्हार ॥

[७८९]

तहां होत मंगल घोख घर घर जहाँ रमा अनंत ।
बैकुंठनाथ दयाल स्रीपति सोहै स्री भगवंत ॥
देव मुनि सब हँसत जदुबर प्रनत पूरन काम ।
बेद बानी बदत निसदिन भक्त जन बिस्राम ॥
तहां जनम करम असेष महिमा सेष सारद भाख ।
देवकी नंदन नाम पावन त्रिविध दुख लै राख ॥
चरन अम्बुज दीप नख मनि चिलित अति अघनास ।
मनक्रम वचन सुभाय 'परमानंददास' निवास ॥

[७९०]

राग अड़ाना

हिंडोरो री ब्रज के आँगन माँच्यौ ।
ब्रह्मादिक कौतुक भूले संकर तांडव नाच्यौ ॥
सुक सनकादि नारद मुनिजन हिंडोरो देखन आए ।
नंद को लाल झुलावत देख्यौ बहुत तूठ हम पाये ॥
जुवती जूथ अटा चढ़ ठाड़ी अपनो तन मन वारे ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर चित चोरयौ यह कारे ॥

[७९१]

राग सोरठ

हिंडोरे झूलें गिरवरधारी ।
जमुना की तट परम मनोहर संग राधिका प्यारी ॥
झूलन आईं सकल ब्रज सुंदरि षटदस भूषन सारी ।
नाचत गावत करत कुलाहल देत परस्पर तारी ॥
दादुर मोर चकोर पपैया बोलत हैं सुखकारी ।
सारस हंस कोकिला कूजत गुंजत है अलि भारी ॥
सुर मुनि सब मिल कुसुमन बरसत मुनिवर छूटी तारी ।
यह सुख निरख 'दासपरमानंद' तन मन धन बलिहारी ॥

[७९२]

रसिक हिंडोरना माई झूलत स्त्री मदन गोपाल ।
हरि हिंडोरा ही रच्यौ कुंजन जमुना कूल ॥
तहाँ बेल चंपा मोगरो केवरो अरु बहु फूल ।
निरखि सोभा थकि रह्यो मिट गयो मन को सूल ॥
तुब लाज खुभी चित्र चित्रित नयन दिए हैं दुकूल ।
रतन जटित के खंभ दोऊ लगे प्रवालहि लाल ॥
कंचन को माल्हवा बन्यो पटुली जु परम रसाल ।
तन कुसुंभी चीर पहिरें आईं सब ब्रज बाल ॥
अंग अंग सज नव सत भामिनी दिए तिलक सुभाल ।
गोपी जू हरि संग झूलहि आनंद सुख के बाल ।

[७९३]

वक्र भौंह लगाय बेसर मुख ही भरे तंबोल ।
स्याम सुंदर निकस ठाड़े अपुने अपुने टोल ॥
गावत राग मल्हार दोऊ मिल देत हिंडोल झकेलि ।
धन धन गोपी सुफल जीवन करत हरि संग केलि ।
कृष्न कृष्न कहि नाम बोलत देत है रंग रेलि ।
चिरजीवो सखि मदन मोहन फले जसोदा बेलि ॥
'परमानन्द' नंद नंदन चरन निज[१] चित मेलि ॥

[७९४]

लाल प्यारी झूलत है संकेत ।
संग झूलत ब्रखभान नंदिनी ललिता झोटा देत ॥
मुदित परस्पर गावत दोऊ अलापत राग मलार ।
खसि खसि परत नील पीतांबर कछु न अंग संभार ।
उनये मेघ सकल बन राजत अद्भुत सोभा देत ।
'परमानन्द प्रभु' रस मय झूलत सखी बलैया लेत ॥

---
१ नित

राखी के पद

[७९५] राग सारंग

राखी बाँधत जसोदा मैया ।
बहु सिंगार सजे आभूषन गिरिधर हलधर भैया ॥
रतन खचित राखी बाँधी कर पुन पुन लेत बलैया ।
सकल भोग आगे धर राखे तनक जु लेहु कन्हैया ॥
यह छबि देख मगन नंद रानी निरख निरख सचुपैया ।
जियो जसोदा पूत तिहारो 'परमानंद' बलि जैया ॥

[७९६] राग बिलावल

राखी बंधन नंद कराई ।
गर्गादिक सब रिसिन बुलाये लालहिं तिलक बनाई ॥
सब गुरू जन मिलि देत असीसे चिरजीवहु ब्रजराई ।
बड़ो प्रताप बड़ो ढोटा को प्रतिदिन दिनहिं सवाई ॥
आनंदे ब्रजराज जसोदा मानो अधन निधि पाई ।
'परमानंददास' की जीवनि चरन कमल लपटाई ॥

[७९७] राग टोड़ी

राखी बाँधत जसोदा मैया ।
मधुमेवा पकवान मिठाई आरोगो प्रभु धैया ॥
बरस दिवस की कुसल मनावत विप्रन देत बधैया ।
चिरजीयौ मेरो कुँवर लाड़िलो 'परमानंद' बलिजैया ॥

[७६८]

सब ग्वालिन मिलि मंगल गायो ।
राखी बाँधत मात जसोदा मोतिन चौक पुरायो ॥
विप्रनु देत असीस सबनि की प्रनव करि मंत्र पढ़ायो ॥
नंद देत दछिना गाइन संग मंगलचार बधायो ॥
स्रावन सुदी पून्यो के सुने दिन रोरी तिलक बनायो ।
पान मिठाई नारिकेलि फल सोना हाथ धरायो ॥
नव भूषन नव बसन जसोदा सबहिन कों पहिरायो ।
देत असीस बिरध नरनारी चिरजीवो जसुमति को जाय
याही भाँति सलूनों तुम कौं गिरिधर नित नित आवौ ।
जन्म द्यौस नियरे आयौ है घोख विचित्र बनावौ ॥
ताल किन्नरी ढोल दमामा भेरि मृदंग बजावौ ।
लीला जनम करम हरि जू के 'परमानंद' जस गावौ ॥

ल्हार के पद

[७६९]

झूमि रहे बादर सगरी निसा के
बरसन कों रहे हैं छाय ।
जागे सब ग्वाल बाल
आए दौरि[१] ठाड़े द्वार
लीने हैं लाल जगाय ॥
दोहनी धोय दीनी हाथ
हलधर दिए हैं साथ
बछरा जोवत मग राँभत है गाय ॥
'परमानन्द' नंद रानी
फूली अंग न समानी
बार बार सुत को[२] लेति बलाय ॥

---

[१] धेरि
[२] तेरी लेऊँ

[८००] राग रामकली

हरि जस गावत चली ब्रज सुंदरि नदी[१] जमुना के तीर ।*
लोचन लोल बाँह जोटी कर स्रवनन झलकत वीर ।।
बेनी सिथिल चारू काँधे पट कटि पर अंबर लाल ।
हाथन लिये फूलन की डलियाँ उर मुक्ता मनि माल ।।
जल प्रबेस करि मज्जन लागी प्रथम हेम के मास ।
जैसे प्रीतम होय नंद सुत ब्रत ठान्यौ इह आस ।।
तब तें चीर हरे नन्द नन्दन चढ़े कदंब की डारि ।
'परमानन्द प्रभु' बर देबै कौं उद्यम कियो है मुरारि ।।

[८०१] राग रामकली

देहो ब्रजनाथ हमारी आँगी ।
नातरु रंग विरंग होयगो कई बिरियाँ हम मांगी ।।
ब्रज के लोग कहा कहैंगे देख परस्पर नाँगी ।
खरे चतुर हरि हो अन्तरगत रैन परी कब जागी ।।
सकल सूत कंचन के लागे बीच रतनन को धागी ।
'परमानन्द प्रभु' दीजिए काहेन प्रेम सुरंग रंग पागी ।।

[८०२] राग रामकली

मानरी मान मेरो कह्यौ ।
मोहन मदन गोपाल मिले बिनु अंत तऊ परिहौ ।।
प्रथम हेमन्त मास ब्रत आचरि कत जमुना जल सीत सह्यौ ।
नंद गोप सुत माँगि भलौ बर भाग अपनते जु लह्यौ ।।
जो हरि पठई तौ हौं आई पानि पानि ब्रजनाथ गह्यौ ।
'परमानन्द प्रभु' प्रीति मानि है यह रस जात अकाथ बह्यौ ।।

---

[१] ...ी

* ...स्तुत पद चीर हरण [व्रतचर्या] के है ।—सं०

[८०३] राग रामकली

हौं मोहन हारो तुम जीते ।
नागर नट पट देऊ हमारे काँपत है तन सोते ।।
रसिक गोपाल लाल अबलनि पर एती कहा अनीते ।
'परमानन्द प्रभु' हम सब जानत तुम गाल बजावत रीते ।।

[८०४] राग ललित

जेंवत राम कृष्न दोउ भैया जननी जसोदा जिमावे री ।*
व्यंजन मीठे खाटे खारे स्वाद अधिक उपजावे री ।।
करत ब्यार चहुँ ओर सहचरी मधुर बचन मुख भाखे री ।
'परमानंद प्रभु' माता हित सों अधिक परम रस चाखेरी ।।

[८०५] राग टोड़ी

आरोगत गिरधर लाल सयाने ।+
बहु बिधि पाक मिठाई मेवा दूध दही पकवाने ।।
अचवावत है जसोदा मैया सीतल जल गोपाल अघाने ।
'परमानन्द प्रभु' भोजन कर बैठे तब बीरो लै रुचि माने ।।

---

* प्रस्तुत पद शीतकाल के भोजन का है—संपादक

+ प्रस्तुत पद शीतकाल के भोग सरवे के समय गाये जाते हैं—संपादक

[८०६] राग सारंग

बाबा आज भूख अति लागी ।
भोजन भयो अघानो नीको तिृपति होय रुचि भागी ।।
अचवन करि जमुनोदक लीनो मुख जम्हात पल लागी ।
भोजन अंत सीत अति 'परमानंद' दी सेरी आँगी ।।

भोग सरवे के पद

[८०७] राग धनाश्री

भोजन भली भाँति हरि कीनो ।
खटरस व्यंजन मठा सलोनों माँगि माँगि हरि लीनो ।।
हँसत लसत परोसत नंदरानी बाल केलि रस भीनो ।
'परमानन्द' उबरयो पनवारो टेर सुबल कों दीनों ।।

[८०८] राग सारंग

भोजन करि बैठे दोऊ भैया ।
हस्त पखारि सुद्ध आचमन करि बीरी लेहु कन्हैया ।
मात जसोदा करत आरती पुन पुन लेत बलैया ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ब्रज जन केलि करैया ।।

[८०६]

क्यों बैठी राधे सुकुमारी ।
बूझत है ब्रजजन के अहेरी क्यों जेंवत बाबा की थारी ॥
आज हमारो गौरी व्रत ताको विध ताहो पै पाऊं ।
सुन्दर सुभग सलोनौ ढोटा ताकौं पूजि वाहि हाथ जिमाऊँ ॥
देखो ढोटा नंदराय कौ ताको अब ही लै आऊँ ।
तुम जानोरी सयानी मैया वेग चलो हौं चरन सिर नाऊँ ॥
सुनरी जसोमति कुँवर आपुनो वेग पठै हों नौतन आई ।
'परमानंद स्वामी' सब जानत देख देख मैंने सब निधि पाई

॥ ब्रजभक्तन के भोजन के पद

[८१०]

जसोदा एक बोल जो पाऊं ।
राम कृष्न दोउ तुम्हरे सुत को सखन सहित जिमाऊँ ॥
जो तुम नंदराय सौं सकुचो तो हौं उन्हें सुनाऊं ।
जो मैं आज्ञा देहो कृपा करि भोजन ठाट बनाऊं ॥
जब वाके घर गये स्यामघन अपनो भवन बतायौ ।
'परमानन्द प्रभु' हमारे नित उठ घर बैठे पहुँचायौ ॥

[८११]

परोसत गोपी घूंघट मारे ।
कनकलता सी सुन्दर सोभा आई है ज्योंनारे ॥
झनक मनक आँगन में डोलत लावन्य मोर संवारे ।
नंदराय नंदरानी ते दुरिकै लालै भले निहारे ॥
घर की खोझ मिलाय थार में आगे लै जब धारे ।
परम मिलनियाँ मोहन जू की हाँसी मिष हुँकारे ॥
रुचिर काछिनी जटित कोंधनो जूरो बाँह उधारे ।
'परमानन्द' अवलोकन कारन भोर बहुत सिघ द्वारे ॥

[८१२] राग सारंग

कहत प्यारी राधिका अहीर ।
आज गोपाल पाहुने आये परोसि जिमाऊं खीर ॥
बहुत प्रीति अन्तरगत मेरे पलक ओट दुख पाऊं ।
जानत जाउं संग गिरिधर के संग मिले गुन गाऊं ॥
तिहारो कोउ बिलगु न माने लरकाईं की बात ।
'परमानन्द प्रभु' भवन हमारे नित उठ आवो प्रात ॥

[८१३] राग सारंग

परोसत पाहुनी त्यों नारी ।
जेंवत राम कृष्ण दोउ भैया नंद बाबा की थारी ॥
मोही मोहन को मुख निरखत विकल भई अति भारी ।
भूपर भात कौरे भई ठाढ़ी हँसत सकल ब्रजनारी ॥
कै याहि आँच हिये की लागी नव जोबन सुकुमारी ।
'परमानंद' जसोमति ग्वालिन सैनन बाहिर टारी ॥

[८१४] राग धनाश्री

कृष्न को बीरी देत ब्रजनारी ।*
पान सुपारी काथो गुलाबी लौंगन कील संवारी ॥
ब्रजवारी जो कुंजलो ठाड़ी कंचन की सी बारी ।
लै लै बीरी चरन कमल में ठाड़ो करत मनुहारी ॥
कहत लाडले बीरो लीजै मोहन नंद कुमार ।
'परमानंद प्रभु' बीरो आरोगत ब्रज के प्रान अधार ॥

* प्रस्तुत पद बीरी आरोगाने के हैं—सं०

[८१५]

सब भाँति छबीलो कान्ह की ।
नंद नन्दन आवन छबीली मुख छबि बीरी सुपान की ।।
अलक छबीलो तिलक छबीलो पाग छबीली सुबान की ।
भौंह छबीली दृष्टि छबीली सैन छबीली सुमान की ।।
चरन कमल की चाल छबीली सोभा अंग सुठान की ।
'परमानन्द प्रभु' बैन छबीली मुरत छबीलो सुगान की ।।

[८१६]

बीरी आरोगत गिरिधर लाल ।
अपने करसों देत राधिका मोहन मुख में मधुर रसाल ।
ज्यों ज्यों रुचि उपजावत उर अंतर त्यों त्यों परस्पर कर विहार
कबहुँ देत दशन खंडित कर कबहुँ हँसकर देत उगार ।।
सहचरी सब मिल अन्तरी निरखत हिये आनंद अपार ।
जय जय कृष्न जय स्रीराधे जस गावत 'परमानन्द' सार ।।

श्रीहरिः

३

प्रकीर्ण-पद

विनय, माहात्म्य, शरणागति

[परमानन्द सागर]

[८१७] राग कान्हरो

तिहारे चरन कमल को मधुकर, मोहि कब जू करोगे ।*
कृपा वंत भगवंत गुसाईं, यह बिनती चित जू धरोगे ॥
सीतल आतपत्र की छैयाँ कर अम्बुज सुखकारी ।
प्रेम प्रवाल नैन रतनारे कृपा कटाच्छ मुरारी ॥
'परमानन्ददास' रस लोभी भाग्य बिना कोऊ पावै ।
जापर कृपा करें नंद नंदन ताहि सबै बनि आवै ॥

[८१८] राग सारंग

हरि जसु गावत होई सो होई ।
विधि निषेध के खोज परेहों जिन अनुभव देखो जोई ॥
आदि मध्य अवसान एक रस हरिस्वरूप ठहरात ॥
बीच एक अविद्या भासत वेद विदित यह बात ॥
राम कृष्न अवतार मनोहर भक्त अनुग्रह काज ।
'परमानन्ददास' यह मारग बीतत राम के राज ॥

[८१९] राग सोरठ

कमल नयन कमलापति त्रिभुवन के नाथ ।
एक प्रेम तें सब बने जो मन होय हाथ ॥
सकल लोक की संपदा जो आगे धरिये ।
भगति बिना मानें नहिं जो कोटिक करिये ॥
दास कहावन कठिन है जो लौं अनुराग ।
'परमानन्द प्रभु' साँवरो पैंचत बड़ भाग ॥

*[प्रस्]तुत पद में परमानन्ददास जी की गुसाईं विट्ठलनाथ जी के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट [हो]ती है—संपादक

[८२०]

राग

तातें नवधा[1] भगति भली।
जिन जिन कीनी तिन तिन की गति[2] नैक न अनल चली ॥
स्रवन परीक्षित तरें राजरिषि कीर्तन तें सुकदेव।
सुमरन तें प्रहलाद निरभै भये हरि पद कमला सेव ॥
अर्चन पृथु बंदन सुफलक सुत दास भाव हनुमान।
सख्य भाव अरजुन बस कीने स्रीपति स्री भगवान ॥
बलि आत्मनिवेदन कीनौ राखै हरि कौं पास।
प्रेम भगति गोपी बस कीनो बलि 'परमानन्ददास' ॥

[८२१]

राग

प्रीत[3] तो नंदनन्दन सों कीजै।
सम्पत विपत परे प्रतिपालै कृपा करे तो[4] जीजै ॥
परम उदार चतुर चिन्तामनि सेवा सुमरन मानै।
हस्त कमल की छाया राखे अंतरगत की जानै ॥
बेद पुरान स्री भागवत भाखे करत भगत मन भायो।
'परमानन्द' इन्द्र को बैभव बिप्र सुदामा पायो ॥

[८२२]

राग

जब लग जमुना गाय गोवर्धन जब लग गोकुल गाम गुसाईं।
जब लग स्री भागवत कथा रस तब लग कलिजुग नाहीं ॥
जब लग है सेवा या जग में नन्दनन्दन सों प्रीति बढ़ाई।
'परमानंद' तासों हरि क्रीड़त स्री बल्लभ चरन रैनु जिन पाई

१ दसधा
२ मन में नैक न
३ प्रीति तो श्री कमल नैन सौं कीजे
४ कृपा मन लौं धन जीजे

[८२३] राग सारंग

गोपिन की सरभर कौन करै ।
जिनके चरन कमल रज पावन ऊधौ सीस धरै ॥
चतुरानन ते अधिक न कोऊ सोऊ पन यह जु बरै ।
माँगत जनम लता द्रुम बेली तन अति जिय में डरै ॥
यह ब्रजरज कहाँ लौ बरनौं जो मन हरि कौं हरै ।
'परमानन्द प्रभु' चरन कमल भजि सबनि कौ काज करै ॥

गवत और प्रेम भक्ति की महत्ता

[८२४] राग कान्हरो

माधौ या घर बहुत धरी ।
कहन सुनन कों लीला कीनी मरजादा न टरी ॥
जो गोपिन के प्रेम न होतौ अरु भागवत पुरान ।
तौ सब औघड़ पंथहि होतौ कथत गमैया ज्ञान ॥
बारह बरस कौ भयो दिगम्बर ग्यानहीन संन्यासी ।
खान पान घर घर सबहिन कै भसम लगाय उदासी ॥
पाखंड दंभ बढ़यो कलिजुग में स्रद्धा धर्म भयो लोप ।
'परमानंददास' बेद पढ़ि बिगरे कापै कीजै कोप ।

पी प्रेम महिमा

[८२५] राग सोरठ

गोपी प्रेम की ध्वजा ।
जिन गोपाल कियो बस अपने उर धरि स्याम भुजा ॥
सुकमुनि व्यास प्रसंसा कीनी ऊधौ संत सराही ।
भूरि[१] भाग्य गोकुल की बनिता अति पुनीत भव माँही ॥
कहा भयो जो विप्रकुल जनयो जो हरि सेवा नाँही ।
सोई कुलीन 'दासपरमानन्द' जो हरि सन्मुख धाई ॥

ान्य

[८२६]

ये हरि रस ओपी सब गोप तियनते न्यारी ।
कमल नयन गोविंद चंद की प्रानहुते प्यारी ॥
निरमत्सर जे संतत अहहिं चूड़ामनि गोपी ।
निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी ॥
जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावैं ।
क्यों नहिं 'परमानन्द' प्रेम भगति सुख पावै ॥

राधा बन्दना

[८२७] राग रामकली

धनि यह राधिका के चरन ।
हैं सुभग सीतल अति सुकोमल कमल के से बरन ॥
रसिक लाल मन मोदकारी बिरह सागर तरन ।
बिबस 'परमानन्द' छिन छिन स्याम जाकी सरन ॥

नाम माहात्म्य

[८२८] राग गौरी

हरि जु को नाम सदा सुखदाता ।
करो जु प्रीति निश्चल मेरे मन आनंद मूल बिधाता ॥
जाके सरन गये भय नाहीं सकल बात को ग्याता ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर संकर्षन कौ भ्राता ॥

[८२९] राग सारंग

कृष्न कथा बिन कृष्न नाम बिन कृष्न भगति बिनु दिवस जात ।
वह प्रानी काहे कों जीवत नहीं मुख बदत कृष्न की बात ।।
स्रवनन कथा स्यामसुन्दर की राम कृष्न रसना नहिं फुरति ।
मानुस जनम कहाँ पावेंगे ध्यान धरे स्याम चतुर मति ।।
जो यह लोक परम सुख राखत अरु परलोक करत प्रतिपाल ।
'परमानंददास' को ठाकुर अति गँभीर दीनानाथ दयाल ।।

अनुग्रह भक्ति

[८३०] राग सारंग

अनुग्रह तो मानो गोविंद ।
बाँके[1] चरन कमल दिखरावहु वृन्दावन के चंद ।।
नीकै सो नीकै सब कोई सुनि प्रभु आनंद कंद ।
पतितन देत प्रसाद कृपा करि, सोई ठाकुर नंद नंद ।।
अपराधी आदि सब कोऊ अधम नीच मति मंद ।
ताकौं तुम प्रसिद्ध पुरुषोत्तम गावत 'परमानन्द' ।।

[८३१] राग बिलावल

जा पर कमला कंत ढरै ।
लकरी घास कौ बेचन हारो ता सिर छत्र धरै ।।
विद्यानाथ अविद्या समरथ जो कुछ सोई करै ।
रीते भरै भरै पुनि ढौरै, जो चाहै तो फेर भरै ।।
सिद्ध पुरुष अविनासी समरथ, काहु ते न डरै ।
'परमानन्ददास' यह संमति मन ते कबहूँ न टरै ।।

बारक
संपति

[८३२] र

तातें तुम्हरो मोहि भरोसो आवे।*
दीन दयाल पतित पावन जस वेद उपनिषद गावे ॥
जो तुम कहो कौन खल तारे जौहों जानों साखि।
पुत्र हेत हरि लोक चल्यो द्विज, सक्यो न कोउ राखि ॥
गनिका कहा कियो व्रत संजम, सुक हित मनहि खिलावे।
कारन करि सुमिरै गज बपुरौ, ग्राह परम गति पावै ॥
घरनि आपदा ते द्विज पतिनी पति द्वारिका पठावै।
ऐसो को ठाकुर जे जनकौ, सुख दै भलौ मनावै ॥

[८३३]

दुखित देखि द्वै सुत कुवेर कै तिनतें आपु बंधावे।
करुनानाथ अनाथ के बंधुबिनु, यह औसर क्यों आवै ॥
ऐसे दुष्ट देखि अरि राच्छस दिन प्रति त्रास दिखावै।
सिसु प्रहलाद प्रगट हित कारन इन्द्र निसान बजावै ॥
द्रुपद सुता दुष्ट दुर्जोधन, सभा माँहि दुख द्यावें।
ऐसी करै कौन पै होतें बसन प्रवाह बढ़ावै ॥
बकी गई इहि भाँति घोष में जसुदा की गति दीनी।
जो मति कही सो प्रगट व्याध की प्रभु जैसी तुम कीनी ॥
अभयदान दीवान प्रगट प्रभु साँचो बिरद कहावै।
कारन कौन 'दास परमानंद' द्वारे दाद न पावै ॥

[८३४] राग

जाकों कृपा करै कटाछ्छ बृन्दाबन के नाथ।
बरन हीन अहीरनी खेले मिलि के साथ ॥
नाभि सरोज विरंचि को हुतौ जनम सथान।
बच्छ हरन अपराध ते कीनो हुतो अपमान ॥
मारकंड तै को बड़ो मुनि ग्यान प्रबीन।
माया उदधि तरंग में कीने मति लीन ॥

* प्रस्तुत पद से श्रीनाथ जी के मंदिर से परमानंददास जी के सम्बन्ध की सूचना मिल

[२६३]

कहौ तपस्या कौनै करी संकर की नाईं।
जाकौ मन संग संग फिरे मोहनी के ताईं॥
गनिका के कहा कुल हतो गज कै कहा आचर।
कौन विभव सुनि बिदुर कै गवन कियो हरि द्वार॥
जो कोऊ कोटिक करै बुद्धि बल जंजाल।
'परमानंद प्रभु' सांवरो दीननि को दयाल॥

ब्रज भूमि के प्रति आस्था

[८३५] राग धनाश्री

ब्रज बसि बोल सवन के सहिये।*
जो कोउ भली बुरी कहै लाखै, नंदनंदन रस लहिए॥
अपने गूढ़ मतै की बातैं, काहू सों नहिं कहिये।
'परमा 'द प्रभु' के गुन गावत, आनंद प्रेम बढ़ैये॥

[८३६]

धनि धनि वृन्दावन के वासी।
नित प्रति चरन कमल अनुरागी, स्यामा स्याम उपासी॥
या रस को जो मरम न जानै जाय बसौ सो कासी।
भसम लगाय गरें लिंग बाँधौ सदाइ रहौ उदासी॥
अष्ट महासिद्धि द्वारें ठाढ़ी मुकुति चरन की दासी।
'परमानंद' चरन कमल भजि सुन्दर घोष निवासी॥

---

* प्रस्तुत पद मे परमानन्ददास जी के ब्रजवास की सूचना मिलती है—संपादक

[८३७]

लगे जो स्री वृन्दावन रंग ।
देह अभिमान सबै मिटि जैहै अरु विषयन कौ संग ॥
सखी भाव सहज होय सजनी पुरुष भाव होय भंग ।
स्री राधावर सेवत सुमिरत उपजत लहर तरंग ॥
मन कौ मैल सबै छुटि जैहैं मनसा होय अपंग ।
'परमानन्द स्वामी' गुन गावत मिटि गये कोटि अनंग ॥

[८३८] राग मारू

खेवटियारे बीरन अब मोहे क्यों न उतारैं पार ।*
मेरे संग की सबहि उतरीं [अरु] भेटीं नन्दकुमार ॥
आगे[१] गहरी जमुनाजू बहत है मैं जु रही चलिवार ।
'परमानन्द प्रभु' सों मिलाय तोहि देहुँ गरे कौ हार ॥

[८३९] राग सारंग

माधौ संगति चोंप हमारी ।
स्वारथि मीत मिले बहुतेरे एक अधार तुम्हारी ॥
यह तौ लाज तुमहिं कमलापति जो हमरी पति जाई ।
जद्यपि पाखंड जो आराधन ता दिन नाम सगाई ॥
ब्याध गीध गनिका अरु पूतना बिगरी बात संबारी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर औगुन कौ गुनकारी ॥

आते

प्रस्तुत पद में परमानंददास जी के अडैल से गोकुल आने की उत्सुकता सूचित होती है ।
—संपादक

[८४०]

राग सारंग

हरि के भजन कौ कहा चहियत है स्रवन नैन रसना पद पान ।
ऐसी संपति पाइ बनी है जे न भजै ताहि बड़ी हानि ।।
पूरब जन्म सुकृत फल पायो अति पवित्र मानुषा अवतार ।
पाप पुन्य जाते चीन्है परतु है उपजत ब्रह्म ग्यान अतिसार ।।
गुरू को निहारि पोत पद अंबुज भवसागर तरिबे कौ हेत ।
प्रेरक पवन कृपा केसौं की 'परमानन्ददास' चित चेत ।।

[८४१]

राग सारंग

क्यों न जाइ ऐसे के सरन ।
प्रतिपाले पोखै माता ज्यों चरन कमल भव सागर तरन ।
कठिन अवस्था जानिये जाकी प्रगट जगत गुरू कियौ सहाई ।
उग्रसेन हठि कियो जादौपति दोनौ राज निसान बजाई ।।
नंदादिक ब्रजवासी जेते गोपी ग्वाल किये प्रतिपाल ।
इन्द्रकोप तै गिरिधरि राख्यो भगत बछल दुख हरन गोपाल ।।
ऐसो ठाकुर त्रिभुवन मोहै जै माधौ दीन दयाल ।
'परमानंददास' की जीवनि केसी मर्दन कंस कुलकाल ।।

[८४२]

तुम तजि कौन नृपति पै जाऊँ ।
काके द्वार पैठि सिर नाऊँ परहथ कहा बिकाऊँ ।।
तुम कमला पति त्रिभुवन नायक बिस्वंभर जाको नाऊँ ।
सुर तरु कामधेनु चिंतामनि सकल भुवन जाको ठाऊँ ।।
तुम तै को दाता को समरथ जाके दिये अघाऊँ ।
'परमानंद' हरि सागर तजिकै नदी सरन कत जाऊँ ।।

[८४३] राग सा।

ते भुज माधौ कहाँ दुराये।
ते भुज प्रगट करहू किनि नरहरि जन कल जुग में बहुत सताये।
जिहि भुज गिरिमंदर उत्पाट्यो जिहि भुज बल रावन सिर तोरे॥
जिहि भुज बलि बन्धन कीनो अपने काज सकुच भये मोरे।
जिहि भुज हिरनकस्य उर फारयो जिहि भुज प्रहलादहिं वर दीनों।
जिहि भुज अर्जुन के हय हाँके जिहि भुज लीला भारथ कीनो।
जिहि भुज बल गोवर्धन राख्यो जिहि बल कमला बरि[१] आनी॥
जिहि भुज कंसादिक रिपु मारे 'परमानंद प्रभु' सारंग पानी।

[८४४] राग सारंग

तुम्हारो भजन सब ही को सिंगार।
जे कोऊ प्रीति करें पद अंबुज उर मंडल निर्मोलक हार॥
कंचन भूषन पाट पटंबर मानहू बहुत लिये सिर भार।
मनुषा जनम पूरब फल पाइयतु भगति बिना मिथ्या अवतार॥
जननी बांझ भई बरु काहे न गरभ न गिरि गये ततकाल।
'परमानंद प्रभु' तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर स्वान सियाल॥

[८४५] राग सारंग

गई न आस पापिनी जैहे।
तजि सेवा बैकुंठनाथ की नीच लोक के संग रहै है॥
जिन को मुख देखें दुख लागे, तिनसों राजा राय कहै हैं।
फिर मंद मूढ़ अधम अभिमानी आसा लागि दुर्वचन सहै हैं॥
नाहिन कृपा स्यामसुन्दर की अपने लागे[२] जात बहै हैं।
'परमानन्द प्रभु' सब सुखदाता गुन विचार नहीं नेम गहै है॥

---

१ वर
२ खागे

[८४६] राग धनाश्री

जाइए वह देस जहाँ नंदनंदन भेटिये।※
निरखिये मुख कमल काँति, बिरह ताप मेटिए॥
सुन्दर मुख रूप सुधा लोचन पुट पीजिए।
लंपट लव निमिष रहति अंचय अंचय जीजिये॥
नख सिख मृदु अंग अंग कोमल कर परसिये।
अरु अनन्य भावसौं भजि मन क्रम वचन सरसिये॥
रास हार भुव बिलास लीला सुख पाइए।
भगतन के जूथ सहित रस निधि अवगाहिए॥
इह अभिलाष अंतर गति प्राननाथ पूरिए।
सागर करुना उदार विविध ताप चूरिए॥
छिन छिन पल कोटि कलप बीतत अति भारी।
'परमानन्द' प्रभु कलप तरु दीनन दुख हारी॥

ब्रज माहात्म्य

[८४७] राग रामकली

स्री गोकुल के लोग बड़ भागी।
नित उठि कमल नयन मुख निरखत चरन कमल अनुरागी॥
जा कारन मुनि जप तप साधत धूम्रपान[1] तन कीनो हो।
सोई नंद के आँगन खेलत ज्यों पानी में मीनो हो॥
आसन भोजन सैन परम रुचि पावत जन जो हाँतो[2] हो।
'परमानन्ददास' को ठाकुर माँनत कुल को नाँतो हो॥

※ प्रस्तुत पद से परमानन्ददास जी की ब्रज बसने की अभिलाषा सूचित होती है"। संपादक
१ बरन
२ रातो

ब्रजवासियों का माहात्म्य

[८४८]

ब्रजवासी जानें रस रीति ।
जाके हृदय और कछू नाहीं नंदसुवन पद प्रीति ॥
करत महल में टहल निरंतर जाम जाम सब बीति ।
सर्बभाव आत्मा निवेदित रहे त्रिगुनातीति ॥
इनकी गति और नहिं जानत बीच जवनिका भीति ।
कछुक लहत 'दासपरमानन्द' गुरु प्रसाद परतीति ॥

[८४९]

जहिं जहिं चरन कमल माधौ के तहीं तहीं मन मोर ।
जे पद कमल फिरत बृन्दाबन गोधन संग किसोर ॥
चिंतन करौं जसोदानंदन मुदित साँझ अरु भोर ।
कमल नयन घनस्याम सुभग तन पीतांबर के छोर ॥
इष्ट देवता सब बिधि मेरे जे माखन के चोर ।
'परमानंददास' की जीवनि गोपिन के पट झकझोर ॥

[८५०]

ऐसे हरि अकरता दानी ।
जो जाके मन बसी कामना सो ताहे दर ठानी ।
बिजय राखि मन आनंद मंगल सौं लै पूरत रुचि मानी ।
'परमानंद' सोई भागवत हरि इच्छा मनमँह आनी[1] ॥

---

१ इच्छा हरि बिधाता आनी ।

[८५१] राग बिलावल

कहा करूं बैकुंठहि जाय ।
जहां[1] नहिं नंद जहाँ जसोदा नहिं गोपी ग्वाल नहिं गाय ।।
जहं न जल जमुना को निरमल और नहीं कदमन की छाय ।
'परमानंद प्रभु' चतुर ग्वालिनी ब्रजरज[2] तजि मेरी जाय बलाय ।।

[८५२] राग बिहाग

स्री बल्लभ रतन जतन करि पायो [अरी मैं]*
बह्यो जात मोहि राखि लियो है पिय संग हाथ गहायो ।।
दुस्संग संग सब दूर किये हैं चरनन सीस नवायो ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर नयनन प्रगट दिखायो ।।

[८५३] राग सारंग

सेवा मदन गोपाल की मुकति हूते मीठी ।
जाने रसिक उपासिका सुक मुख जिन दीठी ।।
चरन कमल रज मन बसी सबै धर्म बहाए ।
स्रवन कथन चिंतन बढ्यो पावन जस गाए ।।
बेद पुरान निरूपि कै रस लियो निचोई ।
पान करत आनन्द भयो डारयो सब धोई ।।
'परमानंद' बिचारि के परमारथ साध्यो ।
राम कृष्न पद प्रेम बढ्यो लीला रस बांध्यो ।।

[illegible]
राज
स्तुत पद में परमानन्ददास जी की शरण प्राप्ति सूचित होती है । संपादक

[८५४]

और माँगौ माधौ जनराइ ।
जाके घर आदि ठकुर ताहि बहुत संतन पर भाइ ।।
जाके दिये बहुरि नहि जाँचो दुख दारिद्र नहीं जाने।
बारंबार संभार न भूलै सुमिरन सेवा माने ।।
पारथ सूत दूत पाँडव के उग्रसेन अधिकारी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गोपिन को हितकारी ।।

[८५५]

माधौ परि गई लीक सही ।
साँचो छाया स्याम सुंदर की आदि अंत निबही ।।
जाकौ राज दियो सो अविचल मुनि भागौति कही ।
ध्रुव प्रहलाद बिभीषन बलि की संपति सदा रही ।।
जो मुख ते निकसी मधुबानी सो दूसरि नहीं भाखी ।
दियो प्रसाद 'दासपरमानन्द' देव मनुज मुनि साखी ।।

[८५६]

तुम तजि कौनि सनेही कीजै ।
सदा एक रस को निबहत है जाको चरन रज लीजै
यह न होइ अपनी जननी ते पिता करत नहिं ऐसी
बंधु सहोदर सोऊ न करत है मदन गोपाल करत है जैस
सुख अरु लोक देत हैं ब्रजपति अरु बृन्दावन बास बसावत
'परमानन्ददास' को ठाकुर नारदादिक पावन जसगावत

[८५७] राग केदारो

जाके मन बसैं स्यामघन माधौ ।
सोइ सुन्दर सो धनी सोई कुलीन है सोई ।।
सो पंडित सो गुनी पुंज सोइ जो गोपाल कहि गावैं ।
कोटि प्रकार धन्य सोई नर जो नहिं हरि बिसरावैं ।।
सो नर सूर, बेद बिद्यारत सो भूपति सो ग्यानी ।
'परमानन्द' धन्य सो समरथ जिहि लाल चरन रति मानी ।।

[८५८] राग देवगाँधार

वे हरिनी हरि नींद न जाई ।
जिन तन कृपा कटाच्छ चितै तुम अपने ढिग बैठाई ।।
जिन अपने नैननि मोहन कौं गोपिन सुरति दिवाई ।
करि करुना जिन गोपिन की ज्यों घर की आस छिड़ाई ।।
मनि माला करिगन गैयनु ते जे चित भीतरि ल्याई ।
जिनकी दिष्टि बृष्टि अमृत की देखत रूप सिराई ।।
जिननु गोपि के अंस बाहू धरि लीला गूढ़ दिखाई ।
जहँ जहँ जाहिं तहीं तहीं ते संग चलत उठि धाई ।।
प्रेम बिबस रस हरि दरसन के तन सुधि जिन बिसराई ।
'परमानन्द स्वामी' करुना ते गोपिन की गति पाई ।।

[८५६]

हरि को भगत मानै डर काको ।
जाकों कर जोरैं ब्रह्मादिक देवता सब दिन दंडवत है जाकौ ।
सिंघ सखा करि गो भय करै यह विपरीति सुनी नहीं देखी
हाथी चढ़ि कूकर की संका यह धौं कौन पुरानन लेखी ।
सकल लोक अरु निगम गूढ़ मति कृपा सिंधु समरथ सब लायः
'परमानंददास' को ठाकुर दीनानाथ अभय पद दायक ॥

[८६०]

सब सुख सोई लहै जाहि कान्ह पियारो ।
करि सतसंग विमल जस गावै रहै जगत तें न्यारो ॥
तजि पद कमल मुकुति जे चाहै ताको दिवस अँधियारो ।
कहत सुनत फिरत है भटकत छांडि भगति उजियारो ॥
जिन जगदीस हिरदै धरि गुरु मुख एकौ छिनु न विचारयौ ।
बिन भगवंत भजन 'परमानन्द' जनम जुआ ज्यों हारयो ॥

[८६१]

मन हर्‌यो कमल दल नैना ।
चितवनि चारु चतुर चिंतामनि मृदु मधु माधो बैना ॥
कहा करों घर गयो न भावे चलनि बलनि गति थाकी ।
स्याम सुंदर हठ दासी कीनी लखि न परे गति ताकी ॥
कहु उपदेस सहचरी मोसों कहँ जाऊँ कहँ पाऊँ ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर जहँ लै नैन मिलाऊँ ॥

[८६२] राग सारंग

क्यों ब्रज देखन नहिं आवत ।
नवविनोद नई रजधानी नौतन नारि मनावत ॥
सुनियत कथा पुरातन इनकी बहुलोक हैं गावत ।
मधुकर न्याय सकल गुन चंचल रस लै रति बिसरावत ॥
को पतियाय स्यामघन तन को जो पर मनहिं चुरावत ।
'परमानन्द' प्रीति पद अम्बुज हरि अस राग निभावत ॥

[८६३] राग सारंग

ऊधौ कछुए नाहिन परत कही ।
जबतें हरि मधुपुरी सिधारे बहुते बिथा सही ॥
बासर कलप भये अब मोको रैन न नींद गही ।
सुमिरि सुमिरि वह सुरति स्याम की विरहा बहुत दही ।
निकसत प्रान अटिक में राखे अवधौं जानि रही ।
'परमानन्द स्वामी' के बिनु रे नैननि नदी बही ॥

[८६४] राग सारंग

माधो मुख देखन के मीत ।
पाछे को काकी चलवत है मढहालर के गीत ॥
सो प्रीतम दोऊ और निबाहै सदा करै निचीत ।
'परमानन्ददास' को स्वामी सदा सराहै प्रीति ॥

महात्म्य बीनती

[८६५] राग सारंग

हरि के भजन में सब बात ।
ग्यान करम सौ कठिन करि कत देत हौं दुख गात ।
बदै बेद पुरान छिनु छिनु साँझ अरु परभात ।
संत जन मुख व्रत जसु नंदलाल पद अनुरात ।।
नाँहि भवजल और कौ बिघन के सिर लात ।
'दासपरमानन्द' प्रभु पैं मारि मुख ये जात ।।

[८६६]

हरि जू की लीला काहि न गावत ।
राम कृष्न गोविंद छाँड़ि मन और बकै कहा पावत ।।
जैसे सुक नारद मुनि ग्यानी यह रस अनुदिन पीवत ।
आनन्द मूल कथा के लंपट या रस ऊपर जीवत ।।
देख बिचार कहा धौं नीको जेई भव सागर ते छूटै ।
'परमानंद' भजन बिन साधे बँध्यो अविद्या कूटे ।।

[८६७] राग सारंग

जाकौ माधौ करै सहाइ ।
हस्त कमल की छाया राखै बार न बाँको जाइ ।।
कंस रिसाय सचीपति कोप्यौ कैसे नंद दुलराई ।
गल गरजो गोकुल में बैठे गरज निसान बजाइ ।।
जिहि तैं बिगरत ताहि तै संवरत समरथ जादौराई ।
'परमानंददास' सुखदायक राखै सूत बनाई ।।

[८६८] राग सारंग विभास

बलिहारो पद कमल की जिन मैं नवसत लछन ।
ध्वजा बज्र अंकुस जव रेखा ध्यान करत विचछन ॥
ते चिंतत त्रय ताप[१] हरत सीतल सुख दायक ।
नखमनि की चन्द्रिका जोति उज्ज्वल ब्रजनायक ॥
वृंदावन गो संग फिरत भूतल कृत पावन ।
गंगादिक तीरथ प्रसाद भगतन के मन भावन ॥
भक्त धाम कमला निवास माया गुन बाधक ।
'परमानन्द' ते धन्य जन्म जे सगुन अराधक ॥

[८६९] राग बिलावल

जब गोबिंद कृपा करैं तब सब बनि आवै ।
सुख संपति आनन्द घनो घर बैठे पावै ॥
कुबिजा कहा उद्यम कियो मथुरा के माली ।
उहि चंदन उहि फूल लेप चरचे बनमाली ॥
बिनु तीरथ बिनु दान पुन्य बिनु ही तप कीने ।
पांडव कुल हित जानि के अपने करि लीने ॥
ऐसी बहुत गोपाल की जाके मुनि साखी ।
'परमानन्द प्रभु' सभा माँझ द्रौपदी पति राखी ॥

[८७०] राग सारंग बिलावल

जाहि बिस्वंभर दाहिनो सो काहे न गावै ।
कुबिजा तै कमला करी इहि उचितै पावै ॥
यह रस राधै चाखि कै पाँय लागि मनावै ।
सो गोपाल त्रिभुवन धनी घर बैठे पावै ॥
अपने करम साझो नहीं जो त्रिभुवन मानौ ।
'परमानंद' अंतर दसा जग जीवन जानौ ॥

---
[१] भक्त ताप हरत

[८७१]

तातें न कछु माँगि हौं रहो जिय जानी ।
मन कलपित कोटिक करे इधि लहरि समानी ॥
बिनु माँगें आपदा आपै भरपूरि ।
ता ठाकुर के संपदा कहो केतिक दूरि ॥
जो जो देव अराधिये सो हरि के भिखारी ।
आन देव कत सेइये बिगरे अपकारी ॥
सो ठाकुर कत सेइये माँगन लौ राखै ।
माँगे सरबसु जात है 'परमानंद' भाखै ॥

[८७२]

अपने चरन कमल को मधुकर हमहू काहे न करहु जू
कृपावंत भगवंत गुसाँई इहि बिनती चित धरहु जू ।
सीतल आतपत्र की छाया कर अंबुज सुखकारी जू
पदम प्रबाल नैन अनियारे कृपा कटाच्छ मुरारी जू ।
'परमानंददास' रस लोभी भाग्य बिना क्यों पावे जू
जाको द्रवत रमापति स्वामी सो तुम्हरे ढिग आवै जू ।

[८७३]

कबहू करि हौं द्यौ दया ।
हस्त कमल की हमहू ऊपर फेरि जैहो छया ॥
जिहि प्रसाद गोकुल पति पाल्यो करतल अद्रि उठायो ।
जिहि कर अंबुज परसि चारु कुच राधा भलो मनायो ॥
जिहि कर कमल बाल लीला रस धेनुक दैत्य फिरायौ ।
जिहि कर कमल कोप झूठे धरि भूतल कंस गिरायौ ॥
जेहि कर कमल बेनु हरि लीनो गोपिन प्रेम बढ़ायौ ।
जिहि कर कमल दास परमानंद सुमिरत यह दिन आयौ ॥

[८७४] राग टोडी

बड़ी है कमला पति की ओट
सरन गए ते पकरि न आये किये कृपा को कोट ॥
जाकी सभा एक रस बैठत कौन बड़ो को छोट।
सुमिरन ध्यान अघेभव भंजन कहा पंडित कहा बोट ॥
जदपि काल बली अति समरथ नाहिन ताकी चोट।
'परमानंद प्रभु' पारस परसते कनक लोह नहीं खोट ॥

[८७५] राग टोड़ी

माधो हम उरगाने लोग।
प्रात समै उठि नाऊ चरनमँह पाऊँ उचित उपभोग ॥
दुरलभ मुक्ति तुम्हारे घर की सन्यासिन को दीजै।
अपने चरन कमल को सेवा इतनी कृपा मोहि कीजै ॥
जहाँ राखो तहां रहूँ चरन तर परचौ रहूँ दरबार।
जाकी जूठनि खाऊँ निसदिन ताको करौं किवार ॥
जहाँ पठवो तहाँ जांउ बिदा लै दूतकारी अधीन।
'परमानन्ददास' की जीवनि तुम पानी हम मीन ॥

[८७६] राग कानरो

मोहि भावै देवाधिदेवा।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन गोकुलनाथ एक हैं मेवा।
जो जानिये सकल बरदायक गुन विचित्र कीजिए सेवा।
तीन मुख्य देवता ब्रह्मा विष्नु अरु महादेवा ॥
संख चक्र सारंग गदा धर रूप चतुर्भुज आनन्दकन्दा।
गोपी नाथ राधिका बल्लभ ताहि उपासत 'परमानंदा' ॥

[८७७] राग कान्हरो

बहुते देवी बहुते देवा कौन कौन को भलो मनाऊं ।
हौं अधीन स्यामसुंदर कौं जनम करम पावन जसु गाऊँ ।।
लोक लोक प्रति सब कोऊ ठाकुर अपने भगतन के सुखदायक ।
मोहि वह अधर घोर मुरली गोपी बल्लभ गोकुल नायक ।।
देव असुर मानव मुनि ग्यानी हरि को दियो सबै कोऊ पावै ।
हौं बलिहारी 'दासपरमानन्द' करुना सागर काहे न भावै ।।

[८७८] राग कानरो

बलि बलि माधौ स्याम सरीर।
पुरुषारथ ब्रह्मादि विचारत जै जै जै जै बल भद्र बीर ।।
नंदादिक बल्लभ ब्रजवासी जानत है हरि सब की पीर ।
सक्र मान खंडन करि स्रीपति गोवर्धन उद्धरन धीर ।
बाजत बेनु राधिका बल्लभ कछु आस नहीं बरसत नीर ।
'परमानंद प्रभु' सब विधि सुंदर बिपुल बिनोद गहै कर चीर ।।

[८७९] राग कानरो

माधौ तुम्हारी कृपा तें को को न बढ़्यो ।
मन क्रम बचन नाम जिन लीनो ऊँचो पदवी सोई चढ़्यो ।।
तुम जाहि अमल दियो जगजीवन सो पुरान कुतर्क हठ्यो ।
गनिका व्याधि अजामिल गजेन्द्र तिनन कहा धौ बेद पढ़्यो ।।
ध्रुव प्रहलाद भगत है जेते तिनको निसान बज्यो बिन ही मढ़्यो ।
'परमानन्द प्रभु' भगत वच्छल हरि यहै जानि जिय नाम दृढ़्यो ।।

[८८०] राग कल्याण

सांचौ दिवान है री कमल नयन ।
तू मेरो ठाकुर जसुदानंदन कै तू है जगत जीवन ॥
जाके छत्र अकास सिंघासन बसुधा अनुचर सहस अठासी ।
सेवक चपरि ताहि को मारत जे हठि होत मवासी ॥
जाके ब्रह्माऊ हरि सखा उमापति सुरपति पान खवावै ।
नारद तुम्बर की गति गावै मारुत चँवर ढुरावै ॥
जाकै कमला दासो पाय पलोटै रिधि सिधि छार बुहारै ।
दफतर लिखै सारदा गनपति रबि ससि न्याउ निवारे ॥
जाकै बन्दी बेद पुकारै द्वारे माँहि लौ कोउ न पावै ।
ताहि निहाल करै 'परमानन्द' नैक मौज जो आवै ॥

[८८१] राग कल्याण

प्रीति तौ एकहि ठौर भली ।
यह जु कहा मति चरन कमल तजि फिरे जु चलो चलो ॥
ते जानै जे सब बिधि नागर सार सार गहि लोग ।
पायो स्वाद मधुप रस लोभी स्याम धाम संयोग ॥
'परमानन्ददास' गुन सुन्दर नारदादि मुनि ध्यानी ।
सदा बिचार विषय रस त्यागी जसु गावत मधु[१] बानी ॥

१ मृदु

समुदाय के पद

[८८२]

राग

क्यों बिसरै वह गाइ चरावनि ।*
बाम कपोल बाम भुजा पर करि दच्छिन भौंह उचावनि ।।
कोमल कर अंगुलि गहि मुरली अधर सुधा बरषावनि ।
चढ़ि विमान वे सुनति देव तिय तिननु मोह उपजावनि ।।
हार हास अरु थिर चपला उर रूप दुखित सुख लावनि ।
चित धरि तिन रहत चित्र ज्यों गाइन सुधि बिसरावनि ।।
मोर मुकुट स्रवननि पल्लव कटि मल्ल स्वरूप बतावनि ।
चरन रेनु वांछित कंपत भुज सरितनु गमनध भावनि ।।
आदि पुरुष ज्यों अचल भूत ह्वै संग सखा गुन गावनि ।
बन बन फिरत कबहुँ मुरली करि गिरि चढ़ि गाइ बुलावनि ।।
लता बिटप बन माँझ प्रगट ह्वै फल भर भूमि नवावनि ।
ततछिन परिचै होय प्रीत अब जब मधुधाराउ पठावनि ।।
सुन्दर रूप देखि बन माला मत्त मधुप सुर गावनि ।
आदर देत सरोवर सारस हंस निकट बैठावनि ।।
बल संग स्रवन पुहप सोभा गिरि वर नाद पुरावनि ।
बिबिध भाँति बन गमन बिचच्छन नूतन तान बनावनि ।।
सुनत नाद ब्रह्मादिक सुरगन अधिक चित्त मोहावनि ।
चलित ललित गति हरित ताप ब्रज भूमि सोक बिनसावनि ।।
ब्रज जुवती मन मैन उदित करि थावरता ठहरावनि ।
दिव्य गंध तुलसी माला उर मनि धर गाइ ग्वावनि ।।
बेनु नाद करि बंचित चित करि हरिनि भवन छिड़ावनि ।
कुंददाम सिंगार सकल अंग जमुना जल उछरावनि ।।

---

* प्रस्तुत पद में युगल गति की भावना द्रष्टव्य है । तुलना कीजिये—
वाम बाहु कृत वाम कपोलो वल्गित भ्रधरार्पित वेणुम् ।
कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ।।

सुदित सकल गंधर्व देव गन सेवा उचित करावनि ।
आरत दृग ब्रज गाइन के मन अति आनन्द बढ़ावनि ॥
गोरज रंजित नव बनमाला सुख देवे ब्रज आवनि ।
घूमत दृग मदमान देत कुंडल स्रुति जुग झलकावनि ॥
बतरस हँस आंनन सूचत सब बिधु ज्यों अंग सरसावनि ।
जुग जुग गोपी रजनी सुख सब अति पुनीत जस गावनि ॥
यह लीला चित्त बसौ लसौ नित गोपी जन सुख पावनि ।
'परमानन्ददास' कौं दीजे ब्रजजन पद रज धावनि ॥

[८८३] राग सारंग

करत गोपाल की दुहाई ।*
मातो हलधर गनत न काहु जमुना उलटि बहाई ॥
धूर्न नैन चलत पग[1] डगमग तब जानु रूप को कूट ।
अंबर नील अटपटे पहिरे कनक कटोरि मद घूट ॥
जुवती सहस संग इक लीने बन बन गावत गीत ।
मारयो द्विबिद कंस को साथी कर बलभद्र पुनीत ॥
जै जै राम कहत देवगन बरखत कुसुम अपार ।
'परमानन्द स्वामी' के भ्राता फनि फनि मनि अधार ॥

[८८४] राग सारंग

या ब्रत ते कबहूँ न टरौंरी ।
बंसी बट मंडप बेदी रचि कुंवर लाडिलो लाल बरौंरी ॥
इत जमुना उत मान सरोवर मध्य भाँवरी बीच फिरौंरी ।
बरसानो प्यौसार हमारो अपजस तै कबहूं न डरौंरी ॥
कुंज कुटी निज धाम हमारो आनन्द प्रेम उमगि भरौंरी ।
'परमानन्द प्रभु' अंग अंग नागर कुंवर स्याम संग केलि करौंरी ॥

* प्रस्तुत पद श्री बलराम जी की रास क्रीड़ा का है ।—संपादक

१ डग

[८८५] राग गौरी

करति जो कोट घूँघट की ओट ।
तौऊऽब न रहत नैन अनियारे निकसि करत है चोट ॥
पाछे फिरि देखै कोऊ ठाढ़े सुन्दर बरएक ढोट ।
'परमानन्द स्वामी' रति नायक लागी प्रेम की जोट ॥

[८८६] राग गौरी

ब्रज की बीथिन निपट साँकरी ।
यह भली रीति गाऊँ गोकुल की जितही चलीए तितहि बाँकरी ॥
जिहि जिहि बाट घाट बन उपवन तिहितिहिं गिरिधर रहत ताकिरी ।
तहाँ ब्रज बधु निकसत नहीं पावत इत उत डोलत रोरत काँकरी ॥
छिरकत पीक पट मुख दीए मुसिकत छाजै बैठे झरोखे झाँकरी ।
'परमानन्द' डगमगत सीस घट कैसे कैं जइये बदन ढाँकिरी ॥

[८८७] राग सारंग

कदमतर ठाढ़े है गोपाल ।
आस पास ग्वालन की मंडली बाजत बेनु रसाल ॥
बरुहा मुकुट अरु कानन कुंडल मृगमद तिलक सुभाल ।
'परमानन्द' प्रभु रूप विमोही प्रेम मगन ब्रजबाल ॥

[८८८] राग सारंग

है मोहनी कछु मोहन पहियाँ ।
मोहन मुख निरखत हौं ठाढ़ी आये अचानक गही मेरी बहियाँ ॥
जो भायो सो कियो आपनो रुचि मैं सकुचित न कीनी नहियाँ ।
'परमानन्द प्रभु' स्याम गये पुलिनु बीच भीत रही मन महियां ॥

[८८९] राग सारंग

कहां ते आये हो द्विजराज ।
साँच कहो तुम कहां जाओगे कहां बसोगे आज ॥
हम तौ थकित अस्त उदया करि रहे तलप ह्यां साज ।
इहि बट बसत जु कारो भोगी कहति तिहारे काज ॥
गोकुल जाऊँ संकेत सबनि कौ जाइ कहौं हरि लाज ।
'परमानंद' बच्छ डरत हमारे तुमहि बिप्र लेहु नाज ॥[१]

[८९०] राग बिलावल

काम धेनु हरि नाम लियो ।
मन क्रम बचन की कौन संमति कहै महापतित द्विज अभै दियो ॥
कौन नृपति को हुतो कुल बधू गनिका को कहा पवित्र हियो ।
जग्य जोग तो कियो कहा नृग कौन बेद गज ग्रह कियो ॥
द्रुपद सुता दिन हरि सुमिरै नृपति नगन बपु करि न छियो ।
असुर त्रास त्रैलोक्य सुसंकित सुत को काहे न पोच कियो ॥
भव जल व्याधि असाध्य रोग को जपतप ब्रत औषध न बियो ।
गुरु प्रसाद ताकी संगति जन 'परमानंद' रंक कियो ॥

---
[१] भैरव [अर्थ]

[८९१] राग बिलावल

यातै जिय भावै सदा गोवरद्धन धारी।
इन्द्र कोप तै नंद को आपदा निवारी॥
जो देवता अराधिये सो हरि के भिखारी।
अन्य देव कल सेइए बिगरै अपकारी॥
दुःसासन के कोप तैं द्रौपदी उबारी।
'परमानंद प्रभु' सांवरो भगतन हितकारी॥

[८९२] राग बिलावल

हम नंद नंदन राज सुखारे।
सबै टहल आगेई भुज बल गाय गोप प्रतिपारे॥
गोधन फैलि चरत बृन्दावन राखत कान्ह पियारो।
सुरपति खुनस करी ब्रज ऊपर आपुन सो पचि हार्‌यो॥
गोपी और ग्वाल बनि धाये अब बड भाग हमारे।
'परमानंद स्वामी' सरनागत सब जंजाल निवारे॥

[८९३] राग बिलावल

करत है भगतन की सहाय।
दीन दयाल देवकी नंदन समरथ जादौराय॥
हस्त कमल की छाया राखे जगत निसान बजाय।
दुष्ट भुवन भय हरत घोख पति गोबरद्धन लियो जु उठाय॥
कृपा पयोध भगत चिंतामनि ऐसे बिरद बुलाय।
'परमानंददास' प्रति पालक वेद विमल जस गाय॥

[८६४] राग सारंग

तातें गोबिंद नाम लै गुन गायो चाहौं ।
चरन कमल हित प्रीति करि सेवा निरबाहौं ।।
जो हौं तुम में मिलि रहौं कछू भेद नहि पाऊँ ।
प्रलै काल के मेघ ज्यौं तुमहिं माँझ समाऊँ ।।
जीव ब्रह्म अंतर नहीं मनि कंचन जैसे ।
जल तरंग प्रतिमा सिला कहिबे कौ ऐसो ।।
जिन सेवा सचुपाइये पद अंबुज आसा ।
सो मूरति मेरे हिरदै बसो 'परमानंददासा' ।।

[८६५]

जो तू नंद गाँउ दिसि जैहै ।
नैनन को फल यह मेरी सजनी राम कृष्न कौं देखत ऐहै ।।
बीथिन बच्छ चरावत ऐहै वे अवलोकत अति आनन्द पैहै ।
गौर स्याम तन नील पीत पट कनक कुंडल सिर मोर चंदै है ।।
गुरु जन ते जो अवसर पावै कान्ह सुनत मो बात चहै है ।
'परमानन्द' गिरिधरन कुँवर कौं मेरी को तौ अंक लगै है ।।

[८६६]

आँधरे की दई चरावै ।*
जाको कितहू ठौर नाहीं सो तुम्हरी सरन आवै ।।
गंगा मिले सकल जल पावन लोक बेद कुल सब बिसरावै ।
सुपच बलिष्ट होइ 'परमानंद' ऐसो ठाकुर काहे न भावै ।।

* प्रस्तुत पद परमानन्ददास ने सूर की महिमा में गाया है ।

[८९७] राग धनाश्री

तन मन नवल जुगल पर वारौं ।*
कुंज रंध्र गौर स्याम छबि बारंबार निहारौं ।।
अपनी टहल कृपा करि दीजे ता संग जीव उबारौं ।
'परमानंद' जु लाभ भजन बिन काज सबै लै जारौं ।।

[८९८] राग सारंग

नैनन ते न्यारे जो न टरौ ।
परम सुगंध मृदल सीतलता पानि कमल उर पर धरौ ।
तुम तौ मेरे प्रान जीवन धन मिलि मोहन आरति हरौ ।
मात पिता पति लोग बिराने सहि न सकौ जो जरि मरौ ।।
गाइ दुहावन के मिस आवत प्राननाथ तुम जिन बिसरौ ।
'परमानंददास' की जीवनि मेरी दोहनी दूध भरौ ।।

[८९९] राग धनाश्री, सारंग

जो जन हिरदै नाम धरै ।
अष्ट सिद्धि नव निधि को बपुरी लटकत लारि फिरै ।।
ब्रह्मलोक इन्द्र लोक सिवलोक सबहू तैं ऊपरै ।
जो न पत्याऊं तौ चितवो ध्रुव तन टारचो हू न टरै ।।
सुंदर स्याम कमल दल लोचन सब दुख दूरि करै ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर वाचा ते न टरै ।।

* प्रस्तुत पद में राधा वल्लभीय भक्ति के तत्त्व दर्शनीय है—संपादक

[९००] राग सारंग

यह मांगो संकरषण बीर ।
चरन कमल अनुराग निरंतर भावे मोहे भगतन की भीर ।।
संग देहौ तौ हरि भगतन को वास देहुर स्री जमुना तीर ।
स्रवन देउ तो हरिकथारस ध्यान देहु तो स्याम सरीर ।।
मन कामना करौ परिपूरन पावन मज्जन सुरसुरि नीर ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर त्रिभुवन नायक गोकुल पति धीर ।।

[९०१] राग सारंग

यह मांगो गोपी जन वल्लभ ।
मानुष जन्म और हरि सेवा ब्रज बसिवो दीजै मोहि सुल्लभ ।।
स्री बल्लभ कुल को होहूँ चेरो वैष्नव जन को दास कहाऊँ ।
स्री यमुना जल नित प्रति न्हाऊँ मन क्रम बचन कृष्न गुन गाऊँ ।।
स्री भागवत स्रवन सुनि नित इन तजि चित कहूँ अनत न लाऊँ ।
'परमानन्ददास' यह माँगत नित निरखों कबहूँ न अघाऊँ ।

[९०२]

यह मांगों जसोदा नंद नंदन ।
वदन कमल मेरो मन मधुकर नित प्रति छिन छिन पाऊं दरसन ।।
चरन कमल की सेवा दीजै दोऊ जन राजत विद्रुलता घन ।
नंद नन्दन वृषभान नंदिनी मेरे सरबस प्रान जीवन धन ।।
ब्रज बसि अरु जमुना जल पीऊँ स्री वल्लभ कुल को दास ये ही मन ।
महा प्रसाद पाऊं हरि गुन गाऊं 'परमानन्ददास' दासी जन ।।

[६०३]

माधो यह प्रसाद हौं पाऊँ ।
तुव भृत भृत्य भृत्य परचारक दास को दास कहाऊँ ।।
यह मंत्र मोहि गुरुन बतायो स्याम धाम की पूजा ।
यह बासना घटैं नहीं कबहूँ देवन देखौं दूजा ।।
'परमानंददास' तुम ठाकुर यह नातौ जिन टूटै ।
नंदकुमार जसोदा नंदन हिलिमिलि प्रीति न छूटै ।।

[६०४]

काहे न सेइए गोकुल नायक ।
भगतन के ठाकुर भगवान सकल सुखन के दायक ।।
ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक जाके आग्याकारी ।
सुरतरु कामधेनु चिंतामनि बरुन कुबेर भंडारी ।।
औरहु नृपति कह्यौ सब मानै सन्मुख बिनती कीजै ।
तुम प्रभु अन्तर्यामी ब्यापक दुतीय साखि कहा दीजै ।।
जन्म कर्म अवतार रूप गुन नारदादि मुनि गावैं ।
'परमानंददास' स्रीपति अधम भले बिसरावैं ।।

[६०५]

माई हौं अपने गुपालहिं गाऊँ ।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि देखि सुख पाऊँ ।।
जे ग्यानी ते ग्यान बिचारौ जे जोगी ते जोग ।
करमठ होईं ते करम बिचारौ जे भोगी ते भोग ।।
कबहुँक ध्यान धरत पदअंबुज कबहुँ बजावत बेनु ।
कबहुंक खेलत गोप बृंद संग कबहुँ चरावत धेनु ।।
अपने अंस की मुकति राजी है माँगि लियौ संसार ।
'परमानंद' गोकुल मथुरा में बन्यौ न यहै बिचार ।।

[९०६] राग सारंग

अपने लाल के रंग राती ।
जा दिन तै कटि बसन लपेटयौ ता दिन तै संग जाती ॥
बन बन ढूंढ़त रहत हरिहिं अब सुरत संग हरखाती ।
'परमानन्द प्रभु' अंग अंग नागर जोबन बाल संघाती ॥

[९०७] राग बिलावल

मदन गोपाल के रंग राती ।
गिरि गिरि परत संभार न तन को अधर सुधा रसमाती ॥
बृंदावन कमनीय सघन बन फूली चहुँ दिस जाती ।
मंद सुगंध बहै मलयानिल अलि जुड़ात मेरी छाती ॥
आनंद मगन रहत प्रीतमसंग द्यौस न जानी राती ।
'परमानंद' सुधाकर हरि मुख पीवत हू न अघाती ॥

[९०८] राग सारंग बिलावल

मैं तो विरद भरोसे बहु नामी ।
सेवा सुमिरन कछुए न जानी सुनियो परम गुरु स्वामी ॥
गज अरु गीध तारी हैं गनिका कुटिल अजामिल कामी ।
जेहि की साख स्रवन सुनि आयौ चरन सरन सुख धामी ॥
'परमानन्द' तारौ के मारौ [तुम] समरथ अन्तरयामी ॥

[९०९] राग

तैं नर का पुरान सुनि कीना ।
अनपायनी भगति नहि उपजी, भूखे दान न दीना ॥
काम न बिसरयौ क्रोध न बिसरयौ, लोभ न छूटयौ देवा ।
मोह मलिनता मने नहिं छूटी, विकल भई सब सेवा ॥
बाट पारि घर मूंसि बिरानो, पेट भरे अपराधी ।
जेहि पर लोक जाय अपकीरति सोई अविधा साधी ॥
हिंसा तौ मनते नहिं छूटी, जीव दया नहिं पाली ।
परमानंद साधु संगति मिलि कथा पुनीत न चाली ॥

[९१०] राग *

भजो राधे कृष्न राधे कृष्न राधे गोविंद ।* ध्रु०
केशव जी कल्यान गिरि धरन छबीले लाल ।
जाको मुख देखत कटत जम फंद ॥
देवकी को छैया बल भद्र जी को भैया लाल ॥
नंद को नंदन स्वामी असुर निकन्द[1] ॥
ब्रजपति ब्रजराज सन्तन[2] के सम्हारे काज ।
मुरली धरत नैना देखत आनन्द ॥
चत्रभुज चक्रपानि देवकी नंदन देव ।
मदन मोहन सी वृन्दावन चंद ॥
जादौपति जादौराय, सन्तन सदा सहाय ।
याही धुनि गावें 'स्वामी परमानंद ॥'[3]

---

१ आनन्दकन्द
२ भगतन
३ दास
* प्रस्तुत पद पुष्टिमार्गीय मंदिरों में भागवत कथा के अनन्तर गाया जाता है ।—संपादक

[६११] राग बिलावल

जाहि बेद रटत, ब्रह्म रटत, सेस रटत, सिंभु नारद सुक व्यास रटत
पावत नहिं पारु ।+
ध्रुवजन प्रहलाद रटत, कुंता के कुँवर रटत, द्रुपद सुता रटत रहत,
नाम अनामनि सुख चारु ॥
गौतम की नारि रटत, गनिका गज विप्र रटत, राजरमनि रटत,
सुनत राखत गृह द्वार ॥
'परमानन्द' सोई लाल गिरधर रसिक राइ जसोदा कौ लाल,
प्यारी राधिका उर हार ॥

दृष्टकूट

[६१२] राग टोडी

उधौ जू, मन की मनहिं रही ।※
पंचमुख दृग आठ जाके द्वादस चर न यही ।
आठ नारी द्वै भर तारी जुगल पुरुष इक नारी गही ।
चारि वेद दुहि ललौ साँवरौ नैनन सेन दई ।
'परमानंददास' के प्रभु पै यों पीवत है यही ॥

+ एक प्राचीन प्रति के आधार—संपादक

※ प्रस्तुत पद दृष्टकूट है जो एक बहुत प्राचीन प्रति से प्राप्त हुआ है। परमानंददास जी का यही एक पद दृष्टकूट रूप में प्राप्त हो सका है। संपादक

४

परिशिष्ट

[परमानन्द सागर]

पद-संग्रह

[९१३] राग बिलावल

आछे आछे बोल गढ़े।
कहा करौं उतते नहिं निकसत स्याम मनोहर चतुर बढ़े ॥
मेरे नैंक आउरी भामिनि रहसि बुलावत रूख चढ़े।
'परमानन्द स्वामी' रति नागर प्रीति-बखानत कुँवर लड़े ॥

[९१४] राग बसंत

लालन संग खेलन फाग चली।
चौवा चन्दन अगर कुंकमा छिरकत घोष गली ॥
रितु बसंत आगम नव नागरी जोबन भारभरी।
देखन चली लाल गिरिधर को नन्द जु के द्वार खरी ॥
राती पीरी-चोली पहरे नौतन झूमक सारी।
मुखहिं तंबोल नैन में काजर देत भामती गारी ॥
बाजत ताल मृदंग बाँसुरी गावत गीत सुहाये।
नवल गोपाल नवल ब्रजबनिता निकसि चौहटे आये ॥
देखो आय कृष्न जु की लीला बिहरत गोकुल माँहीं।
कहत न बनें 'दासपरमानंद' यह सुख अनत जु नाहीं ॥

[९१५] राग मलार

नंद लाल माई गुपल चलावत पीची।
कुचहि कपोल ताकि तकि मारत मुनि खोजत भई नीची ॥
बालक जानि गये री वृन्दाबन खेलन आँखिन मीची।
सबहि सखिन मँह ठाढ़ी [हौं] उन मेरी लर खींची ॥
न्याव करौंरी जसोदा के आगें उर अंतर रस भीची।
'परमानन्ददास' को ठाकुर अधर सुधा रस सींची ॥

[६१६]

माधौ चाँचर खेल ही खेलत री जमुना के तीर।
बिच बिच गोपी बनीं बीचबिच री वे बने हैं मुरारि।
मरकत मनि कंचन मनि माला री जानों गुही सँवार ॥
कुंकुम बरनी गोपिका कैसो री घनस्याम सरीर।
नील पीत पटमंडिता नाचत री वे प्रेम गंभीर ॥
करतल ताल बजावहीं गावे री वे गीत रसाल।
मदन महोच्छव[१] मन हर्यो री लीलासागर गिरिधरलाल ॥
किंकिनी नूपर बाजहीं सबद री कोलाहल केलि ॥
क्वनित बेनु मधि नायका लटकत री लाल भुजगल मेलि ॥
एकजु पान खवावही एक जु माँगे री देहु उगार।
एक जु मुख चुंबन करे री एक जो बीने टूटे हार ॥
चंद भूल कौतुक रह्यो हरना री वे मोहे नाद।
थाक्यो रथ कैसे चले ब्रज युवतिन री बहलाये वाद ॥
चढ़ि बिमान सब देवता बरखन री वे लागे फूल।
जय जय जय जदुनंदना रास रच्यो रति नायक भूल ॥
जो प्रसाद उनको भयो परिरंभन री बाहु पसारि।
'परमानन्द प्रभु' स्रीपति पुन्य पुंज री कृत गोकुल नारि ॥

[६१७] रा

राजत है बृषभान किसोरी।
ब्रज के आंगन में खेलत पियसों रितु बसंत के आगम होरी।
ताल मृदंग चंग बाजे राजत सरस बाँसुरी धुनि घोरी
अगर जवाद कुंकुमा केसर छिरकत स्याम राधिका गोरी।
जब ही रबकि पीत पट पकरत यह रस रसकिन देत झकझो
'परमानंद' चरन रज वंदित राधा स्याम बनी है जोरी।

---

१ महोदय

[६१८] राग गौरी

मेरो मारग छाँड़ि देऊ प्यारे कमल नयन मन मोहना।
कटि पट पीत सुहावनो अरुन उपरैना लाल।
सीस मोर के चंद्रिका पर चंचल नैन बिसाल॥
कुंचित केस बनी छबि सुंदर चारू कपोल।
स्रुति मंडलकंचन मनो हो झलकत कुंडल लोल॥
मोहन भेष भलो बन्यौ मृगमद तिलक सुभाल॥
अलक मधुप सम राज हो हौं अरू मुक्ताबलि भाल।
कुंज महल ते हौं चली अपने गृह कों जाल।
बन में सोर न कीजिए हो सुंदर साँवल गात॥
उर अंचल कत गहत हो दूरि भये कहौं बात।
अपने जिय न[1] बिचारिहु पैपहर[2] कहौं भली बात॥
सांझ परो दिन अथयो हौं अरुझाई किहि काम।
सेति मैंति क्यों पाइये ये पाके मीठे आम॥
नंदराय के लाडिले हो बोलत मीठे बोल।
रहिहौं कै जाइ पुकारिहौं पै ना कंचुकी बँध खोल॥
'परमानन्द प्रभु' रमी ज्यौं दंपति रति हेत।
सुरत समागम रस[3] रहो नदी जमुना के रेत॥

[६१६] राग सारंग

अहो रस मोरन मोरे लाल[4] स्याम तमाल होरी खेलही।
कनकलता संकुलित सघन पर आनन्दमय रस फैलहीं॥ ध्रु०
गृह गृह तें नवला चपला सी जुरि जुरि झुंडन आईं॥
लहंगा पीत हरे अोर राते सारो स्वेत सुहाई॥
अति झीनी झलकत नवसत नव कनक जटित पिचकाई।
कंचुकी कनक कपिस सब पहरें तहाँ उरजन की झाँई॥१॥

---

[1] लग
[2] हूकी
[3] मि रह्यो
[4] हो रसभरे मोहनलाल

कहाँ लौं कहौं सकल सोभायुत ए गोकुल की नारी।
अंग अंग गिरिधर गुनलंकृत विधि न जात बिस्तारी ॥
प्रफुल्लित वदन तंबोल भरे मुख गावत मीठी गारी।
धुनि सुनि स्रवन निकसे सिंघ पौरी मोहनलाल निहारी ॥२

उततें स्रीवृषभान दुलारी आवत रूप छटारी।
छापेरी[१] झूमक अंग साजे चहुँ दिस लगो किलारी ॥
बेनी चंपक बकुलन ग्रंथित रुचि रुचि सखिन संचारी।
मोतिन माँग और सीस फूल मध्य रतन जटित फुलकारी ॥३।

स्रवनन कुसुम जराउ राजे लरै द्वै द्वै दुहुँ ओर।
पटियन पैं जु लसत दमकन में छवि की उठत झकोर ॥
चल दल पत्र प्रवाल बज्र सौं कोंधत पंकति जोर।
भाल दिपत जाउ मृगमद में वक्र भौंह जुग मोरें ॥४॥

अखियाँ खुली सुखेन बड़ेरी कहा कहौं लोनाई।
सेत अरुन ऊपर मधुराई तामें कछु चिकनाई ॥
बसीकरन रस सों भिजो रचि पचि अंजन देख बनाई।
रस बस ललकें ऊपर झलकें परमविधि चपलाई ॥५॥

नासा सौभग निपट सुढ़ारो बेसर सिखी आकारी।
पन्नाकर चूनो बहुबरनी छाँह सिखर परकारी ॥
सलिल कुँवर सातो जुग ऊपर अधर अरुनता भारी।
गमन करत जब हंस लजावत अरक थरक द्युति न्यारी ॥६॥

दसनावली उन सम्पति लिये दरसत जब मुसिकानी।
चिबुक मध्य सामल बिंदु राजें मुख सुख सदन सयानी ॥
ग्रीवा लटकि अटकि नागरि की बोलत अमृत बानी।
चोली मुलकट हेम गुनन की कवच सुभटता ठानी ॥७॥

१ झापेरी

बाजूबंद ताउ ढिग सोहन नग बहु मोली लागे।
तैसी तूइ तड़ित की न्याईं ऐसी नी रंग पागें॥
नवग्रह गजरा जगमगै नव पोहोंची चुरियन आगे।
अचल सुहाग भाग्य की लहरें हस्त है मेहेंदी दागे॥८॥

पाँच चवर पटियन पै गूँथो डोर चुनाव पें डूले।
झूलत झबि फबि सुंदरता फूंदना जहाँ समतूलें॥
लहँगा लाल गुलाल रंग सम पुरट उदक सो झूलें।
झंकृति कोकिल रव मर्दन करि नूपुर बिछिया बोलें॥९॥

दर्पन निरत मुदरिया धरनी तेज पुंज की नगरी।
दस ससि के अनुमान प्रमानन चमक जनावत सगरी॥
हथ साकर रवनी बाँधेगी कृष्न सार के पगरी।
मिलकरि बृंद आय विपिन में जब तब यों झगरी॥१०॥

जेहर तेहर पायन सों अनवट कुंदन हीरा वलिता।
पीन पिंडुरिया तैसोई बरनन जावक दीनो ललिता॥
इहि विधि राधा रानी गाई नाँहि साँवरे सरिता।
जो जो रसिक गाइ है ऐसे प्रेम पुंज फल फलिता॥११॥

सब समाज भामिनी लै दामिनि बृंदन बृंदन हेली।
कजरा अरगजा गोरा सजि सजि लये सहेली॥
लटकत आवत भाँतिन कंठनि बाँह परस्पर मेली।
उनमद कोऊ बदत न काहू स्याम समर बन बेली॥१२॥

बाजत ताल मृदंग ढोल डफ झाँझन झमक लगाये।
करत टोक प्यारे प्रीतम सों मुरि मुरि नयन नचाये॥
मुरली सुर फेरत घोषन में टेर टेर दरसाये।
चल्यौ सुगन्ध सहस्र चारलौं कोउ विचार कौं बाये॥१३॥

बगर बगर ते सखा स्रवन सुन जूथन जूथन धाये
अपनी भीर सहित सकरषन लै स्रीदामा आये ॥
कुंकुम केसर माट अरु मथना तेल फुलेल मिलाये ।
तोलौं तोक सुबल उन सन्मुख आगें लैन पठाये ॥१

इतहू बाजे लागे बाजन दुंदभी धौंसा गाजे ।
रुंज मुरज आवज सारंगी जंत्र किन्नरी साजें ॥
इन मध्य मुकुट धरे नंद नंदन नटवर भेषन राजें ।
यह सिंगार नंदराय हस्तकौ कोटिक मन्मथ लाजें ॥१

नखसिख ते अभरन की जोतें जगमगाय मेरी माई ।
खुले बंद सब देह उघारी काछ जाल समुदाई ॥
खोलि भुवन भूषन के बाबा होरी भलें मनाई ।
खात हैं बीरा उमगि अलोलन रोम रोम छवि छाई ॥

सुन ले ललिता आज खेल यह मचै खरिक में माई ।
मानत नहीं जब वचन अटपटे उलतें अंगुरी फिराई ॥
चली है निसंक निरंकुस करिनो एकठौरे तहाँ आई ।
सुबल तोक दोउ गहि लीने जान कहूँ नहि पाई ॥१

राखे हैं ओल कहत ब्रज सुंदरि तुमें कहाँ लौ पैये ।
दगा कियो किधौं सांच कहत हौ कहो किहि बात पत्यैये ॥
जो कूटक तो बाँधि बाँधि के सांटिन नृत्य नचैये ।
जो साँचे हो इन बातनते देहें छांडि पुन नैये ॥१०

बड़ी बेर भई सुधि जब लीने राखे हैं दोउ घेरे ।
कहत हैं अब दूर भजे स्याम घन पीताम्बर कों फेरें ॥
जानु सौंहढ़ पकरे नहीं छूटे दौरे दिये दरेरे ।
खिरिका खैंचि दई लै सांकर तरुनी रह गईं हेरें ॥१६

चढ़ि चढ़ि अटा चतुर्दिस बरषत भरिभरि कनक कमोरी।
नाहिं दाँव बदला लेवेको सहचरी रंग रंग बोरी॥
छूटत है जल जंत्रन चहुँदिस बोलत हो हो होरी।
सुबल भली विधि पहोंच्यो मिलि मिलि यह सिख दीनी गोरी॥२०॥

भई मार गोबर की नीके ललिता सैन जनाई।
दुहि पकरी तुम अब मोहि मेलो सोंह लाल की खाई॥
तब जो जीभ दाबि छुटकायो समझे न भेद कन्हाई।
द्वार कपाट उघार भजेहू फिर मोहि सिढ़ी बताई॥२१॥

उत सोंम नहीं भये संपूरन मनहि सब बिधि पूरी।
गई है ऊपर गनो न जात ही मैन मुनैया चूरी॥
विद्रुम दाब दसन सों कोपी चन्द्रावलि सुधि पूरी।
कीनो मार उलेडी गागर आंधी बन्धन घूरी॥२२॥

कृष्नागुरु और अबीर सानिकें गेंदुक सरस संवारी।
स्रीदामा आदि सखा जे कहियत तिनकें तकि तकि मारी॥
कूदत जित तित लगे गात पर हलधर बाँह पसारी।
लगे हैं अति सुकुमार लाल को कहाँ गई प्रीति तुम्हारी॥२३॥

हम ऐसो नहिं खेल खेलिहैं जो लागे या तन कों।
देहैं भजाई ये सैन तिहारी गहे हैं दोउ जन कों।
तुम तो कहत ललित यह मूरति जीवन हम ब्रजजन को।
ऐके लै आई मिलो किन अग्रज पूछि आपने मनको॥२३॥

जेरी निसंक लइ ठाले कर पकरि लिए भरि कोरी।
जागि उठे ब्रजराज सदन में सब ऐसी भाँतिन दौरी॥
मुख मांडत सुमनन पंकन सों उर चोबा सों बोरी।
उल्हर रहें बादर रंगरंगन मँह तैसी होत है होरी॥२५॥

उतरी कर मनोरथ वाके देखि जसोमति लाजी ।
जोती है रस रीति कटक वर सुरन छबीली छाजी ॥
'परमानन्द' आनन्द दुंदभी आई बगर में बाजी ।
दै दै कूक ब्रजेस प्रभृति तब सभा अथाई भाजी ॥२६॥

[९२०] राग आसावरी

तू जिनि आवैं नंद जु के द्वारे तेरी बात चलाई री ।
खान पान सब तज्यौ सँवारे लै सब लियो है चुराई री ॥
कौन नंद काकौ सुत सजनी मैं देख्यो सुन्यो न माईरी ।
फूंकि फूंकि हौं पाँई धरत मेरे पैडे परे लुगाई री ॥
अहो सखी कालि गई हौं ब्रज में कान्ह ठगोरी लाई री ।
जबतै दिष्टि परे मन मोहन तबतै कछु न सुहाई री ॥
अहो सखी तु सुनलै बतियाँ मेरे जियकी कछूँ न दुराइ री ।
सुन्दर स्याम मिलिबे के कारन नैननि बान चलाईरी ॥
मेरे मन को यहै मनोरथ पै गुरूजन हैं दुखदाई री ।
'परमानन्द प्रभु' जो पै पाऊं मेरे तन बिथा बुझाई री ॥

[९२१] राग काफी

कांकरी कान्ह मोहि किन मारै ।
टेढ़ी चितवनि मो तन चितवत लोट पोट करि डारै ॥
है गुरूजन को लाज सखी री निकसी निपट सवारै ।
बरज्यो न मानै तऊ नंद सुत जो कोऊ कहि हारै ॥
कहा करौं कहां जाऊं पुकारौं को यह न्याउ बिचारै ।
'परमानंद' प्रीतम की बातें ऐसी कौन संभारै ॥

[९२२] राग यमन

हम तुम मिलि दोऊ खेलें होरी नव निकुंज में जैये ।
अबीर गुलाल कुंमकुंमा केसरि रंग परस्पर नैये ॥
और सखी कोऊ भेद न जानें ग्वालन तँह न जनैये ।
'परमानंद स्वामी' संग खेलत मन भावत सुख पैये ॥

डोल के पद

[९२३] राग देवगांधार

मदन गोपाल झूलत डोल ।
बाम भाग राधिका विराजत पहरैं नील निचोल ॥
गौरी राग अलापत गावत कहत भामतें बोल[1] ।
नंद नंदन को भलो मनावत जासों प्रीति अतोल ॥
नीको भेख बन्यो मनमोहन आज लई हम मोल ।
बलिहारी[2] मन मोहन सूरति जगत देहुँ सब ओल ॥
अद्भुत रंग परस्पर बाढ़्यो आनन्द हृदय कलोल ।
'परमानन्ददास' तिहि अवसर उड़त होलिका झोल ॥

[९२४] राग देवगांधार

डोल माई झूलत हैं ब्रजनाथ ।
संग सोभित बृषभान नंदिनी ललिता बिसाखा साथ ॥
बाजत ताल मृदंग मुरज डफ रंज मुरज बहु भाँत ।
अति अनुराग भरे मिलि गावत अति आनन्द किलकात ॥
चोबा चन्दन बूका बन्दन उड़त गुलाल अबीर ।
'परमानन्ददास' बलिहारी राजत हैं बलवीर ॥

---

१ भावते बोल
२ बलिहारी या बानिक ऊपर

[९२५] राग सारंग

डोल चंदन को झूलत हलधर बीर ।
स्री बृन्दावन में कालिन्दी के तीर ॥
गोपी रही अरगजा छिरकत उड़त गुलाल अबीर ।
सुरनर मुनि जन कौतुक भूले व्योम विमानन भीर ॥
वाम भाग राधिका बिराजत पहरें कसुंबी चीर ।
'परमानंद स्वामी' संग झूलत बाढ़यो रंग सरीर ॥

[९२६] राग सारंग

चलहू तौ ब्रज में जैये ।
जहां राधा कृष्न रिझैये ॥
ब्रखभान राज घर आये ।
तहाँ अति रस न्यौति जिवाये ॥
तहाँ ब्रजबासिन जुरि आई ।
जहां बैठे कुंवर कन्हाई ॥
तोहि गारी कहा कहि दीजै ।
यह जस आपनो सुनि लीजै ॥
द्वै बाप सबै कोऊ जानै ।
जाहि बेद पुरान बखानै ॥
तेरी मैया आनि अनि जाली ।
तुम बैठे हिलि मिलि पाँती ॥
तेरी फूफी पंच भरतारी ।
सो तो अर्जुन की महतारी ॥
तेरी बहिन सुभद्रा बारी ।
सो तो अर्जुन संग सिधारी ॥
यहै जस सुनि कुंवर किसोरी ।
तब प्रीति हँसी मुख मोरी ॥
जो यह गारी गावै ।
सो प्रेम पदारथ पावै ॥
यह जस 'परमानन्द' गावै ।
कछु रहसि बँधाई पावै ॥

[६२७] राग गौरी

ह्वां तौ कोउ हरि की सी भाँति बजावति गौरी।
हौं यह घाट बाट घरू तजि कै सुनत बेनु धुनि दौरी ॥
गई हौ तहाँ जहां इनि कुंज बन अरू बैठे किसलय चोरी।
देखी मैं पीठि दीठि द्रुम ओझिल फरकत पीत पिछोरी ॥
लीनौं हौं बोलि तहाँ मेरी सखी री देखि बदन भइ बौरी।
'परमानंद' नंदनंदन तोहि मिलिहै री भरि भरि कोरी ॥

[६२८]

कहाँ करौ जो हौं मदन जगाई।
चारि जाम निस बैठी जागौ मन उहाँई जहाँ कुंवर कन्हाई ॥
पाँच बरस के स्याम मनोहर जमुना तीर खेलत देखि आई।
तनक भनक मेरे कान परी तब कहत सुनि नंद दुहाई री ॥
छिनु बाहिर छिन भीतरि आऊ प्राची दिस जोवत मेरी माइ।
'परमानंद' भोर कब ह्वै है जाउ उहाँ उठि बिनहिं बुलाई ॥

[६२९]

✓कोउ माधौ लेइ माधौ लेइ बेचत काम रस दधि को नाम
कहत न आवै परी जु प्रेम बस।
गोरस बेचन चली बृन्दावन माँझ ॥
हरि के स्वरूप भूली परी जु ह्वै गई साँझ।
बिरह ब्याकुल भई बिसरि गये हैं धाम ॥
'परमानन्द' प्रभु जगत पावन नाम।

[६३०] राग सारंग

पून्यौ चंद देखि मृगनैनी माधौ को मुख सुरति करै ।
रास बिलास सँभारति पुनि पुनि सीस फोरि अरु नैन भरै ।।
सोई दिन बहुरि कबहिं करिहै रहसि बाँह कर कमल धरै ।
'परमानंद स्वामी' के बिछुरे मलिन बदन अरु हृदय जरै ।।

परमानन्द सागर

[पद-संग्रह]

[अकारादि क्रम से सूची]

अ

आ

इ

उ

ऊ

ओ

झ

ट

ठ

ड

ढ

य

र

ल

ह

स्री श्री